दिगम्बरत्व और दिगम्बर मुनि

DIGAMBARATVE AOUR DIGAMBAR MUNI

प्रकाशक

श्री मुनि संघ साहित्य प्रकाशन समिति

कटरा बाजार, सागर 470 002

प्राप्ति स्थान

फोन 22755

सन्तोष कुमार जय कुमार

कटरा बाजार सागर (म.प्र.)

470 002

मूल्य

पाँच रुपया

आवरण

सन्तोष जड़िया इन्दौर

मुद्रक -

आनंद सिंघई

सिंघई आफसेट

669, सराफा जबलपुर

फोन - 341006, 343239

विषय-सूची

श्री मुनि संघ साहित्य प्रकाशन समिति सागर के प्रकाशन

1	जैन गीता (समणसुत्त पद्यानुवाद)	अप्राप्त
2	कुन्दकुन्द का कुन्दन (समयसार पद्यानुवाद)	अप्राप्त
3	तीर्थकर ऐसे बने	अप्राप्त
4	गोमटेश अष्टक	अप्राप्त
5	समतभद्र की भद्रता (स्वयभू स्तोत्र पद्यानुवाद)	अप्राप्त
6	प्रवचन पारिजात चतुर्थ सस्करण (सात तत्व एव अनेकान्त प्रवचन सग्रह)	अप्राप्त
7	आचार्य ज्ञानसागर–व्यक्तित्व एव कृतित्व	अप्राप्त
8	रत्नकरण्डक श्रावकाचार (सस्कृत–प्रभाचन्द्र आ पद्यानुवाद आ विद्यासागर, हिन्दी डॉ पन्नालाल सा)	25 00
9	प्रवचनामृत (सोलहकारण भावना प्रवचन)	04 00
10	गुणोदय(आत्मानुशासन)	अप्राप्त
11	ज्ञानोदय	स्वाध्याय
12	पूजन पाठ सग्रह	02 00
13	अष्टपाहुड	10 00
14	प्रवचन पर्व (दश धर्म प्रवचन)	10 00

प्राप्ति स्थान

सन्तोष कुमार जय कुमार

कटरा बाजार, सागर – 470 002 (म.प्र.)

फोन न 2172, 2755
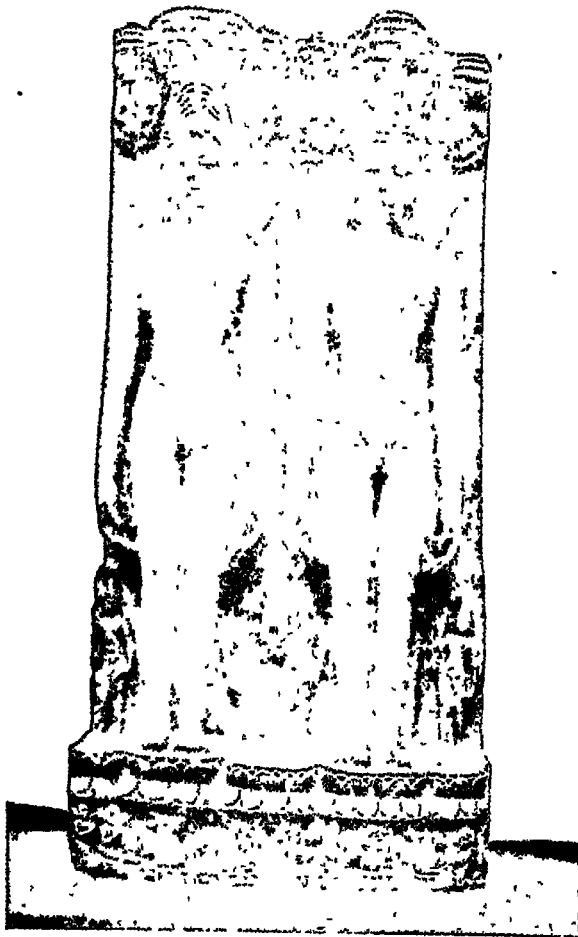
श्री आदितीर्थंकर वृषभदेव और अंतिम तीर्थंकर भ. महावीर वर्द्धमान।

सांस्कृतिक चेतना

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। उसका गौरव, स्वाभिमान, उसकी प्राचीन सभ्यता, सस्कृति, साहित्य, स्थापत्य, वास्तु, शिल्प कला में निहित है। प्राचीन स्मारक, तीर्थ, वैभव सम्पन्न शिल्प मनुष्य की प्रतिष्ठा से जुड़े हुए तथ्य हैं।

प्राचीनता इतिहास की कच्ची साम्रगी है। इतिहास रूपी भवन का निर्माण प्राचीनता की नीव पर ही होता है। जो समाज/जाति अपनी प्राचीनता की रक्षा नही कर पाई, उसका नाम इतिहास के पृष्ठो में या तो मिलता ही नही और यदि मिलता है तो कपोल-कल्पना के आधार पर विकृत इतिहास ही जन-मानस के सामने आता है, उस जाति का दार्शनिक, सैद्धान्तिक, तात्विक स्वरूप ही बदल जाता है। अतः पूर्वजो, संस्थापकों, स्थिति पालको की समूची साधना व्यर्थता को प्राप्त हो जाती है तथा उस जाति की स्थिति विश्व में सदैव बौनी ही रहेगी। भले ही आर्थिक, औद्योगिक स्थिति विकासशील उन्नत हो।

प्रत्येक समाज/जाति अपनी परम्पराओ/सस्कृति को उच्च प्राचीन रहस्यपूर्ण सत्य के निकट आदर्श मोक्षमार्ग युक्त सिद्ध करने का प्रयास करती है तथा अन्य समाज/जाति की सस्कृति रीति अव्यावहारिक, अकल्याणकारी सिद्ध करने का प्रयास करती है और जब वह इस प्रयास में सफल नही होती तब वह जाति/समाज अन्य सस्कृति पर आक्रमण के तेवर अपनाती है। आकमण के प्रथम चरण में प्राचीनता को नष्ट करना तथा साहित्य को समाप्त करना होता है।

दिगम्बर सस्कृति सर्वप्राचीन विकसित अहिंसा, अपरिग्रह, तप, त्याग को पूर्ण व्यावहारिक रूप देने वाली एव तीर्थ, शिलालेख, शिल्प, वैभव तथा साहित्य सम्पन्न वीतराग भावना युक्त तत्वनिष्ठ, निश्छल, शाकाहारी, करुणामय सस्कृति है। इसी कारण यह ईर्ष्या आक्रमण की पात्र रही

है। इस संस्कृति पर दो प्रकार के आक्रमण हुए हैं। प्रत्यक्ष आक्रमण व परोक्ष आक्रमण। प्रथम आक्रमण का स्वरूप विध्वसकारी, हिंसक, अपमानजनक रहा है। यह आक्रमण विधर्मियो द्वारा हुआ है तथा द्वितीय आक्रमण का स्वरूप इतिहास तथा आगम में परिवर्तन करके रीति-रिवाज, तत्व, तथ्य में सदेह पैदा करना रहा है। यह आक्रमण योजनावद्ध प्रेम मिश्रित छल, भाईचारे एवं एकता की आड़ में धन के वल पर महावीर के शिष्यो ने अपनी हठपूर्ण शिथिलता के समर्थन मे किया है।

हमारी संस्कृति को जनमत का समर्थन प्राप्त है तथा यह सस्कृति आज भी विश्व को आश्चर्यचकित करने वाली प्राचीन धरोहर की धनी हैं। किन्तु आक्रमण से बची हुई साम्रगी हमारी असावधानी, उपेक्षा, अनेकाग्रता, फूट, मत-भेद, जाति-भेद, पंथ-भेद के कारण सुरक्षा की आशा छोड़ चुकी है तथा जिनालय के अवशेष खंडहर, अथवा हस्तलिखित जिनवाणी दीमक की ग्रास कही वीहड़ जगल में पड़े जिनविम्व अपने उन लाड़लों का स्मरण कर रहें हैं जिन्होने अपने प्राणों की आहुति देकर कभी उनकी रक्षा की थी। इनकी सम्पूर्ण आशा भावी युवाओं पर टिकी हैं, जो अपने आपसी जाति, पथगत भेद मिटा कर प्रेम, त्याग, समर्पणपूर्ण संगठन की भावना दिगम्वर समाज में जागृत करके शारीरिक, आर्थिक, बौद्धिक, राजनैतिक शक्ति को संचित करके 'दिगम्वराःसहोदराः सर्वे' सूत्र वाक्य के आधार पर रक्षा कर सकते हैं।

अतः दिगम्वर सस्कृति की मौलिकता प्रामाणिकता सिद्ध करने हेतु एवं ऐतिहासिक पुरातात्विकत, शौर्यता, सत्यता की वास्तविक जानकारी कराने हेतु यह पुस्तक वावू कामता प्रसाद जी की अमूल्य निधी है। इसका पुनः प्रकाशन हो ऐसी भावना परम पूज्य आचार्य श्री १०८ विद्यासागर जी की रही है। इस प्रकाशन में उनका आशीष वचन मौखिक रूप से प्राप्त है तथा प्रकाशक संगठन भी धन्यवाद का पात्र है।

मेरे दो शब्द

पिछली गर्मी के दिन थे। "जैन मित्र" पढते हुये मैने देखा कि श्री भा दि जैन शास्त्रार्थ सघ, अम्वाला दिगम्बर जैन मुनियो के सम्वन्ध मे ऐतिहासिक वार्ता एकत्र करने के लिये प्रयत्नशील है। यह विज्ञप्ति पढकर मुझे बडा हर्ष हुआ। ईतिहास से मुझे प्रेम है। मैं तव इस विज्ञप्ति के फल को देखने की उत्कण्ठा मे था कि एक रोज मुझे सघ के महामत्री प्रिय राजेन्द्र कुमार जी शास्त्री का पत्र मिला। मेरी उत्कण्ठा चिन्ता मे पलट गई। पत्र मे शीघ्रातिशीघ्र दिगम्वर मुनियो के इतिहास विपय की एक वृहत् पुस्तक लिख देने की प्रेरणा थी। उस प्रेरणा को यो ही टाल देने की हिम्मत भला कैसे होती? उस पर वह प्रेरणा वस्तुत समय की आवश्यकता और धर्म की पुकार थी। मुनि धर्म मोक्ष का द्वार है, दिगम्बरत्व उस धर्म की कुञ्जी है। नासमझ लोग उस कुञ्जी को तोडने के लिये वार करने को उतारू हो, तो भला एक धर्मवत्सल कैसे चुप रहे? बस, सामर्थ्य और शक्ति का ध्यान न करके बडे सकोच के साथ मैंने सघ का उक्त प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। उस स्वीकृति का ही फल प्रस्तुत प्रस्तक है।

पुस्तक क्या है? कैसी है? इन प्रश्नो का उत्तर देना मेरा काम नही है। मैंने तो मात्र धर्म भाव से प्रेरित होकर 'सत्य' के प्रचार के लिये उसको लिख दिया है। हिन्दू-मुसलमान-ईसाई-यहूदी-सव ही प्रकार के लोग उसे पढे और अपनी बुद्धि को तर्क/तराजू पर तौले और फिर देखे, दिगम्वरत्व मनुष्य समाज की भलाई के लिये कितनी जरूरी और उपयोगी चीज है। इस रीत की परख ही उन्हे इस पुस्तक की उपयोगिता बता देगी। हाँ, यह लिख देना मैं अनुचित नही समझता कि अखिल भारतीय दिगम्वर मुनि रक्षक कमेटी ने इस पुस्तक को अपने काम मे सहायक पाया है। 'असेम्वली' में दिगम्वर मुनिगण के निर्वाध विहार विपयक 'विल' को उपस्थित करने के भाव से इस पुस्तक से अग्रेजी मे 'नोट्स' तैयार कराकर माननीय असेम्वली मेम्वरो मे वितरण किये गये थे। विश्वास है, उपयुक्त वातावरण मे कमेटी का उक्त

प्रयत्न सफल हो जायेगा और उस दशा में, मैं अपने श्रम को सफल हुआ समझूंगा।

अन्त में, मैं अपने उन मित्रो का आभार स्वीकार करता हूँ जिन्होनें मुझे इस पुस्तक को लिखने मे किसी न किसी तरह उत्साहित किया हैं। सघ ने काफी साहित्य मेरे सामने उपस्थित कर दिया और पुस्तक को शीघ्र ही प्रकाशित होने दिया, इसके लिये मैं उपकृत हूँ। यह सब कुछ भाई राजेन्द्र कुमार जी के उत्साह का परिणाम है। इम्पीरियल लायब्रेरी, कलकत्ता आदि से मुझे जरूरी पुस्तकें पढ़ने को मिली हैं, इसलिये यहाँ उनको भी मैं भुला नही सकता हूँ। "चैतन्य" प्रेस के मैनजर भाई शान्तिचन्द्र ने आशा से अधिक शुद्ध और सुन्दर रूप में पुस्तक को छापा है। अतः उनका भी उल्लेख कर देना मैं आवश्यक समझता हूँ। उन सबका मैं आभारी हूँ।

आशा है, पुस्तक अपने उद्देश्य को सिद्ध हुआ प्रकट करने में सफल होगी।

इति शम् ।

विनीत
कामताप्रसाद जैन

अलीगज (एटा)
२५-२-१९३२
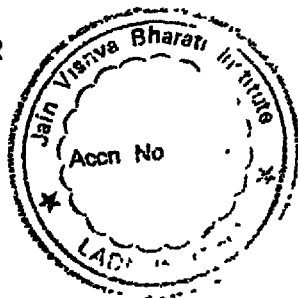
संकेताक्षर-सूची

नोट- प्रस्तुत पुस्तक को लिखने मे जिन ग्रथो से सहायता ली गई है, उनका उल्लेख निम्नलिखित सकेताक्षरो मे यथास्थान कर दिया गया है। पाठकगण सकेताक्षर का भाव इससे जान ले। उक्त प्रकार सहायता लेने के लिये इन ग्रथो के लेखको के हम आभारी हैं : -

हस्तलिखित ग्रन्थ

१. आठकर्मनी १४८ प्रकृतिनो विचार-मुनि वैराग्यसागर कृत (श्री दि. जैन मदिर, अलीगज)।
२. उत्तरपुराण भाषा-कवि खुसालचन्द कृति (श्री दि जैन मदिर भडार, अलीगज)।
३. पंचकल्याणक पूजा पाठ- मुनि श्रीभूषण कृत (श्री दि. जैन मदिर, अलीगज)।
४. भक्तामर चरित- कवि विनोदीलाल कृत (श्री दि. जैन मदिर, अलीगज)।
५. भावत्रिभगी- जैन मदिर, अलीगज (एटा)।
६. मैनपुरी जैन गुटका-बडा पचायती मदिर, मैनपुरी मे विराजमान।
७. यशोधर चरित- कवि पद्मनाभ कायस्थ विरचित (श्री दि. जैन मदिर, मैनपुरी)।
८. श्री जिनसहस्त्रनाम-मुनि श्री धर्मचन्द्र कृत (श्री दि जैन मदिर, अलीगज)।
९. श्री पद्मपुराण भाषा-कवि खुसालचन्द कृत (श्री दि जैन मदिर, अलीगज)।
१०. श्री यशोधर चरित-श्री सोमकीर्ति कृत।(श्री दि जैन मदिर, अलीगज)।

संस्कृत-हिन्दी-गुजराती आदि के मुद्रित ग्रंथ

१. अष्ट०- अष्टपाहुड, श्री कुन्दकुन्दाचार्य कृत (श्री अनन्तकीर्ति ग्रथमाला, बम्बई)।
२. आईन-इ-अकबरी(फारसी)-नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ (१८९३)।
३ आचा०-आचारांइग-सूत्र, श्वेताम्बर आगमग्रथ, श्वे. मुनि अमोलक ऋषि के हिन्दी अनुवाद सहित (हैदराबाद दक्षिण सस्करण)।
४. आरोग्य०-आरोग्यदिग्दर्शन, ले. महात्मागाँधी (बम्बई,१९७३)।

५. ईशाद्य०–ईशाद्यष्टोत्तरशतोपनिषद Ed. W.L.Shastri–Paniskar (3rd.ed, Nirnaya–Sagar Press, 1925)।
६. जैध०– जैन धर्म, प्रो. ग्लाजेनाप्प के जर्मन ग्रथ का गुजराती अनुवाद, (भावनगर, १९८७)।
७. जैप्र०–जैन धर्म प्रकाश, ले.ब्र.शीतलप्रसाद जी (बिजनौर, १९२७)।
८. जैप्रयलेसं०– जैन प्रतिमा और यत्र लेख सग्रह, ले.बाबू छोटेलाल(कलकत्ता, १९२३)।
९. जैम०–जैन धर्म का महत्व, स श्री सूरजमल जी (बम्बई, १९११)।
१०. जैशिसं० –जैन शिलालेख सग्रह, ले.प्रो. हीरालाल (मा.ग्र.बम्बई)।
११. ठाणा०–ठाणांग–सूत्र, श्वेताम्बर आगम ग्रथ; श्वे. मुनि अमोलक ऋषि कृत हिन्दी अनुवाद सहित (हैदराबाद सस्करण)।
१२. द्रसं०–द्रव्यसग्रह, श्री नेमिचन्द्राचार्य कृत (S.B.J.Arrah 1917)।
१३. दाठा०–दाठावसो(बौद्धग्रथ), Ed Dr.B.C.Law (Lahore 1925)।
१४. दाम०–दानवीर माणिकचन्द, ब्र.शीतलप्रसाद (सूरत)।
१५. दिजैडा०– दिगम्बर जैन डायरेक्टरी (श्री खेमराज कृष्णदास बम्बई, १९१४)।
१६. दिमु० –दिगम्बर मुद्रा की सर्वमान्यता, के भुजबलि शास्त्री (आरा, २४५६)।
१७. दिमुनि० –दिगम्बर मुनि, ले.बा कामताप्रसाद जैन (दिल्ली, १९३१ ई)।
१८. दीघ०– दीघनिकाय (बौद्ध ग्रथ)–(Pali Texts Society Series)।
१९. देजै०–देवगढ़ के जैन मदिर, ले श्री विश्वम्भरदास गार्गीय।
२० प्राजैलेसं०–प्राचीन जैन लेख सग्रह, लेख बा.कामताप्रसाद जैन (वर्धा १९२६)।
२१. पंत०–पचतत्र (इण्डियन प्रेस लि. प्रयाग)।
२२. फाह्यान–फाह्यान का भारत भ्रमण (इण्डियन प्रेस लि. प्रयाग)।
२३ बवि० –बनारसी विलास, कविवर बनारसीदास कृत (बम्बई, २४३२ वी.नि स.)।
२४. बप्राजैस्मा०–बम्बई प्रान्त के जैन स्मारक, ब्र. शीतलप्रसाद कृत (सूरत १९२५)।
२५. बंबिओजैस्मा०–ब गाल बिहार ओड़ीसा के जैन स्मारक, ब्र. शीतलप्रसाद जी कृत।
२६ भद्र०–भद्रबाहुचरित, श्री उदयलाल जी, (बनारस, २४३७ वी)।
२७ भपा०–भगवान पार्श्वनाथ, ले बा. कामताप्रसाद जैन (सूरत, २४५०)।

२८ भम॰-भगवान महावीर, ले बा कामताप्रसाद जैन (सूरत २४५५)।

२९ भमबु॰-भगवान महावीर और म. बुद्ध, ले.बा. कामताप्रसाद जैन (सूरत, २४५३)।

३० भमी॰-भट्टारक मीमासा (गुजराती) (सूरत, २४३८)।

३१ भाइ॰-भारतवर्ष का इतिहास, प्रो ईश्वरीप्रसाद कृत (इण्डियन प्रेस)।

३२ भाप्रारा॰-भारतवर्ष के प्राचीन राजवश, सा. श्री विश्वेश्वरनाथ रेउ कृत भाग १-३ (बम्बई, १९२० व १९२५)।

३३ मजैई॰-मराठी जैन लोकाचे इतिहास, श्री अनन्ततनय कृत (वेलगाँव १९१८ ई.)।

३४ मज्झिम॰ -मज्झिमनिकाय (बौद्ध ग्रथ), (Pali Texts Society Series)।

३५ मप्राजैस्मा॰-मध्यप्रातीय जैन स्मारक, ब्र शीतलप्रसाद जी कृत (सूरत)।

३६ मजैस्मा॰-मद्रास मैसूर प्रान्तीय जैन स्मारक, ब्र. शीतलप्रसाद जी कृत (सूरत २४५४)।

३७ मूला॰-मूलाचार, श्री वट्टकेरस्वामी कृत

३८ रश्रा॰-रत्नकरण्डक श्रावकाचार, स श्री जुगलकिशोर मुख्तार (मा ग्र बम्बई, १९८२)।

३९ राइ॰-राजपूताने का इतिहास, रा.ब. गौरीशकर हीराचन्द ओझा (अजमेर १९८२)।

४० लाटी॰-लाटीसहिता, श्री प. दरबारीलाल द्वारा सपादित (मा ग्र बम्बई, १९८४)।

४१. विर॰ -विद्वद्रत्नमाला, श्री नाथूराम प्रेमी कृत (बम्बई १९१२ ई.)।

४२ विको॰ -विश्वकोष, स श्री नगेन्द्रनाथ वसु (कलकत्ता)।

४३ वृजैश॰-वृहत् जैन शब्दार्णव भा १, ले. श्री बा विहारीलाल जी 'चैतन्य' (बाराबकी, १९२५ ई)।

४४ वेजै॰- वेद पुराणादि ग्रथो मे जैनधर्म का अस्तित्व, श्री मक्खनलाल कृत (दिल्ली, १९३०)।

४५ सजै॰-सनातन जैन धर्म, श्री चम्पतराय कृत।

४६. सागार॰-सागार धर्मामृत, स श्री लालाराम जी (सूरत, २४४२)।

४७ सप्राजैस्मा॰-सयुक्तप्रान्तीय जैन स्मारक, श्री ब्र शीतलप्रसाद जी कृत (प्रयाग १९२३)।

४८. सूस॰-सूरीश्वर और सम्राट, ले.श्री कृष्णलाल (आगरा, १९८०)।

४९. श्रुता०-श्रुतावतार कथा, श्री इन्द्रनन्दि कृत (बम्बई, २४३४ वीर नि. सं.।

५०. हुभा०-हुयेनसांग का भारतभ्रमण, श्री ठाकुरप्रसाद शर्मा (इण्डियन प्रेस, प्रयाग, १९२९ ई.)।

पत्र-पत्रिकायें

५१. अ०- अनेकान्त-मासिक पत्र, सपादक श्री जुगलकिशोर मुख्तार (दिल्ली)।

५२. जैमि० -जैनमित्र, बम्बई प्रा.दि.जैन सभा का मुखपत्र (सूरत)।

५३. जैसासं०-जैन साहित्य सशोधक, त्रैमासिक पत्र, स. श्री जिनविजय (पूना)।

५४. जैसिभा० -जैन सिद्धान्त भास्कर, स. श्री पद्मराज जैन।

५५ जैहि० -जैन हितैषी, स. श्री नाथूराम-श्री जुगलकिशोर जी (बम्बई)।

५६. दिजै० -दिगम्बर जैन, स. श्री मूलचन्द किसनदास कापड़िया (सूरत)।

५७. पुरातत्व-गुजराती त्रैमासिक पत्र, स. श्री जिनविजयजी (अहमदाबाद)।

५८. वीर०-भा.दि. जैन परिषद का मुखपत्र, सं. बा. कामता प्रसाद जैन व प. शोभाचन्द्र भारिल्ल (विजनौर)।

अंग्रेजी भाषा के ग्रन्थ

59. ADJB = 'A Dictionary of Jain Bibliography' by V.S. Tank (Arrah, 1916).

60. AGT = 'A Guide to Taxilla'– by Sir John Marshall (Calcutta, 1918).

61. AI = 'Ancient India' by J.W.Mc Crindle (1877 & 1901)

62. AISJ = 'An Indian Sect of the Jainas' by Prof Buhler (London, 1903)

63. AIT = 'Ancient Indian Tribes' by Dr. B.C.Law (Lahore, 1926).

64. AR = 'Asiatic Researches', ed. Sir William Jones., Vol. III (1799) & Vol IX (1809).

65. ASM = 'A Study of the Mahavastu' by Dr B.C. Law (Calcutta. 1930).

66. Bernier = 'Travels in the Mogul Empire' by Dr.Francis Bernier (Oxford, 1914)

67. BS = 'Buddhistic Studies' by Dr B.C.Law (Calcutta, 1931)

68. CHI = 'Cambridge History of India' Vol. I, ed. Prof. E.J Rapson, 1922.

69. DJ ='Der Jainismus' (German) by Prof. Dr. Helmuth Von Glassenapp, Ph D Berlin, 1925.
70. EB = 'Encyclopaedia Britahica' 11th ed Vol XV).
71. EHI = 'Early History of India' 4th, ed; by Sir Vincient Smith (Oxford, 1924)
72. Elliot = 'History of India as told by its Historians' by Sir H.M. Elliot & Prof. John Dowson. Vol 1 (1867) & III (London, 1871).
73. HARI = 'History of Aryan Rule in India', by E.B Havell
74. HDW ='Hindu Dramatic Works' by H H. Wilson (Calcutta, 1901).
75. HG = 'Historical Gleanings' by Dr B C Law (Calcutta, 1922).
76. HKL = 'History of Kanarese Literature', by E. P. Ria (Calcutta, 1921).
77. IA = Indian Antiquary (Bombay).
78. IHQ = 'Indian Historical Quarterly' ed Dr N N.Law (Calcutta)
79. JBORS ='Journal of Bihar & Orissa Research society' ed K.P. Jayaswal M A (Patna)
80. JG = 'Jaina Gazette', ed Mr C S Mallinath (Madras)
81. JOAM = 'Jaina & other Antiquities of Mathura' by Sir V. Smith
82. JRAS = 'Journal of the Royal Asiatic Society' (London)
83. JS = 'Jaina Sutras' ed Prof H.Jacobi (S B E , XLV)
84. KK = Key of Knowledge, by Mr. C R.Jain (3rd ed 1928).
85. LWB ='Life & Work of Buddhaghosha' by Dr B C Law (Calcutta)
86. NJ = 'Nudity of the Jaina Saints' by Mr. C R.Jain (Delhi, 1931).
87. OII = 'Original Inhabitants of India' by G Oppert (Madras, 1893)
88. Oxford = 'Oxford History of India' by Sir Vincent A.Smith (Oxford 1917).
89. PB = 'Psalms of Brethren', ed Mrs Rhys Davids (London, 1913).
90. PS = 'Panchastikaya-sara (S B.J., Arrah) ed Prof A Chakraverty.
91. QJMS = 'Quarterly Journal of the Mythic society' (Bangalore).
92. QKM ='Questions of King Milinda' by T.W Rhy Davids (S BE , VOL XXXV)
93. Rishabh = 'Rishabhadeo, the Founder of Jainism' by Mr C R Jain (Allahabad, 1929)
94. SAI ='Ancient India' by Prof. S K. Aiyangar. M.A (London 1911).

95. S.C ='Some Contributions of South Indian Culutre' by Prof S K Aiyangar (1923)
96 SPCIV = 'Survival of the Prehistoric Civilisation of the Indus Valley' by R B Ramprasad Chanda B A (Calcutta, 1929)
97. SSIJ = 'Studies in South Indian Jainism' by Prof M S Ramaswami Ayyangar M A & B Seshagiri Rao M A (Madras 1922)

ॐ नमः सिद्धेभ्यः

दिगम्बरत्व और दिगम्बर मुनि

[१]

दिगम्बरत्व

(मनुष्य की आर्दश स्थिति)

•

"मनुष्य मात्र की आदर्श स्थिति दिगम्बर ही है। आदर्श मनुष्य सर्वथा निर्दोष होता है-विकारशून्य होता है।" -महात्मा गाँधी

"प्रकृति की पुकार पर जो लोग ध्यान नही देते, उन्हे तरह-तरह के रोग और दु ख घेर लेते है, परन्तु पवित्र प्राकृतिक जीवन बिताने वाले जगल के प्राणी रोगमुक्त रहते है और मनुष्य के दुर्गुणो और पापाचारो से बचे रहते हैं।" -रिटर्न टु नेचर

•

दिगम्बरत्व प्रकृति का रूप है। वह प्रकृति का दिया हुआ मनुष्य का वेष है। आदम और हव्वा इसी रूप मे रहे थे। दिशाये ही उनके अम्बर थे-वस्त्रविन्यास उनका वही प्रकृतिदत्त नग्नत्व था। वह प्रकृति के अचल मे सुख की नीद सोते और आनन्द रेलियाँ करते थे। इसलिये कहते हैं कि मनुष्य की आदर्श स्थिति दिगम्बर है। नग्न रहना ही उनके लिये श्रेष्ठ है। इसमे उसके लिये अशिष्टता और असभ्यता की कोई बात नही है, क्योकि दिगम्बरत्व अथवा नग्नत्व स्वय अशिष्ट अथवा असत्य वस्तु नही है। वह तो मनुष्य का प्राकृत रूप है। ईसाई मतानुसार आदम और हव्वा नगे रहते हुए कभी न लजाये और न वे विकार के चगुल में फसकर अपने सदाचार से हाथ धो बैठे। किन्तु जव उन्होने बुराई-भलाई, पाप-पुण्य का वर्जित फल खा लिया तो वे अपनी प्राकृत दशा को खो बैठे और उनकी सरलता जाती रही। वे ससार के साधारण प्राणी हो गये। बच्चे को लीजिये, उसे कभी भी अपने नग्नत्व के कारण लज्जा का अनुभव नही होता और न उसके माता-पिता अथवा अन्य लोग ही उसकी नग्नता पर नाक-भौ सिकोडते हैं। अशक्त रोगी की परिचर्या स्त्री या धाय

करती है– वह रोगी अपने कपड़ो की सार–संभाल स्वय नही कर पाता, किन्तु स्त्री या धाय रोगी की सब सेवा करते हुए जरा भी अशिष्टता अथवा लज्जा का अनुभव नही करती। यह कुछ उदाहरण हैं जो इस बात को स्पष्ट करते हैं कि नग्नत्व वस्तुतः कोई बुरी चीज नही है। प्रकृति भला कभी किसी जमाने मे बुरी हुई भी है? तो फिर मनुष्य नगेपन से क्यो झिझकता है? क्यो आज लोग नगा रहना सामाजिक मर्यादा के लिये अशिष्ट और घातक समझते हैं? इन प्रश्नो का एक सीधा सा उत्तर है–"आज मनुष्य का नैतिक पतन चरम सीमा को पहुँच चुका है, वह पाप मे इतना सना हुआ है कि उसे मनुष्य की आदर्श–स्थिति दिगम्बरत्व पर घृणा आती है। अपनेपन को गँवाकर पाप के पर्दे मे कपडो की आड़ लेना ही उसने श्रेष्ठ समझा है।" किन्तु वह भूलता है, पर्दा पाप की जड़ है–वह गदगी का ढेर है। बस, जो जरा सी समझ या विवेक से काम लेना जानता है, वह गंदगी को नही अपना सकता और न ही अपनी आदर्श स्थिति दिगम्बरत्व से चिढ़ सकता है।

वस्त्रो का परिधान मनुष्य के लिए लाभदायक नही है और न वह आवश्यक ही है। प्रकृति ने प्राणीमात्र के शरीर का गठन इस प्रकार किया है कि यदि वह प्राकृत वेश मे रहे तो उसका स्वास्थ्य नीरोग और श्रेष्ठ हो तथा उसका सदाचार भी उत्कृष्ट रहे। जिन विद्वानो ने उन भील आदिको को अध्ययन की दृष्टि से देखा है, जो नगे रहते हैं, वे इसी परिणाम पर पहुँचे है कि उन प्राकृत वेष मे रहने वाले 'जगली' लोगो का स्वास्थ्य शहरो में बसने वाले सभ्यताभिमानी 'सज्जनो'से लाख दर्जा अच्छा होता है, और आचार–विचार मे भी वे शहरवालो से बढ़े–चढ़े होते हैं। इस कारण वे एक वस्त्र परिधान की प्रधानता युक्त सभ्यता को उच्चकोटि पर पहुँचते स्वीकार नही करते।[१] उनका यह कथन है भी ठीक, क्योकि प्रकृति की होड़ कृत्रिमता नही कर सकती। महात्मा गाँधी के निम्न शब्द भी इस विषय मे दृष्टव्य हैं–

"वास्तव मे देखा जाय तो कुदरत ने चर्म के रूप मे मनुष्य को योग्य पोशाक पहनाई है। नग्न शरीर कुरूप दिखाई पड़ता है, ऐसा मानना हमारा भ्रम मात्र है। उत्तम–उत्तम सौन्दर्य के चित्र तो नग्न दशा में ही दिखाई पड़ते है। पोशाक से साधारण अगो को ढककर हम मानो कुदरत के दोषो को दिखला रहे हैं। जैसे–जैसे हमारे पास ज्यादा पैसे होते जाते हैं, वैसे ही वैसे हम सजावट बढ़ाते जाते हैं। कोई किसी भाँति और कोई किसी भाँति रूपवान बनना चाहते हैं और बन–ठन कर काँच

---

१ "Having given some study to the subject I may say that Rev J F Wilkinson's remarks upon the superior morality of the races that do not wear clothes is fully borne out by the testimony of the travellers It is true that wearing of clothes goes with a higher state of the arts and to that extent with civilisation, but it is on the other hand attended by a lower state of health and morality so that no clothed civilisation can expect to attain to a high rank" — "Daily News, London" of 18th April, 1913

मे मुँह देख प्रसन्न होते हैं कि 'वाह! मैं कैसा खूबसूरत हूँ! बहुत दिनो के ऐसे ही अभ्यास से अगर हमारी दृष्टि खराब न हो गई हो तो हम तुरन्त देख सकेगे कि मनुष्य का उत्तम से उत्तम रूप उसकी नग्नावस्था मे ही है और उसी मे उसका आरोग्य है।"[१]

इस प्रकार सौन्दर्य और स्वास्थ्य के लिए दिगम्बरत्व अथवा नग्नत्व एक मूल्यमयी वस्तु है, किन्तु उसका वास्तविक मूल्य तो मानव-समाज में सदाचार की सृष्टि करने मे है। नग्नता और सदाचार का अविनाभावी सम्बन्ध है। सदाचार के बिना नग्नता कौड़ी मोल की नहीं है। नगा मन और नगा तन ही मनुष्य की आदर्श स्थिति है। इसके विपरीत गन्दा मन और नगा तन तो निरी पशुता है। उसे कौन बुद्धिमान स्वीकार करेगा?

लोगो का ख्याल है कि कपड़े-लत्ते पहनने से मनुष्य शिष्ट और सदाचारी रहता है। किन्तु बात वास्तव मे इसके बरअक्स (विपरीत) है। कपड़े-लत्ते के सहारे तो मनुष्य अपने पाप और विकार को छुपा लेता है। दुर्गुणो और दुराचार का आगार बना रहकर भी वह कपड़े की ओट मे पाखण्ड रूप बना सकता है, किन्तु दिगम्बर वेष में यह असम्भव है। श्री शुक्राचार्य जी के कथानक से यह बिल्कुल स्पष्ट है-शुक्राचार्य युवा थे, पर दिगम्बर वेष मे रहते थे। एक रोज वह वहाँ से जा निकले जहाँ तालाब मे कई देव-कन्याये नगी होकर जल-क्रीड़ा कर रही थीं। उनके नगे तन ने देव-रमणियो मे कुछ भी क्षोभ उत्पन्न न किया। वे जैसी की तैसी नहाती रहीं और शुक्राचार्य निकले अपनी धुन मे चले गये। इस घटना के थोडी देर बाद शुक्राचार्य के पिता वहाँ आ निकले। उनको देखते ही देव-कन्याये नहाना-धोना भूल गईं। वे झटपट जल के बाहर निकलीं और उन्होने अपने वस्त्र पहन लिये। एक नगे युवा को देखकर तो उन्हे ग्लानि और लज्जा न आई किन्तु एक वृद्ध शिष्ट से दिखते 'सज्जन' को देखकर वे लजा गईं।भला इसका क्या कारण? यही न कि नगा युवा अपने मन मे भी नगा था। उसे विकार ने नही आ घेरा था। इसके विपरीत उसका वृद्ध और शिष्ट पिता विकार से रहित न था। वह अपने शिष्ट वेष (?) मे इस विकार को छिपाये रखने मे सफल था। किन्तु दिगम्बर युवा के लिए वैसा करना असभव था। इसी कारण वह निर्विकारी और सदाचारी था। अतः कहना होगा कि सदाचार की मात्रा नगे रहने मे अधिक है। नगापन दिगम्बरत्व का आभूषण है। विकार-भाव को जीते बिना ही कोई नगा रहकर प्रशसा नही पा सकता। विकारी होना दिगम्बरत्व के लिए कलक है, न वह सुखी हो सकता है और न उसे विवेक-नेत्र मिल सकता है। इसीलिये भगवत् कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं-

> णग्गो पावइ दुक्खं णग्गो ससारसागरे भमई।
> णग्गो ण लहई बोहिं, जिणभावणवज्जिओ सुदूर।।[२]

---

१ आरोग्य पृ ५७

२ भाव पाहुड ६८ गाथा-अष्ट , पृ. २०९-२१०।

भावार्थ- नगा दु ख पाता है, वह ससार-सागर मे भ्रमण करता है, उसे बोधि, विज्ञान दृष्टि प्राप्त नही होती, क्योकि नगा होते हुए भी वह जिन-भावना से दूर है। इसका मतलब यही है कि जिन-भावना से युक्त नग्नता ही पूज्य है-उपयोगी है और जिन-भावना से मतलब रागद्वेषादि विकार भावो को जीत लेना है। इस प्रकार नगा रहना उसी के लिए उपादेय है जो रागद्वेषादि विकार-भावो को जीतने मे लग गया है-प्रकृति का होकर प्राकृत वेष मे रह रहा है। ससार के पाप-पुण्य, बुराई-भलाई का जिसे भान तक नही है, वही दिगम्बरत्व धारण करने का अधिकारी है और चूँकि सर्वसाधारण गृहस्थो के लिये इस परमोच्च स्थिति को प्राप्त कर लेना सुगम नही है, इसलिये भारतीय ऋषियो ने इसका विधान गृहत्यागी अरण्यवासी साधुओ के लिये किया है। दिगम्बर मुनि ही दिगम्बरत्व को धारण करने के अधिकारी हैं, यद्यपि यह बात जरूर है कि दिगम्बरत्व मनुष्य की आदर्श स्थिति होने के कारण मानव-समाज के पथ-प्रदर्शक श्री भगवान ऋषभदेव ने गृहस्थो के लिये भी महिने के पर्व दिनो मे नगे रहने की आवश्यकता का निर्देश किया था[1] और भारतीय गृहस्थ उनके इस उपदेश का पालन एक बड़े जमाने तक करते थे।

इस प्रकार उक्त वक्तव्य से यह स्पष्ट है कि दिगम्बरत्व मनुष्य की आदर्श स्थिति है-आरोग्य और सदाचार का वह पोषक ही नही जनक है। किन्तु आज का ससार इतना पाप ताप से झुलस गया है कि उस पर एकदम दिगम्बर वारि (जल) डाला नही जा सकता। जिन्हे विज्ञान-दृष्टि नसीब हो जाती है, वही अभ्यास करके एक दिन निर्विकारी दिगम्बर मुनि के वेष मे विचरते हुए दिखाई पडते है। उनको देखकर लोगो के मस्तक स्वय झुक जाते है। वे प्रज्ञा-पुञ्ज और तपोधन लोक-कल्याण मे निरत रहते हैं। स्त्री-पुरुष, बालक-वृद्ध, ऊँच-नीच, पशु-पक्षी सब ही प्राणी उनके दिव्य रूप मे सुख-शान्ति का अनुभव करते है। भला प्रकृति प्यारी क्यो न हो? दिगम्बरत्व साधु प्रकृति के अनुरूप है। उनका किसी से द्वेष नही, वे तो सबके हैं,और सब उनके हैं, वे सर्वप्रिय और सदाचार की मूर्ति होते है।

यदि कोई दिगम्बर होकर भी इस प्रकार जिन-भावना से युक्त नही है तो जैनाचार्य कहते है कि उनका नग्न वेष धारण करना निरर्थक है-परमोद्देश्य से वह भटका हुआ है। इस लोक और परलोक, दोनो ही उसके नष्ट हैं।[2] बस, दिगम्बरत्व वही शोभनीय है, जहाँ परमोद्देश्य दृष्टि से ओझल नही किया गया है। तब ही तो वह मनुष्य की आदर्श स्थिति है।

---

१ सागार, अ ७ श्लोक ७ व भमबु. पृ २०५-२०७।

२ निरट्ठिया नग्नरूई ठ तस्स, जे उत्तमट्ठ विवज्जासमेइ।
इमे विसे नत्थि परे विलोए, दुहओ बिसे झिज्जइ तथ्थ लोए। ४९।"
-उत्तराध्ययन सूत्र व्या २०

"In vain he adopiss, nakedness who errs about matters of paramount interest, neither this world nor the next will be his He is a loser in both respects in the world"
-J. S II P 106

[२]

धर्म और दिगम्बरत्व

णिच्चेलपाणिपत्त उवइट्ठ परमजिणवरिंदेहिं।
एक्को वि मोक्खमग्गो सेसा य अमग्गया सव्वे।।१०।।[1]

अर्थात्-अचेलक-नग्नरूप और हाथो को भोजनपात्र बनाने का उपदेश जिनेन्द्र ने दिया है। यही एक मोक्ष-धर्म मार्ग है। इसके अतिरिक्त शेष सब अमार्ग हैं।

'धम्मो वत्थु सहावो' - धर्म वस्तु का स्वभाव है और दिगम्बरत्व मनुष्य का निजरूप है, उसका प्राकृत स्वभाव है। इस दृष्टि से मनुष्य के लिये दिगम्बरत्व परमोपादेय धर्म है। धर्म और दिगम्बरत्व मे यहाँ कुछ भेद ही नही रहता। सचमुच सदाचार के आधार पर टिका हुआ दिगम्बरत्व धर्म के सिवा और कुछ हो भी क्या सकता है?

जीवात्मा अपने धर्म को गवाये हुये है। लौकिक दृष्टि से देखिये या आध्यात्मिक से, जीवात्मा भवभ्रमण के चक्कर मे पडकर अपने स्वभाव से हाथ धोये बैठा है। लोक मे वह नगा आया है फिर भी समाज-मर्यादा के कृत्रिम भय के कारण वह अपने रूप (नग्नत्व) को खुशी-खुशी छोड बैठता है। इसी तरह जीवात्मा स्वभाव में सच्चिदानन्द रूप होते हुये भी ससार की माया-ममता में पडकर उस स्वानुभवानन्द से वचित है। इसका मुख्य कारण जीवात्मा की राग-द्वेष जनित परिणति है। राग-द्वेषमयी भावो से प्रेरित होकर वह अपने मन, वचन और काय की क्रिया तद्वत् करता है। इसका परिणाम यह होता है कि उस जीवात्मा मे लोक मे भरी हुई पौद्गलिक कर्म-वर्गणाये आकार चिपट जाती हैं और उनका आवरण जीवात्मा के ज्ञान-दर्शन आदि गुणो को प्रकट नही होने देता। जितने अशो में ये आवरण कम या ज्यादा होते हैं उतने ही अशो मे आत्मा के स्वाभाविक गुणो का कम या ज्यादा प्रकाश प्रकट होता है। यदि जीवात्मा अपने स्वभाव को पाना चाहता है तो उसे इन सब ही कर्म सम्बन्धी आवरणो को नष्ट कर देना होगा, जिनका नष्ट कर देना असभव है।

इस प्रकार जीवात्मा के धर्म-स्वभाव के घातक उसके पौद्गलिक सम्बन्ध हैं।जीवात्मा को आत्म-स्वातत्र्य प्राप्त करने के लिए इस पर-सम्बन्ध को बिल्कुल छोड देना होगा। पार्थिव ससर्ग से उसे अछूत हो जाना होगा। लोक और आत्मा दोनो ही क्षेत्रो मे वह एकमात्र अपने उद्देश्य-प्राप्ति के लिये सतत उद्योगी रहेगा। बाहरी और भीतरी सब ही प्रपचो से उसका कोई सरोकार न होगा। परिग्रह नाममात्र को वह न रख सकेगा। यथाजातरूप में रहकर वह अपने विभावमयी रागादि कषाय शत्रुओ को

१ अष्ट , सूत्रपाहुड-१०

नष्ट करने पर तुल पड़ेगा। ज्ञान और ध्यान रूपी शस्त्र लेकर वह कर्म-सम्वन्धो को विल्कुल नष्ट कर देगा और तव वह अपने स्वरूप को पा लेगा। किन्तु यदि वह सत्य-मार्ग से जरा भी विचलित हुआ और वाल वरावर परिग्रह के मोह मे जा पड़ा तो उसका कही ठिकाना नही।

इसीलिये कहा गया है कि-

बालग्गकोडिमत्तं परिग्गहगहणं ण होइ साहूणं।
भुंजेइ पाणिपत्ते दिण्णण्णं इक्कठाणम्मि ।।१७।।[१]

भावार्थ-वाल के अग्रभाग (नोक) के वरावर भी परिग्रह का ग्रहण साधु के नही होता है। वह आहार के लिये भी कोई वर्तन नही रखता-हाथ ही उसके भोजनपात्र हैं और भोजन भी वह दूसरे का दिया हुआ, एक स्थान पर और एक वार ही ऐसा ग्रहण करता है जो प्रासुक है-स्वय उसके लिये न वनाया गया हो।

अव भला कहिये, जव भोजन से भी कोई ममता न रखी गई-दूसरे शब्दो मे, जव शरीर से ही ममत्व हटा लिया गया तव अन्य परिग्रह दिगम्वर साधु कैसे रखेगा? उसे रखना भी नही चाहिये, क्योकि उसे तो प्रकृतिरूप आत्म-स्वातत्र्य प्राप्त करना है, जो ससार के पार्थिव पदार्थो से सर्वथा भिन्न है। इस अवस्था में वह वस्त्रो का परिधान भी कैसे रखेगा? वस्त्र तो उसके मुक्ति-मार्ग मे अर्गला वन जायेगे। फिर वह कभी भी कर्म-बन्धन से मुक्त न हो पायेगा। इसीलिये तत्वज्ञाओ ने साधुओ के लिये कहा है कि-

जहजायरूवसरिसो तिलतुसमित्तं ण गिहदि हत्तेसु।
जइ लेइ अप्पवहुयं तत्तो पुण जाइ णिग्गोदं ।।१८।।[२]

अर्थात्-मुनि यथाजातरूप है-जैसा जन्मता वालक नग्नरूप होता है वैसा नग्नरूप दिगम्वर मुद्रा का धारक है-वह अपने हाथ मे तिल-तुप मात्र भी कुछ ग्रहण नही करता। यदि कुछ भी ग्रहण कर ले तो वह निगोद मे जाता है।

परिग्रहधारी के लिये आत्मोन्नति की पराकाष्टा पा लेना असभव है। एक लंगोटीवत् के परिग्रह के मोह से साधु किस प्रकार पतित हो सकता है, यह धर्मात्मा सज्जनो की जानी-सुनी वात है। प्रकृति तो कृत्रिमता की सर्वाहुति चाहती है, तव ही वह प्रसन्न होकर अपने पूरे सौन्दर्य को विकसित करती है। चाहे पैगम्वर हो या तीर्थकर ही क्यो न हो, यदि वह गृहस्थाश्रम में रह रहा है, समाज-मर्यादा के आत्मविमुख वन्धन में पड़ा हुआ है तो वह भी अपने आत्मा के प्रकृत रूप को नही पा सकता। इसका एक कारण है। वह यह कि धर्म एक विज्ञान है। उसके नियम प्रकृति के अनुरूप अटल और निश्चल हैं। उनसे कही किसी जमाने मे भी किसी कारण से

१ अप्ट., सूत्रपाहुड-१७

२. वही-१८

रचमात्र अन्तर नही पड़ सकता है। धर्म विज्ञान कहता है कि आत्मा स्वाधीन और सुखी तब ही हो सकता है जब वह पर–सम्बन्ध पुद्गल के संसर्ग से मुक्त हो जावे। अब इस नियम के होते हुये भी पार्थिव वस्त्र–परिधान को रखकर कोई यह चाहे कि मुझे आत्म–स्वातंत्र्य मिल जाये तो उसकी यह चाह आकाश कुसुम को पाने की आशा से बढ़कर न कही जायगी ? इसी कारण जैनाचार्य पहले ही सावधान करते हैं कि–

णवि सिज्झइ वत्थधारो जिणसासणे जइ वि होई तित्थयरो।
णग्गो विमोखमग्गो सेसा उम्मग्गया सव्वे।।२३।।[१]

भावार्थ– जिन–शासन में कहा गया है कि वस्त्रधारी मनुष्य मुक्ति नही पा सकता है, जो तीर्थंकर होते तो वह भी गृहस्थ दशा मे मुक्ति को नही पाते हैं–मुनि दीक्षा लेकर जब दिगम्बर वेष धारण करते हैं तब ही मोक्ष पाते हैं। अतः नग्नतत्व ही मोक्षमार्ग है–बाकी सब लिंग उन्मार्ग हैं।

धर्म के इस वैज्ञानिक नियम के कायल ससार के प्राय· सब ही प्रमुख प्रवर्तक रहे हैं, जैसा कि आगे के पृष्ठो मे व्यक्त किया गया है और उनका इस नियम–दिगम्बरत्व–को मान्यता देना ठीक भी है, क्योंकि दिगम्बरत्व के बिना धर्म का मूल्य कुछ भी शेष नही रहता–वह धर्म स्वभाव रह ही नही पाता है। इस प्रकार धर्म और दिगम्बरत्व का सम्बन्ध स्पष्ट है।

---

१ अष्ट , सूत्रपाहुड–२३

दिगम्बरत्व के आदि प्रचारक ऋषभदेव

भुवनाम्भोजमार्तण्ड धर्मामृतपयोधरम ।
योगिकल्पतरु नौमि देवदेव वृषभध्वजम् । -ज्ञानार्णव

दिगम्बरत्व प्रकृति का एक रूप है। इस कारण उसका आदि और अन्त कहा ही नही जा सकता। वह तो एक सनातन नियम है। किन्तु उस पर भी इस परिच्छेद के शीर्षक मे श्री ऋषभदेव जी को दिगम्बरत्व का आदि प्रचारक लिखा है। इसका एक कारण है। विवेकी सज्जन के निकट दिगम्बरत्व केवल नग्नता मात्र का द्योतक नही है, पूर्व परिच्छेदो को पढने से यह बात स्पष्ट हो गई है। वह रागादि विभाव भाव को जीतने वाला यथाजातरूप है और नग्नता के इस रूप का सस्कार कभी न कभी किसी महापुरुष द्वारा जरूर हुआ होगा। जैन शास्त्र कहते है कि इस कल्पकाल मे धर्म के आदि प्रचारक श्री ऋषभदेव जी ने ही दिगम्बरत्व का सबसे पहले उपदेश दिया था।

यह ऋषभदेव अन्तिम मनु नाभिराय के सुपुत्र थे और वह एक अत्यन्त प्राचीन काल मे हुये थे, जिसका पता लगा लेना सुगम नही है। हिन्दू शास्त्रो मे जैनो के इन पहले तीर्थंकर को ही विष्णु का आठवॉं अवतार माना गया है और वहॉं भी इन्हे दिगम्बरत्व का आदि प्रचारक बताया गया है। जैनाचार्य उन्हे योगिकल्पतरु कहकर स्मरण करते है।

हिन्दुओ के श्रीमद्भागवत मे इन्ही ऋषभदेव का वर्णन है और उसमें उन्हे परमहस दिगम्बर धर्म का प्रतिपादक लिखा है, यथा-

'एवमनुशास्यात्मजान् स्वयमनुशिष्टानपि लोकानुशासनार्थ महानुभाव· परमसुहृद् भगवानृषभो देव उपशमशीलानामुपरतकर्मणा महामुनीनां भक्तिज्ञानवैराग्यलक्षण पारमहस्यधर्ममुपशिक्ष्यमाण स्वतनयशतज्येष्ठ परमभागवत भगवज्जनपरायण भरत धरणीपालनायाभिषिच्य स्वय भवन एवोवरित शरीरमात्र- परिग्रह उन्मत इव गगनपरिधान. प्रकीर्णककेश आत्मन्यारोपिता हवनीयो ब्रह्मावर्तात् प्रवव्राज ।।२९।।'

-भागवतस्कध ५, अ ५

अर्थात्-"इस भॉंति महायशस्वी और सबके सुहृद् ऋषभ भगवान् ने यद्यपि उनके पुत्र सब भॉंति से चतुर थे, परन्तु मनुष्यो को उपदेश देने हेतु, प्रशांत और कर्मबन्धन से रहित महामुनियो को भक्ति, ज्ञान और वैराग्य के दिखाने वाले परमहस आश्रम की शिक्षा देने हेतु, अपने सौ पुत्रो मे ज्येष्ठ परम भागवत, हरिभक्तो के सेवक भरत को पृथ्वीपालन हेतु, राज्याभिषेक कर तत्काल ही ससार को

छोड दिया और आत्मा में होमाग्नि का आरोप कर केश खोल उन्मत की भांति नग्न हो, केवल शरीर को सग ले, ब्रह्मावर्त से सन्यास धारण कर चल निकले।"

इस उद्धरण के मोटे टाइप के अक्षरो से ऋषभदेव का परमहस दिगम्बर धर्म शिक्षक होना स्पष्ट है।

तथा इसी ग्रथ के स्कध २, अध्याय ७, पृष्ठ ७६ में इन्हे दिगम्बर और जैन मत को चलाने वाला उसके टीकाकार ने लिखा है[१]। मूल श्लोक मे उनके दिगम्बरत्व को ऋषियो द्वारा वदनीय बताया है –

नाभेरसा वृषभ आससु देव सूनु-
र्योवैव चारसमदृग्जडयोगचर्याम्।
यत् पारमहंस्यमृषय पदमामनंति
स्वस्थः प्रशातकरण परिमुक्तसगः ॥१०॥

उधर हिन्दुओ के प्रसिद्ध योगशास्त्र "हठयोगप्रदीपिका" मे सबसे पहले मगलाचरण के तौर पर आदिनाथ ऋषभदेव की स्तुति की गई और वह इस प्रकार है–[२]

श्री आदिनाथाय नमोऽस्तु तस्मै,
येनोपदिष्टा हठयोगविद्या।
विभ्राजते प्रोन्नतराजयोग
मारोढुमिच्छोरधिरोहिणीव ॥१॥

अर्थात्–"श्री आदिनाथ को नमस्कार हो, जिन्होने उस हठयोग विद्या का सर्वप्रथम उपदेश दिया जो कि बहुत ऊँचे राजयोग पर आरोहण करने के लिये नसैनी के समान है।"

हठयोग का श्रेष्ठतम रूप दिगम्बर है। परमहस मार्ग ही तो उत्कृष्ट योगमार्ग है। इसी से 'नारद परिव्राजकोपनिषद्' मे 'योगी परमहंसाख्य साक्षान्मोक्षकसाधनम्' इस वाक्य द्वारा परमहस योग को साक्षात् मोक्ष का एकमात्र साधन बतलाया है। सचमुच "अजैन शास्त्रो में जहाँ कही श्री ऋषभदेव आदिनाथ का वर्णन आया है, उनको परमहस मार्ग का प्रवर्तक बतलाया गया है।"[३]

किन्तु मध्यकालीन साम्प्रदायिक विद्वेष के कारण अजैन विद्वानो को जैन धर्म से ऐसी चिढ़ हो गई कि उन्होने अपने धर्म शास्त्रो में जैनो के महत्त्वसूचक वाक्यो का या तो लोप कर दिया अथवा उनका अर्थ ही बदल दिया।[४] उदाहरण के रूप मे उपर्युक्त

---

१ जितेन्द्रमत दर्पण, प्रथम भाग, पृ १०।
२ अनेकान्त, वर्ष १, पृ ५३८।
३ अनेकान्त, वर्ष १, पृ ५३९।
४ श्री टोडरमलजी द्वारा उल्लिखित हिन्दू शास्त्रों के अवतरणों का पता आजकल के छपे हुये ग्रथो में नही चलता, किन्तु उन्ही ग्रथों की प्राचीन प्रतियो में उनका पता चलता है, यह बात प मक्खनलाल जी जैन अपने 'वेदपुराणादि ग्रथों में जैन धर्म का अस्तित्व' नामक ट्रैक्ट (पृ ४१–५०) में प्रकट करते हैं। प्रो शरच्चन्द्र घोपाल एम ए काव्यतीर्थ आदि ने भी हिन्दू 'पद्मपुराण' के विपय में यही बात प्रकट की थी। (देखो J.G XIV, 90)।

'हठयोग प्रदीपिका' के श्लोक मे वर्णित आदिनाथ को उसके टीकाकार 'शिव'(महादेव जी) बताते हैं, किन्तु वास्तव में इसका अर्थ ऋषभदेव ही होना चाहिये, क्योंकि प्राचीन 'अमरकोषादि' किसी भी कोष ग्रथ मे महादेव का नाम 'आदिनाथ' नही मिलता। इसके अतिरिक्त यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि श्री ऋषभदेव के ही सम्बन्ध मे यह वर्णन जैन और अजैन शास्त्रो मे मिलता है, किसी अन्य प्राचीन मत प्रर्वतक के सम्बन्ध मे नही- कि वह स्वय दिगम्बर रहे थे और उन्होने दिगम्बर धर्म का उपदेश दिया था। उस पर 'परमहसोपनिषद्' के निम्न वाक्य इस बात को स्पष्ट कर देते हैं कि परमहस के स्थापक कोई जैनाचार्य थे-

"तदेतद्विज्ञाय ब्राह्मणः पात्रं कमण्डलुं कटिसूत्रं कौपीनं च तत्सर्वमप्सु विसृज्याथ जातरूपधरश्चरेदात्मानमन्विच्छेत्। यथाजातरूपधरो निर्द्वन्द्वो निष्परिग्रहस्तत्वब्रह्ममार्गे सम्यक् सपन्नः शुद्धमानसः प्राणसधारणार्थ यथोक्तकाले पचगृहेषु करपात्रेणायाचिताहारमाहरन् लाभालाभे समो भूत्वा निर्मम· शुक्लध्यानपरायणोऽध्यात्मनिष्ठः शुभाशुभकर्मनिर्मूलनपरः परमहंसः पूर्णानन्दैकबोधस्तद्ब्रह्मोऽहमस्मीति ब्रह्मप्रणवमनुस्मरन्-भ्रमरकीटकन्यायेन शरीरत्रयमुत्सृज्य देहत्यागं करोति स कृतकृत्यो भवतीत्युपनिषद्।"[१]

अर्थात-"ऐसा जानकर ब्राह्मण (ब्रह्मज्ञानी) पात्र, कमण्डलु, कटिसूत्र और लगोटी इन सब चीजो को पानी मे विसर्जन कर जन्म-समय के वेष को धारण कर अर्थात् बिल्कुल नग्न होकर विचरण करे और आत्मान्वेषण करे। जो यथाजातरूपधारी (नग्न-दिगम्बर), निर्द्वन्द्व, निष्परिग्रह, तत्वब्रह्ममार्ग मे भली प्रकार सम्पन्न, शुद्ध हृदय, प्राणधारण के निमित्त यथोक्त समय पर अधिक से अधिक पॉच घरो मे विहार कर करपात्र मे अयाचित भोजन लेने वाला तथा लाभालाभ मे समचित्त होकर निर्ममत्व रहने वाला, शुक्लध्यान परायण, अध्यात्मनिष्ठ, शुभाशुभ कर्मो के निर्मूलन करने मे तत्पर, परमहस योगी, पूर्णानन्द का अद्वितीय अनुभव करने वाला वह ब्रह्म मैं हूँ, ऐसे ब्रह्म प्रणव का स्मरण करता हुआ भ्रमरकीटक न्याय से (क्रीड़ा भ्रमरी का ध्यान करता हुआ स्वय भ्रमर बन जाता है, इस नीति से) तीनो शरीरो को छोडकर देहत्याग करता है, वह कृतकृत्य होता है, ऐसा उपनिषदो मे कहा गया है।"

---

१ अनेकान्त, वर्ष १ पृ ५३९-५४०।

इस अवतरण का प्रायः सारा ही वर्णन दिगम्बर जैन मुनियो की चर्या के अनुसार है, किन्तु इसमे विशेष ध्यान देने योग्य विशेषण शुक्लध्यानपरायण.है, जो जैन-धर्म की एक खास चीज है। "जैन के सिवाय और किसी भी योग-ग्रन्थ में शुक्लध्यान का प्रतिपादन नही मिलता। पतंजलि ऋषि ने भी शुक्लध्यान आदि भेद नही बतलाये। इसलिए योग ग्रन्थो मे आदि-योगाचार्य के रूप में जिन आदिनाथ का उल्लेख मिलता है वे जैनियो के आदि तीर्थकर श्री आदिनाथ से भिन्न और कोई नही जान पड़ते।"[१]

अथर्ववेद के 'जाबालोपनिषद्' (सूत्र ६) मे परमहस सन्यासी का एक विशेषण 'निर्ग्रथ'[२] भी दिया है और यह हर कोई जानता है कि इस नाम से जैनी ही प्राचीनकाल से प्रसिद्ध हैं। बौद्धो के प्राचीन शास्त्र इस बात का खुला समर्थन करते हैं।[३] जैन धर्म के ही मान्य शब्द को उपनिषद्कार ने ग्रहण और प्रयुक्त करके यह अच्छी तरह दर्शा दिया है कि दिगम्बर साधुमार्ग का मूल स्तोत्र जैनधर्म है और उधर हिन्दू पुराण इस बात को स्पष्ट करते ही हैं कि ऋषभदेव, जैन धर्म के प्रथम तीर्थकर ने ही परमहस दिगम्बर धर्म का उपदेश दिया था। साथ ही यह भी स्पष्ट है कि श्री ऋषभवेद-उपनिषद् ग्रथो के रचे जाने के बहुत पहले हो चुके थे। वेदो मे स्वय उनका और १६ वे अवतार वामन का उल्लेख मिलता है।[४] अत· निस्सदेह भगवान् ऋषभदेव ही वह महापुरुष हैं जिन्होने इस युग के प्रारम्भ में स्वय दिगम्बर वेष धारण करके[५] सर्वज्ञता प्राप्त की थी[६] और सर्वज्ञ होकर दिगम्बर धर्म का उपदेश दिया था। वही दिगम्बरत्व के आदि प्रचारक हैं।

---

१ अनेकान्त, वर्ष १, पृ ५४१।
२. "यथाजातरूपधरो निर्ग्रन्थो निष्परिग्रह" इत्यादि - दिमु , पृ ८।
३ जैकोबी प्रभृति विद्वानो ने इस बात को सिद्ध कर दिया है। (Js Pt II Intro)
४. भपा की प्रस्तावना तथा 'सजै' देखो।
५ "विष्णुपुराण" में भी श्री ऋषभदेव को दिगम्बर लिखा है।
["Rishabha Deva naked, went the way of the great road (महाध्वानम्)
—*Wilso's Vishnu Purana Vol II, [Book II Ch I,] pg 103-104*]
६. श्रीमद्भागवत में ऋषभदेव को 'स्वय भगवान् और कैवल्यपति' बताया है।
(विको ,भा ३, पृ.४४४)।

[४]

हिन्दू धर्म और दिगम्बरत्व

"संयासः षट्विधो भवति कुटिचक-बहुदक-हंस-परमहंस-तूरियातीत-अवधूतश्चेति।"
-संन्यासोपनिपद् १३

भगवान् ऋषभदेव जब दिगम्बर होकर वन में जा रमे, तो उनकी देखादेखी और भी बहुत से लोग नगे होकर इधर-उधर घूमने लगे। दिगम्बरत्व के मूल तत्व को वे समझ न सके और अपने मनमाने ढग से उदरपूर्ति करते हुये व साधु होने का दावा करने लगे। जैन शास्त्र कहते हैं कि इन्ही सन्यासियो द्वारा सांख्य आदि जैनेतर सम्प्रदायो की सृष्टि हुई थी[१] और तीसरे परिच्छेद मे स्वय हिन्दू शास्त्रो के आधार से यह प्रकट किया जा चुका है कि श्री ऋपभदेव द्वारा ही सर्वप्रथम दिगम्यरत्व रूप धर्म का प्रतिपादन हुआ था। इस अवस्था मे हिन्दू ग्रथो मे भी दिगम्बरत्व का सम्माननीय वर्णन मिलना आवश्यक है।

यह बात जरूर है कि हिन्दू धर्म के वेद और प्राचीन तथा वृहत् उपनिपदो में साधु के दिगम्बरत्व का वर्णन प्रायः नही मिलता। किन्तु उनके छोटे-मोटे उपनिषदों एव अन्य ग्रथो में उसका खास ढ़ग से प्रतिपादन किया गया मिलता है। भिक्षुक उपनिपद्[२] सात्यानीय उपनिपद्[३], याज्ञवल्क्य उपनिपद्, परमहस-परिव्राजक उपनिपद् आदि में यद्यपि सन्यासियो के चार भेद-(१) कुटिचक, (२) बहुदक, (३) हस, (४) परमहस - बताये गये हैं, परन्तु सन्यासोपनिपद् मे उनको छः प्रकार का बताया गया है अर्थात् उपर्युक्त चार प्रकार के सन्यासियो के अतिरिक्त (१) तूरियातीत और (२) अवधूत प्रकार के सन्यासी और गिनाये हैं।[४] इन छहो मे पहले तीन प्रकार के सन्यासी त्रिदण्ड धारण करने के कारण त्रिदण्डी कहलाते हैं और शिखा या जटा तथा वस्त्र कौपीन आदि धारण करते हैं।[५] परमहस परिव्राजक, शिखा और

---

१. आदिपुराण, पर्व १८, श्लो ६२ (Rishabh p 112)

२. "अथ भिक्षुणा मोक्षार्थीना कुटीचक-बहुदक-हस-परमहसाश्चेति चत्वार ।"

३. कुटिचको-बहुदक-हस-परमहस-इत्येति परिव्राजका चतुर्विधा भवन्ति।

४. स सन्यास पड्विधो भवति-कुटीचक-बहुदक-हस-परमहस - तुरीयातीतावधूताश्चेति।

५. कुटीचक· शिखायज्ञोपवीती दण्डकमण्डलुधर. कौपीनशाटीकन्थाधर. पितृमातृ गुर्वाराधनपर पिठरखनित्रशिक्यादिमात्रसाधनपर· एकत्रान्नादनपर. श्वेतोर्ध्वपुण्ड्र धारीत्रिदण्डः। बहूदक· शिखादिकन्याधरस्त्रिपुण्ड्रधारी कुटीचकवत्सर्वसमो मधुकर-वृत्याष्टकवलाशी।हसो जटाधारी त्रिपुण्ड्रोर्ध्वपुण्ड्रधारी असक्लृप्तमाधूकरान्नाशी कौपीनखण्डतुण्डधारी।

यज्ञोपवीत जैसे द्विजचिह्न धारण नही करता और वह एक दण्ड ग्रहण करता तथा एक वस्त्र धारण है अथवा अपनी देह मे भस्म रमा लेता है।[1]

हॉं तूरियातीत परिव्राजक बिल्कुल दिगम्बर होता है और वह सन्यास के नियमो का पालन करता है।[2] अन्तिम अवधूत पूर्ण दिगम्बर और निर्द्वन्द्व है- वह सन्यास नियमो की भी परवाह नही करता।[3] तूरियातीत अवस्था मे पहुचकर परमहस परिव्राजक को दिगम्बर ही रहना पड़ता है किन्तु उसे दिगम्बर जैन मुनि की तरह केशलु च नही करना होता-वह अपना सिर मु डाता (मुण्ड) है और अवधूत पद तो तूरियातीत की मरण अवस्था है।[4] इस कारण इन दोनो भेदो का समावेश परमहस भेद मे ही गर्भित किन्ही उपनिषदो मे मान लिया गया है। इस प्रकार उपनिषदो के इस वर्णन से यह स्पष्ट है कि एक समय हिन्दू धर्म मे भी दिगम्बरत्व को विशेष आदर मिला था और वह साक्षात् मोक्ष का कारण माना गया था। उस पर कापालिक सप्रदाय में तो वह खूब ही प्रचलित रहा, किन्तु वहॉं वह अपनी धार्मिक पवित्रता खो बैठा, क्योकि वहॉं वह भोग की वस्तु रहा। अस्तु,

यहॉं पर उपनिषदादि वैदिक साहित्य मे जो भी उल्लेख दिगम्बर साधु के सम्बन्ध मे मिलते हैं, उनको उपस्थित कर देना उचित है। देखिये "जाबालोपनिषद्" मे लिखा हैं-

"तत्र परमहसानामसवर्तकारुणिश्वेतकेतुदुर्वास ऋभुनिदाघजडभरत-दत्तात्रेयरैवतकप्रभृतयोऽत्यक्तलिंगा अव्यक्ताचारा अनुन्मत्ता उन्मत्तवदाचरन्तस्त्रिदण्ड कमण्डलु शिक्य पात्र जलपवित्र शिखां यज्ञोपवीत च इत्येत्सर्व भूः स्वाहेत्यप्सु परित्यज्यात्मानमन्विच्छेद् यथाजातरूपधरो निर्ग्रंथो निष्परिग्रहस्तत्तद्ब्रह्ममार्गे सम्यक्संपन्नः इत्यादि।"[5]

इसमें सवर्तक, आरुणि, श्वेतकेतु आदि को यथाजातरूपधर निर्ग्रंथ लिखा है अर्थात् इन्होने दिगम्बर जैन मुनियो के सामान आचरण किया था।

'परमहसोपनिषद्'मे निम्न प्रकार उल्लेख है-

---

१ परमहस शिखायज्ञोपवीतरहित· पञ्चगृहेषु करपात्री एककौपीनधारी शाटीमेकामेक वैणवं दण्डमेकशाटीधरो व भस्मोद्धलनपर ।

२ सर्वत्यागी तुरीयातीतो गोमुखवृत्यो फलाहारी अन्नाहारी चेद्गृहत्रये देहमात्रावशिष्टो दिगम्बर कुणपवच्छरीरवृत्तिक·।

३. अवधूतस्त्वनियम पतिताभिशस्तवर्जनपूर्वकं सर्वं वर्णेष्वजगरवृत्याहारपर स्वरूपानुसंधानर्वपर ।

४ सर्वं विस्मृत्य तुरीयातीतावधूतवेपेणाद्वैतनिष्ठापर· प्रणवात्मकत्वेन देहत्यागं करोति य सोऽवधूत ।

५ ईशाद्य०, पृ १३१।

"इदमन्तर ज्ञात्वा स परमहस आकाशाम्बरो न नमस्कारो न स्वाहाकारो न निन्दा न स्तुतियादृच्छिको भवेत्स भिक्षुः।[१]

सचमुच दिगम्बर (परमहंस) भिक्षु को अपनी प्रशसा-निन्दा अथवा आदर-अनादर से सरोकार ही क्या? आगे "नारदपरिव्राजकोपनिषत्" में भी देखिये-

यथाविधिश्चेज्जातरूपधरो भूत्वा....जातरूपधरश्चरेदात्मानमन्विच्छेद्यथा-जातरूपधरो निर्द्वन्द्वो निष्परिग्रहस्तत्वब्रह्ममार्गे सम्यक् सम्पन्नः ८६-तृतीयोपदेशः।[२]

"तुरीयः परमो हसः साक्षान्नारायणो यतिः। एकरात्र वसेत् ग्रामे नगरे पञ्चरात्रकम् ।।१४।। वर्षाभ्योऽन्यत्र वर्षासु मासांश्च चतुरो वसेत् । ....मुनिः कौपीनवासाः स्यान्नग्नो वा ध्यानतत्परः ।३२। .....जातरूपधरो भूत्वा....दिगम्बरः चतुर्थोपदेशः।"[३]

इन उल्लेखो मे भी परिव्राजक को नग्न होने का तथा वर्षा ऋतु मे एक स्थान मे रहने का विधान है। "मुनि कौपीनवासा" आदि वाक्य में छहो प्रकार के सारे ही परिव्राजको का मुनि 'शब्द' से ग्रहण कर लिया गया है इसलिये उनके सम्बन्ध मे वर्णन कर दिया कि चाहे जिस प्रकार का मुनि अर्थात् प्रथम अवस्था का अथवा आगे की अवस्थाओ का। इसका यह तात्पर्य नही है कि मुनि वस्त्र भी पहिन सकता है और नग्न भी रह सकता है, जिससे कि नग्नता पर आपत्ति की जा सके। यह पहले ही परिव्राजको के षड्भेदो मे दिखाया जा चुका है कि उत्कृष्ट प्रकार के परिव्राजक नग्न ही रहते हैं और वह श्रेष्ठतम फल को भी पाते हैं, जैसे कि कहा है-

आतुरो जीवतिचेत्क्रमसन्यासः कर्त्तव्यः।......आतुरकुटीचकयोर्भूलोक-भुवर्लोको। वहूदकस्य स्वर्गलोकः।

हसस्य तपोलोकः। परमहसस्य सत्यलोकः। तुरीयातीतावधूतयोः स्वस्मन्येव कैवल्य स्वरूपानुसधानेन भ्रमर-कीटन्यायवत्।[४]

अर्थात-"आतुर यानि ससारी मनुष्य का अन्तिम परिणाम (निष्ठा) भूलोक है, कुटीचक सन्यासी का भुवलोक, स्वर्गलोक हस सन्यासी का अन्तिम परिणाम है, परमहस के लिये वही सत्यलोक है और कैवल्य तूरीयातीत और अवधूत का परिणाम है।"

अव यदि इन सन्यासियो मे वस्त्र-परिधान और दिगम्वरत्व का तात्विक भेद न होता तो उनके परिणाम मे इतना गहरा अन्तर नही हो सकता। दिगम्वर मुनि ही वास्तविक योगी है और वही कैवल्य-पद का अधिकारी है। इसीलिये उसे 'साक्षात्

---

१ ईशाद्य०, पृ. १५०
२ ईशाद्य०, पृ २६७-२६८
३ ईशाद्य०, पृ २६८-२६९
४. ईशाद्य०, पृ. ४१५। सन्यासोपनिपत् ५९।

नारायण' कहा गया है। 'नारद परिव्राजकोपनिषद्' मे आगे और भी उल्लेख निम्न प्रकार है-

"ब्रह्मचर्येण संन्यस्य सन्यासाज्जातरूपधरो वैराग्यसन्यासी।"[1]

"तुरीयातीतो गोमुखः फलाहारी। अन्नाहारी चेद् गृहत्रये देहमात्रावशिष्टो दिगम्बर· कुणपवच्छरीरवृत्तिकः। अवधूतस्त्वनियमोऽभिशप्तपतितवर्जनपूर्वक सर्ववर्णेष्वजगरवृत्याहारपरः स्वरूपानुसधानपर .... परमहंसादित्रयाणां न कटिसूत्रं न कौपीनं न वस्त्रं न कमण्डलुर्न दण्ड· सार्ववर्णैकभैक्षाटनपरत्वं जातरूपधरत्व विधि·...। सर्वं परित्यज्य तत्प्रसक्त मनोदण्ड करपात्र दिगम्वर दृष्टवा परिव्रजेद्भिक्षुः ।।१।। ....अभय सर्वभूतेभ्यो दत्वा चरति यो मुनि·। न तस्य सर्वभूतेभ्यो भयमुत्पद्यते क्वचित्।।१६।।.......... आशानिवृत्तो भूत्वा आशाम्बरधरो भूत्वा सर्वदा मनोवाक्कायकर्मभिः सर्वससारमुत्सृज्य प्रपञ्चाचाड् मुख· स्वरूपानुसन्धानेन भ्रमरकीटन्यायेन मुक्तो भवतीत्युपनिषद् ।। पञ्चमोपदेशः।"

दिगम्बर परमहसस्य एककौपीन वा तुरीयातीतावधूतयोथाजातरूपधरत्व हस-परमहसयोरजिन न त्वन्येषाम् .. .सप्तमोपदेशः।[2]

वैराग्य सन्यासी का भेद एक अन्य प्रकार से किया गया है। इस प्रकार से परिव्राजक सन्यासियो के चार भेद किये गए हैं- (१) वैराग्य सन्यासी, (२) ज्ञान सन्यासी, (३) ज्ञान वैराग्य सन्यासी और (४) कर्म सन्यासी। इनमे से ज्ञान वैराग्य सन्यासी को भी नग्न होना पड़ता है।[3]

"भिक्षुकोपनिषद्" मे भी लिखा है-

अथ जातरूपधरा निर्द्वन्द्वा निष्परिग्रहाः शुक्लध्यानपरायणा आत्मनिष्ठा· प्राणसधारणार्थ यथोक्तकाले भैक्षमाचरन्तः शून्यागारदेवगृहतृणकूटवल्मीकवृक्षमूलकुलाल-शालाग्निहोत्र-शालानदी-पुलिनगिरिकन्दर-कुहर-कोटर-निर्झरस्थण्डिले तत्र ब्रह्ममार्गे सम्यक्सपन्ना· शुद्धमानसाः परमहसाचरणेन सन्यासेन देहत्याग कुर्वन्ति ते परमहसा नामेत्युपनिषत्।[4]

'तुरीयातीतोपनिषद्' मे उल्लेख इस प्रकार है-

"सन्यस्य दिगम्बरो भूत्वा विवर्णजीर्णवल्कलाजिनपरिग्रहमपि सत्यज्य तदूर्ध्वममन्त्रवदाचरन्क्षौराभ्यगस्नानोर्ध्वपुण्ड्रादिक विहाय लौकिकवैदिकमप्युपसहृत्य

---

१ ईशाद्य , पृ २७१।

२ ईशाद्य , पृ २७२।

३ क्रमेण सर्वमभ्यस्य सर्वमनुभूय ज्ञानवैराग्याभ्या स्वरूपानुसधानेन देहमात्राविशिष्ट सन्यस्य जातरूपधरो भवति स ज्ञानवैराग्यसन्यासी।

— नारदपरिव्राजकोपनिषद् १ ।।५।। तथा सन्यासोपनिषद्।

४. ईशाद्य , पृ ३६८।

सर्वत्र पुण्यापुण्यवर्जितो ज्ञानाज्ञानमपि विहाय शीतोष्णसुखदुःखमानावमान निर्जित्य वासनात्रयपूर्वक निन्दानिन्दागर्वमत्सरदम्भदर्पद्वेपकामक्रोधलोभमोह-हर्पामर्पासूयात्मसरक्षणादिकं दग्ध्वा...इत्यादि।[१]

'संन्यासोपनिपद'मे और भी उल्लेख इस प्रकार है-

वैराग्य-सन्यासी, ज्ञान-सन्यासी, ज्ञान-वैराग्य-संन्यासी, कर्मसन्यासीति चतुर्विध्यमुपागतः। तद्यथेति दृप्टानुश्रविकविपयवैतृण्यमेत्य प्राक्पुण्यकर्मविशेपात्सन्यस्तः स वैराग्यसन्यासी। (.....) क्रमेण सर्वमभ्यस्य सर्वमनुभूय ज्ञानवैराग्याभ्यां स्वरूपानुसधानेन देहमात्रावशिप्टः सन्यस्य जातरूपधरो भवति स ज्ञानवैराग्यसन्यासी।[२]

'परमहंसपरिव्राजकोपनिपद्' मे भी दिगम्बर मुनियों का उल्लेख है-

"शिखामुत्कृत्य यज्ञोपवीतं छित्वा वस्त्रमपि भूमौ वाप्सु वा विसृज्य ॐ भूः स्वहा ॐ भुवः स्वाहा स्वाह ॐ सुवः स्वाहेत्या तेन जातरूपधरो भूत्वा स्वं रूपं ध्यायन्पुनः पृथक् प्रणनव्याहृतिपूर्वकं मनसा वचसापि सन्यस्तं मया....।

यदालवुद्धिर्भवेत्तदा कुटीचको वा बहूदको वा हसो वा परमहसो वा तत्रन्मन्त्रपूर्वक कटिसूत्र कौपीन दण्ड कमण्डलू सर्वमप्सु विसृज्याथ जातरूपधरश्चरेत्।[३]

'याज्ञवल्क्योपनिपद्' मे दिगम्बर साधु का उल्लेख करक उसे परमेश्वर होता वताया है, जैसे कि जैनो की मान्यता है-

यथा जातरूपधरा निर्द्वन्द्वा निप्परिग्रहास्तत्त्वब्रह्ममार्गे सम्यक् संपन्ना· शुद्धमानसाः प्राणसधारणार्थ यथोक्तकाले विमुक्तो भैक्षमाचरन्नुदरपात्रेण लाभालाभौ समो भूत्वा करपात्रेण मा कमण्डलूदकयो भैक्षमाचरन्नुदरमात्रसंग्रहः। ....आशाम्वरो न नमस्कारो न दारपुत्राभिलापी लक्ष्यालक्ष्यनिर्वर्तकः परिव्राट् परमेश्वरो भवति।[४]

'दत्तात्रेयोपनिपद्' मे भी है-

दत्तात्रेय हरे कृष्ण उन्मत्तानन्द दायक। दिगम्बर मुने वालपिशाच ज्ञानसागर।[५]

---

१ ईशाद्य., पृ ४१०।
२. ईशाद्य , पृ. ४१२।
३. ईशाद्य., पृ. ४१८-४१९।
४ ईशाद्य., पृ. ५२४।
५. ईशाद्य., पृ. ५४२।

'भिक्षुकोपनिषद्' आदि में सवर्तक, आरुणी, श्वेतकेतु, जडभग्न दत्तात्रेय, शुक, वामदेव, हारीतिकी आदि को दिगम्बर साधु बताया है। "याज्ञवल्क्योपनिषद्" मे इनके अतिरिक्त दुर्वासा, ऋभु, निदाघ को भी तूरियातीत परमहस बताया है।[१] इस प्रकार उपनिषदो के अनुसार दिगम्बर साधुओ का होना सिद्ध है।

किन्तु यह बात नही है कि मात्र उपिनषदो मे ही दिगम्बरत्व का विधान हो, बल्कि वेदो मे भी साधु की नग्नता का साधारण सा उल्लेख मिलता है। देखिये 'यजुर्वेद' अ.१९, मत्र १४ मे[२] ....

"आतिथ्यरूप मासरम् महावीरस्य नग्नहुः।
रूपमुपसदामेतस्त्रिस्रो रात्री सुरासुता।।

अर्थ- (आतिथ्यरूप) अतिथि के भाव (मासर) महीनो तक रहने वाले (महावीरस्य) पराक्रमशील व्यक्ति के (नग्नहुः) नग्नरूप की उपासना करो जिससे (एतत्) ये (तिस्रो) तीनो (रात्रीः) मिथ्या ज्ञान, दर्शन और चारित्ररूपी (सुर) मद्य (असुता) नष्ट होती है।

इस मन्त्र का देवता अतिथि है। इसलिये यह मन्त्र अतिथियो के सम्बन्ध में ही लग सकता हैं, क्योकि वैदिक देवता का मतलव वाच्य है, जैसा कि निरुक्तकार का भाव है-

"याते नोच्यते सा देवता ।" इसके अतिरिक्त 'अथर्ववेद' के पन्द्रहवे अध्याय मे जिन व्रात्य और महाव्रात्य का उल्लेख है, उनमें महाव्रात्य दिगम्बर साधु के अनुरूप है। किन्तु यह व्रात्य एक वेदवाह्यसप्रदाय था, जो बहुत कुछ निर्ग्रथ सप्रदाय से मिलता-जुलता था। बल्कि यू कहना चाहिये कि वह जैन-मुनि और जैन तीर्थकर का ही द्योतक है।[३] इस अवस्था में यह मान्यता और भी पुष्ट होती है कि जैन तीर्थकर ऋषभदेव द्वारा दिगम्बरत्व का प्रतिपादन सर्वप्रथम हुआ था और जब उसका प्राबल्य बढ़ गया और लोगो को समझ पड़ गया कि परमोच्च पद पाने के लिए दिगम्वरत्व आवश्यक है तो उन्होने उसे अपने शास्त्रो में भी स्थान दे दिया। यही कारण है कि वेद मे भी इसका उल्लेख सामान्य रूप से मिल जाता है।

अब हिन्दू पुराणादि ग्रथो मे जो दिगम्बर साधुओ का वर्णन मिलता है, वह भी देख लेना उचित है। श्री भागवत पुराण मे ऋषभ अवतार के सम्वध मे कहा गया है-

वर्हिपी तस्मिन्नेव विष्णुभगवान् परमर्पिभि· प्रसादतो नाभेः प्रियचिकीर्षया तदवरोधायने मरुदेव्यां धर्मान् दर्शयतु कामो वातरशनानां श्रमणानां ऋषीणामूर्धा मन्थिना शुक्लया तनु वावततार।

---

१ IHQ, III 259-260

२ मालूम होता है कि इस मत्र द्वारा वेदकार ने जैन तीर्थंकर महावीर के आदर्श को ग्रहण किया है। दूसरे धर्मों के आदर्श को इस तरह ग्रहण करने के उल्लेख मिलते हैं।

IHQ, III, 472-485।

३ देखो भपा , प्रस्तावना, पृ ३२-४९।

अर्थ-"हे राजन्! परीक्षित वा यज्ञ मे परम ऋषियो करके प्रसन्न हो नाभि के प्रिय करने की इच्छा से वाके अन्तःपुर में मरुदेवी में धर्म दिखायवे की कामना करके दिगम्बर रहिवेवारे तपस्वी ज्ञानी नैष्ठिक ब्रह्मचारी ऊर्ध्वरेता ऋषियो को उपदेश देने को शुक्लवर्ण की देह धार श्री ऋषभदेव नाम का (विष्णु ने) अवतार लिया।"[१]

"लिंग पुराण" (अ. ४७, पृ. ६८) मे भी नग्न साधु का उल्लेख है[२]-

"सर्वात्मनात्मनिस्थाप्य परमात्मानमीश्वर।
नग्नो जटो निराहारो चीरीध्वांतगतो हि सः।।२५।।

"स्कंधपुराण-प्रभासखंड"(अ.१६, पृ. २२१) शिव को दिगम्बर लिखा है[३]-

"वामनोपि ततश्चक्रे तत्र तीर्थावगाहनम्।
यादृग्रूपः शिवो दिष्टः सूर्यबिम्बे दिगम्बरः।।९४।।

श्री भर्तृहरि जी 'वैराग्यशतकमें' कहते हैं[४]-

'एकाकी निःस्पृहः शान्तः पाणिपात्रो दिगम्बरः।
कदा शम्भो भविष्यामि कर्मनिर्मलूनक्षमः ।।५८।।

अर्थ-"हे शम्भो! मैं अकेला, इच्छारहित, शांत, पाणिपात्र और दिगम्बर होकर कर्मो का नाश कब कर सकूगा।" वह और भी कहते हैं[५]-

अशीमहि वय भिक्षामाशावासो वसीमहि।
शयीमहि महीपृष्ठे कुर्वीमहि किमीश्वरैः।।९०।।

अर्थ- अब हम भिक्षा ही करके भोजन करेगे, दिशा के ही वस्त्र धारण करेगे अर्थात् नग्न रहेंगे और भूमि पर ही शयन करेगे। फिर भला धनवानो से हमें क्या मतलब?

सातवी शताब्दी में जब चीनी यात्री ह्वेनसांग बनारस पहुचा तो उसने वहाँ हिन्दूओ के बहुत से नगे साधु देखे। वह लिखता है कि "महेश्वर भक्त साधु बालो को बांधकर जटा बनाते है तथा वस्त्र परित्याग करके दिगम्बर रहते हैं और शरीर मे भस्म का लेप करते है। ये बड़े तपस्वी है।[६] इन्ही को परमहस परिव्राजक कहना ठीक है। किन्तु ह्वेनसांग से बहुत पहिले ईस्वी पूर्व तीसरी शताब्दी मे जब सिकन्दर महान् ने भारत पर आक्रमण किया था, तब भी नगे हिन्दू साधु यहाँ मौजूद थे।

अरस्तु का भतीजा स्यिडो कल्लिस्थेनस (Pseudo Kallisthenes) सिकन्दर महान् के साथ यहाँ आया था और वह बताता है कि "ब्राह्मणो का श्रमणो की

---

१. वेजै पृ ३।
२. वेजै. पृ ९।
३ वेजै पृ ३४।
४ वंज पृ. ४६।
५ वेजै पृ ४७।
६. हुभा पृ ३२०।

तरह कोई सघ नही है। उनके साधु प्रकृति की अवस्था मे (State of nature) नग्न नदी किनारे रहते हैं और नगे ही घूमते हैं। (Go about naked) उनके पास न चौपाहे हैं, न हल है, न लोहा-लगड़ है, न घर है, न आग है, न रोटी है, न सुरा है - गर्ज यह कि उनके पास श्रम और आनन्द का कोई सामान नही है। इन साधुओ की स्त्रियाँ गगा की दूसरी ओर रहती हैं, जिनके पास जुलाई और अगस्त मे वे जाते हैं। वैसे जगल मे रहकर वे वनफल खाते हैं।" [१]

सन् ८५१ में अरब देश से सुलेमान सौदागर भारत आया था। उसने यहाँ एक ऐसे नगे हिन्दू योगी को देखा था जो सोलह वर्ष तक एक आसन से स्थित था। [२]

बादशाह औरगजेब के जमाने मे फ्रांस से आये हुए डा. बर्नियर ने भी हिन्दुओ के परमहंस (नगे) सन्यासियो को देखा था। वह इन्हे 'जोगी' कहता है और इनके विषय में लिखता है-

'I allude particulary to the people called "Jaugis" a name which signifies "united to God" Numbers are seen, day and night, seated or laying on ashes entirely naked, Frequently under the large trees near talabs or tanks of water or in the galleries round the 'Deuras' or idol temples Some have hair hanging down to the calf of the leg, twisted and entangled into Knots, like the coat of our shaggy dogs I have seen several who hold one and some who hold both arms, perpetually lifted up above the head, the nails of their hands being twisted and longer than half my little finger, with which I measured them Their arms are as small and thin as the arms of persons who die in a decline, because in so forced and unnatural a position they receive not sufficient nourishment nor can they be lowered so as to supply the mouth with food, the muscles having become contracted and the articulation dry and stiff Novices wait upon these fanatics and pay them the utmost respect, as persons endowed with extraordinary sanctity No 'fury' in the infernal regions can be conceived more horrible than the 'Jaugise' with their naked and black skin, long, hair spindle arms, long twisted nails and fixed in the posture which I have mentioned"

---

1 AI ,p 181
2 Elliot , I, p-4
3 Bernier, p.316.

भाव यही है कि बहुत से ऐसे जोगी थे जो तालाव अथवा मंदिरों में नंगे रात-दिन रहते थे। उनके बाल लम्बे-लम्बे थे। उनमें से कोई अपनी बाहें ऊपर उठाये रहते थे। नाखून उनके मुड़कर दूभर हो गये थे जो मेरी छोटी अंगुली के आधे के बराबर थे। सूखकर वे लकड़ी हो गये थे। उन्हें खिलाना भी मुश्किल था। क्योंकि उनकी नसें तन गयीं थीं। भक्तजन इन नागों की सेवा करते हैं और इनकी बड़ी विनय करते हैं। वे इन जोगियों से पवित्र किसी दूसरे को नहीं समझते और इनके क्रोध से भी बेढब डरते हैं। इन जोगियों की नंगी और काली चमड़ी है,लम्बे बाल हैं, सूखी बाहें हैं, लम्बे मुड़े हुए नाखून हैं और वे एक जगह पर ही उस आसन में जमे रहते हैं, जिसका मैंने उल्लेख किया है। यह हठयोग की पराकाष्ठा है। परमहंस होकर वह यह न करते तो करते भी क्या?

सन् १६२३ ई.में पिटर डेल्ला वॉल्ला नामक यात्री आया था। उसने अहमदाबाद में साबरमती नदी के किनारे और शिवालो में अनेक नागा साधु देखे थे, जिनकी लोग बड़ी विनय करते थे।[१]

आज भी प्रयाग में कुम्भ के मेले के अवसर पर हजारों नागा संन्यासी वहाँ देखने को मिलते हैं। वे कतार बांधकर शरह-आम नंगे निकलते हैं।

इस प्रकार हिन्दु शास्त्रों और यात्रियों की साक्षियों से हिन्दु धर्म में दिगम्बरत्व का महत्व स्पष्ट हो जाता है। दिगम्बर साधु हिन्दुओं के लिये भी पूज्य पुरुष हैं।

---

१. पुरातत्व, वर्ष २,अंक ४, पृ. ४४० ।

इस्लाम और दिगम्बरत्व

"I am no apostle of new doctrines" said Muhammad "neither know I what will be done with me or you". Koran, XLVI

पैगम्बर हजरत मुहम्मद ने खुद फरमाया है कि "मैं किन्ही नये सिद्धान्तो का उपदेशक नही हूं और मुझे यह नही मालूम कि मेरे या तुम्हारे साथ क्या होगा ?" सत्य का उपासक और कह ही क्या सकता है ? उसे तो सत्य को गुमराह भाइयो तक पहुचाना पड़ता है। मुहम्मद साहब को अरब के असभ्य लोगो मे सत्य का प्रकाश फैलाना था। वह लोग ऐसे पात्र न थे कि एकदम ऊँचे दर्जे का सिद्धान्त उनको सिखाया जाता। उस पर भी हजरत मुहम्मद ने उनको स्पष्ट शिक्षा दी कि-

'The love of the world is the root of all evil'

'The world is as a prison and as a famine to Muslims, and when they leave it you may say they leave famine and a prison[१]

(Sayings of Mohammad)

अर्थात्- "ससार का प्रेम ही सारे पाप की जड है। ससार मुसलमान के लिए एक कैदखाना और कहत के समान है और जव वे इसको छोड देते हैं तब तुम कह सकते हो कि उन्होने कहत और कैदखाने को छोड़ दिया।" त्याग और वैराग्य का इससे बढिया उपदेश और हो भी क्या सकता है ? हजरत मुहम्मद ने स्वय उसके अनुसार अपना जीवन बनाने का यथासभव प्रयत्न किया था। उस पर भी उनके कम से कम वस्त्रो का परिधान और हाथ की अगूठी उनकी नमाज मे बाधक हुई थी।[२]

किन्तु यह उनके लिये इस्लाम के उस जन्मकाल मे सभव नही था कि वह खुद नग्न होकर त्याग और वैराग्य-तर्के दुनिया का श्रेष्ठतम उदाहरण उपस्थित करते। यह कार्य उनके बाद हुये इस्लाम के सूफी तत्ववेत्ताओ के भाग मे आया। उन्होने 'तर्क' अथवा त्याग धर्म का उपदेश स्पष्ट शब्दो मे यू दिया-

"To abandon the world, its comforts and dress, all thigs now and to come, -conformably with the Hadees of the Prophet"[3]

अर्थात्- "दुनिया का सम्वन्ध त्याग देना-तर्क कर देना-उसकी आशाइशो और पोशाक-सब ही चीजो को अब की और आगे की-पैगम्बर साहब की हदीस के मुताबिक।"

---

१ K K, p 738

२ Religious Attitude & Life in Islam, p 298 & K K 793.

इस उपदेश के अनुसार इस्लाम मे त्याग और वैराग्य को विशेष स्थान मिला। उसमे ऐसे दरवेश हुये जो दिगम्बरत्व के हिमायती थे और तुर्किस्तान मे 'अब्दल'(Abdal), नामक दरवेश मादरजात नगे रहकर अपनी साधना मे ली रहते बताये गये है।[१] इस्लाम के महान् सूफी तत्वेत्ता और सुप्रसिद्ध 'मनस्वी' नामक ग्रन्थ के रचयिता श्री जलालुद्दीन रुमी दिगम्बरत्व का खुला उपदेश निम्न प्रकार देते हैं–

१. "गुफ्त मस्त ऐ महतव बगुजार रब–अज बिरहना के तवां बुरदन गरव।"

(जिल्द २ सफा २६२)

२. "जामा पोशांरा नजर परगाज रास्त–जामै अरियॉ रा तजल्ली जेवर अस्त।"

(जिल्द २ सफा ३८२)

३. "याज अरियानान बयकसू बाज रव–या चूँ ईशां फारिग व बेजामा शव!"

४. "वरनमी तानी कि कुल अरियॉ शबी–जामा कम कुन ता रह औरत रवी!"

(जिल्द २ सफा ३८३)[२]

इनका उर्दू मे अनुवाद 'इल्हामे मन्जूम' नामक पुस्तक में इस प्रकार दिया हुआ है–

१. मस्त बोला, महतब, कर काम जा, होगा क्या नगे से तू अहदे वर आ।

२. है नजर धोबी पै जामै–पोश की है, तजल्ली जेवर अरियॉ तनी!!

३. या बिरहनो से हो यकसू वाकई, या हो उनकी तरह बेजामै अखी!

४. मुतलकन अरियॉ जो हो सकता नही, कपड़े कम यह है कि औसत के करी!!

भाव स्पष्ट है कोई तार्किक मस्त नगे दरवेश से आ उलझा। उसने सीधे से कह दिया कि जा अपना काम कर, तू नगे के सामने टिक नही सकता। वस्त्रधारी को हमेशा धोबी की फिकर लगी रहती है, किन्तु नगे तन की शोभा दैवी प्रकाश है। बस, या तो तू नगे दरवेशो से कोई सरोकार न रख अथवा उनकी तरह आजाद और नगा हो जा। और अगर तू एकदम दूसरे कपड़े नही उतार सकता तो कम से कम कपड़े पहन और मध्यमार्ग को ग्रहण कर। क्या अच्छा उपदेश है। एक दिगम्बर जैन साधु भी तो यही उपदेश देता है। इससे दिगम्बरत्व का इस्लाम से सम्बन्ध स्पष्ट हो जाता है।

---

१ "The higher saints of Islam, called 'Abdals' generally went about perfectly naked, as described by Miss Lucy M Garnet in her excellent account of the lives of Muslim Dervishes. entitled "Mysticism & Magic in Turkey" N J, p 10

२ जिल्द और पृष्ठ के नम्बर "मस्नवी" के उर्दू अनुवाद "इल्हामे मन्जूम" के हैं।

इस्लाम के इस उपदेश के अनुरूप सैकडो मुसलमान फकीरो ने दिगम्बर वेष को गतकाल मे धारण किया था। उनमें अबुलकासिम गिलानी[१] और सरमद शहीद उल्लेखनीय हैं।

सरमद बादशाह औरगजेब के समय में दिल्ली से होकर गुजरा है और उसके हजारो नगे शिष्य भारत भर में बिखरे पड़े थे। वह मूल मे कज़हान (अरमेनिया) का रहने वाला एक ईसाई व्यापारी था। विज्ञान और विद्या का भी वह विद्वान था। अरबी अच्छी खासी जनता था और व्यापार के निमित्त भारत मे आया था। ठट्टा (सिध) मे एक हिन्दू लड़के के इश्क मे पड़कर मजून बन गया।[२] तदोपरांत इस्लाम के सूफी दरवेशो की सगति मे पड़कर मुसलमान हो गया। मस्त नगा वह शहरों और गलियो में फिरता था। वह अध्यात्मवाद का प्रचारक था। घूमता-घामता वह दिल्ली जा डटा। शाहजहाँ का वह अन्त समय था। दाराशिकोह, शाहजहाँ बादशाह का बडा लड़का, उसका भक्त हो गया। सरमद आनन्द से अपने मत का प्रचार दिल्ली में करता रहा। उस समय फ्रांस से आये हुए डा. बर्नियर ने खुद अपनी ऑखो से उसे नगा दिल्ली की गलियो मे घूमते देखा था।[३] किन्तु जब शाहजहाँ और दारा को मारकर औरगजेब बादशाह हुआ तो सरमद की आजादी में भी अडगा पड़ गया। एक मुल्ला ने उसकी नग्नता के अपराध मे उसे फासी पर चढ़ाने की सलाह औरगजेब को दी, किन्तु औरगजेब ने नग्नता को इस दण्ड की वस्तु न समझा[४] और सरमद से कपड़े पहनने की दरख्वास्त की। इसके उत्तर मे सरमद ने कहा-

"ऑकस कि तुरा कुलाह सुल्तानी दाद,

मारा हम ओ अस्बाब परेशानी दाद,

पोशानीद लवास हरकरा ऐवे दीद,

बे ऐबा रा लवास अर्यानी दाद।"

यानि "जिसने तुमको वादशाही ताज दिया, उसी ने हमको पेरशानी का सामान दिया। जिस किसी मे कोई ऐव पाया, उसको लिवास पहनाया और जिनमें ऐव न पाये उनको नगेपन का लिवास दिया।"

---

१ K K, p 739 and N J, pp 8-9

२ J G, XX PP 158-159

३ Bernier remarks 'I was for a long time disgusted with a celebrated Fakire named Sarmet. Who paraded the streets of Delhi as naked as when he came into the world etc.' (Berniers Travels in the Mogul Empire p 317)

४ Emperor told the Ulema that 'Mere nudity cannot be a reason of execution - J G XX, p 158

बादशाह इस रुबाई को सुनकर चुप हो गया, लेकिन सरमद उसके क्रोध से बच न पाया। अब के सरमद फिर अपराधी बनाकर लाया गया। अपराध सिर्फ यह था कि वह 'कलमा' आधा पढ़ता है जिसके माने होते है कि 'कोई खुदा नहीं है।' इस अपराध का दण्ड उसे फांसी मिला और वह वेदान्त की बातें करता हुआ शहीद हो गया। उसको फांसी दिये जाने में एक कारण यह भी था कि वह दारा का दोस्त था।[१]

सरमद की तरह न जाने कितने नंगे मुसलमान दरवेश हो गुजरे हैं। बादशाह ने उसे मात्र नगे रहने के कारण सजा न दी, यह इस बात का द्योतक है कि वह नग्नता को बुरी चीज नहीं समझता था और सचमुच उस समय भारत में हजारों नगे फकीर थे। ये दरवेश अपने नगे तन में भारी-भारी जजीरें लपेट कर बड़े लम्बे-लम्बे तीर्थाटन किया करते थे।[२]

सारांशतः इस्लाम मजहब में दिगम्बरत्व साधु पद का चिह्न रहा है और उसको असली शक्ल भी हजारों मुसलमानों ने दी है और चूँकि हजरत मुहम्मद किसी नये सिद्धान्त के प्रचार का दावा नहीं करते, इसलिये कहना होगा कि ऋषभाचल से प्रकट हुई दिगम्बरत्व-गगा की एक धारा को इस्लाम के सूफी दरवेशों ने भी अपना लिया था।

---

१. जैम., पृ. ४।

J.G , Vol XX p 159 "There is no God"said Sarmad omitting "but, Allah and Muhammad is His apostle."

२. "Among the vast number and endless variety of Fakires or Dervishes.. .some carried a club like to Hercules, others had a dry & rough tiger-skin thrown over their shoulders . .Several of these Fakires take long pilgrimages, not only naked, but laden with heavy iron chain such as are put about the legs of elephants "-Bernier.,p 317

[६]

ईसाई मज़हब और दिगम्बर साधु

"And he stripped his clothes also, and prophesied before Samuel in like manner, and lay down naked all that day and all that night Wherefore they said, is Saul also among the Prophets?"

—Samuel XIX, 24

"At the same time spoke the Lord, by Isaiah the son of Amoz, saying, 'Go and loose the sackcloth from off the loins, and put off thy shoe from thy foot And he did so, walking naked and bare foot."

—Isaiah XX, 2

ईसाई मज़हब मे भी दिगम्बर का महत्व भुलाया नही गया है, बल्कि बड़े मार्के के शब्दो मे उसका वहाँ प्रतिपादन हुआ मिलता है। इसका एक कारण है। जिस महानुभाव द्वारा ईसाई धर्म का प्रतिपादन हुआ था वह जैन श्रमणों के निकट शिक्षा पा चुका था।[१] उसने जैन धर्म की शिक्षा को ही अलकृत-भाषा में पाश्चात्य देशो में प्रचलित कर दिया। इस अवस्था में ईसाई मजहब दिगम्बरत्व के सिद्धान्त से खाली नही रह सकता और सचमुच बाईबिल मे स्पष्ट कहा गया है कि-

"और उसने अपने वस्त्र उतार डाले और सैमुयल के समक्ष ऐसी ही घोषणा की और उस सारे दिन तथा सारी रात वह नगा रहा। इस पर उन्होंने कहा, क्या साल भी पैगम्बरो मे से है?"-सैमुयल १९/२४

उसी समय प्रभु ने अमोज के पुत्र ईसाईया से कहा- जा और अपने वस्त्र उतार डाल और अपने पैरो से जूते निकाल डाल, ... और उसने यही किया नगा और नंगे पैरो वह विचरने लगा।- ईसाय्या २०/२

इन उद्धरणो से यह सिद्ध है कि बाईबिल भी मुमुक्षु को दिगम्बर मुनि हो जाने का उपदेश देती है और कितने ही ईसाई साधु दिगम्बर वेष में रह भी चुके हैं। ईसाईयो के इन नगे साधुओ में एक सेन्टमेरी (St. Marry of Egypt.) नामक साध्वी भी थी। यह मिश्र देश की सुन्दर स्त्री थी, किन्तु इसने भी कपड़े छोड़कर नग्न-वेष मे ही सर्वत्र विहार किया था।[२]

---

१ विको, भा ३, पृ १२८।

२ The History of European Morals, ch 4 & N.J, p 6.

यहूदी (Jews) लोगो की प्रसिद्ध पुस्तक "The Ascension of Isaiah" (p 32) मे लिखा है-

"(Those) who belive in the ascension into heaven withdrew settled on the mountain...

-They were all prophets (Saints) and they had nothing with them and were naked." ।[1]

अर्थात्-वह जो मुक्ति की प्राप्ति मे श्रद्धा रखते थे एकान्त में पर्वत पर जा जमे। -वे सब सन्त थे और उनके पास कुछ नही था और वे नगे थे।

अपॉसल पीटर ने नगे रहने की आवश्यकता और विशेपता को निम्न शब्दो मे बड़े अच्छे ढग पर "Clementine Homilies" मे दर्शा दिया है-

"For we, who have chosen the future things, in so far as we possess more goods than these, whether they be clothings, or .. any other thing, possess sins, because we ought not to have anything To all of us possessions are sins. The deprivation of these, in whatever way it may take place is the removal of sins[2]

अर्थात- क्योकि हम जिन्होने भविष्य की चीजो को चुन लिया है, यहॉ तक कि हम उनसे ज्यादा सामान रखते हैं, चाहे वे फिर कपड़े-लत्ते हो या दूसरी कोई चीज़, पाप को रखे हुये है, क्योकि हमे कुछ भी अपने पास नहीं रखना चाहिये। हम सबके लिये परिग्रह पाप है। जैसे भी हो वैसे इनका त्याग करना पापो को हटाना है।

दिगम्बरत्व की आवश्यकता पाप से मुक्ति पाने के लिये आवश्यक ही है। ईसाई ग्रथकार ने इसके महत्व को खूब दर्शा दिया है। यही वजह है कि ईसाई मज़हब के मानने वाले भी सैकडो दिगम्बर साधु हो गुजरे है।

---

१. N J., p 6

२ Ante Nicene Christian Library, XVII, 240 & N J , p 7

[७]

दिगम्बर जैन मुनि

"जधजादरुवजाद उप्पाडिद केसमसुग सुद्ध।
रहिद हिसादीदो अप्पडिकम्म हवदि लिग।।५।।
मुच्छारभविजुत्त जुत्त उवजोग जोग सुद्धीहि।
लिग ण परावेक्खं अपुणब्भव कारण जोण्ह।।६।।"

–प्रवचनसार

दिगम्बर जैन मुनि के लिये जैन शास्त्रो मे लिखा गया है कि उनका लिंग अथवा वेश यथाजातरूप नग्न हैं– सिर और दाढ़ी केश उन्हे नही रखने होते। वे इन स्थानों के बालो को हाथ से उखाड कर फेक देते है–यह उनकी केश लुञ्चन क्रिया है। इसके अतिरिक्त दिगम्बर जैन मुनि का वेश शुद्ध, हिंसादिरहित, श्रृ गाररहित, ममता–आरम्भ रहित, उपयोग ओर योग की शुद्धि सहित, पर द्रव्य की अपेक्षा रहित मोक्ष का कारण होता है। सारांश रूप मे दिगम्बर जैन मुनि का वेष यह है, किन्तु यह इतना दुर्द्धर और गहन है कि ससार–प्रपच मे फसे हुए मनुष्य के लिये यह सम्भव नही है कि वह एकदम इस वेश को धारण कर ले, तो फिर क्या वेश अव्यवहार्य है? जैन शास्त्र कहते है, 'कदापि नही।" और यह है भी ठीक क्योकि उनमे दिगम्बरत्व को धारण करने के लिये मनुष्य को पहले से ही एक वैज्ञानिक ढग पर तैयार करके योग्य बना लिया जाता है और दिगम्बर पद मे भी उसे अपने मूल उद्देश्य की सिद्धि के लिये एक वैज्ञानिक ढग पर ही जीवन व्यतीत करना होता है। जैनेतर शास्त्रो में यद्यपि दिगम्बर वेश का प्रतिपादन हुआ मिलता है, किन्तु उनमें जैनधर्म जैसे वैज्ञानिक नियम–प्रवाह की कमी है और यही कारण है कि परमहस वानप्रस्थ भी उनमे सपत्नीक मिल जाते है।[१] जैन धर्म के दिगम्बर साधुओ के लिये ऐसी बातें बिल्कुल असभव है।

अच्छा तो, दिगम्बर वेष धारण करने के पहले जैन धर्म मुमुक्षु के लिए किन नियमो का पालन करना आवश्यक बतलाया है? जैन शास्त्रो मे सचमुच इस बात का पूरा ध्यान रखा गया है कि एक गृहस्थ एकदम छलाग मारकर दिगम्बरत्व के उन्नत

१ यूनानी लेखकों ने उनका उल्लेख किया है। देखो A I p 181

शैल पर नही पहुच सकता। उसको वहाँ तक पहुचने के लिए कदम-ब-कदम आगे बढ़ना होगा। इसी क्रम के अनुरूप जैन शास्त्रो में एक गृहस्थ के लिए ग्यारह दर्जे नियत किये गये हैं। पहले दर्जे में पहुँचने पर कही गृहस्थ एक श्रावक कहलाने के योग्य होता है। यह दर्जे गृहस्थ की आत्मोन्नति के सूचक हैं और इनमें पहले दर्जे से दूसरे मे आत्मोन्नति की विशेपता रहती है। इनका विशद वर्णन जैन ग्रथो मे जैसे 'रत्नकरण्डश्रावकाचार' में खूब मिलता है। यहाँ इतना बता देना ही काफी है कि इन दर्जों से गुजर जाने पर ही एक श्रावक दिगम्बर मुनि होने के योग्य होता है। दिगम्बर मुनि होने के लिये यह उनकी 'ट्रेनिग' है और सचमुच प्रोषधोपवासव्रत प्रतिमा से उसे नगे रहने का अभ्यास करना प्रारभ कर देना होता है। मात्र पर्व-अष्टमी और चतुर्दशी के दिनो मे वह अनारभी हो, घर बाहर का काम-काज छोड़कर, व्रत-उपवास करता तथा दिगम्बर होकर ध्यान में लीन होता है।[१] ग्यारहवी प्रतिमा में पहुचकर वह मात्र लगोटी का परिग्रह अपने पास रहने देता है और गृहत्यागी वह इसके पहले हो जाता है।[२] ग्यारहवी प्रतिमा का धारी वह 'ऐलक या क्षुल्लक' आदरपूर्वक विधि सहित प्रासुक भोजन, यदि गृहस्थ के यहाँ मिलता है ग्रहण कर लेता है। भोजनपात्र का रखना भी उसकी खुशी पर अवलिम्बित है।बस, यह श्रावक-पद की चरम-सीमा है। 'मुण्डकोपनिपद्' के 'मुण्डक श्रावक' इसके समतुल्य होते हैं किन्तु वहाँ वह साधु का श्रेष्ठ रूप है।[२] इसके विपरीत जैन धर्म मे उसके आगे मुनि पद और है। मुनि पद मे पहुचने के लिये ऐलक-श्रावक को लाजमी तौर पर दिगम्बर-वेष धारण करना होता है और मुनि धर्म का पालन करने के लिये मूल और उत्तर गुणो का पालन करना होता है। मुनियो के मूल गुण जैन शास्त्रो में इस प्रकार बताए गए हैं-

> 'पचय महव्वमाह समिदीओ पच जिणवरोद्दिट्ठा'।
> पचेविदियरोहा छप्पि य आवासया लोचो ।।२।।
> अच्चेल कमण्हाण खिदिसयणमदतघस्सण चेव।
> ठिदिभोयणेभत्त मूल गुणा अट्ठवीसा दु ।।३।। मूलाचार।।

अर्थात्- "पॉच महाव्रत (अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह), जिनवर कर उपदेशी हुई पॉच समितियॉ (ईर्या समिति, भाषासमिति, एपणा समिति, आदाननिक्षेपण समिति, मूत्रविप्ठादिक का शुद्ध भूमि मे क्षेपण अर्थात् प्रतिष्ठापना समिति), पॉच इन्द्रियो का निरोध (चक्षु, कान, नाक, जीभ, स्पर्शन)-इन पॉच इन्द्रियो के विपयो का निरोध करना), छह आवश्यक (सामायिक, चतुर्विंशतिस्तव, वदना, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, कायोत्सर्ग), लोच, आचेलक्य,

---

१. भमवु., पृ २०५ तथा बौद्धों के 'अगुचर निकाय' में भी इसका उल्लेख है।
२. वीर, वर्ष ८, पृ. २५१-२५५।

अस्नान, पृथ्वीशयन, अदतघर्षण, स्थिति भोजन, एक भक्त– ये जैन साधुओ के अट्ठाइस मूल गुण हैं।"

सक्षेप मे दिगम्बर मुनि के इन अट्ठाइस मूल गुणो का विवेचनात्मक वर्णन यह है–

(१) अहिंसा महाव्रत– पूर्णतः मन–वचन–कायपूर्वक अहिंसा धर्म का पालन करना।

(२) सत्य महाव्रत– पूर्णत· सत्य धर्म का पालन करना।

(३)अस्तेय महाव्रत– अस्तेय धर्म का पालन करना।

(४) ब्रह्मचर्य महाव्रत– ब्रह्मचर्य धर्म का पालन करना।

(५) अपरिग्रह महाव्रत– अपरिग्रह धर्म का पालन करना।

(६) ईर्या समिति– प्रयोजनवश निर्जीव मार्ग से चार हाथ जमीन देखकर चलना।

(७)भाषा समिति– पैशून्य, व्यर्थ हास्य, कठोर वचन, परनिंदा, स्वप्रशसा, स्त्री कथा, भोजन कथा, राज कथा, चोर कथा इत्यादि वार्ता छोड़कर मात्र स्वपरकल्याणक वचन बोलना।

(८)एषण समिति– उग्दमादि छियालीस दोपो से रहित, कृतिकारित नौ विकल्पो से रहित, भोजन मे रागद्वेपरहित– समभाव से– बिना निमत्रण स्वीकार करे, भिक्षा–वेला पर दातार द्वारा पड़गाहने पर इत्यादि रूप भोजन करना।

(९)आदाननिक्षेपण समिति– ज्ञानोपकरणादि–पुस्तकादि का यत्नपूर्वक देखभाल कर उठाना–धरना।

(१०)प्रतिष्ठापना समिति एकान्त, हरित व त्रसकायरहित, गुप्त, दूर, बिल–रहित, चौडे, लोकनिन्दा व विरोध रहित स्थान मे मल–मूत्र क्षेपण करना।

(११)चक्षुर्निरोध व्रत– सुन्दर व असुन्दर दर्शनीय वस्तुओ में राग–द्वेपादि तथा आसक्ति का त्याग।

(१२)कर्णेन्द्रिय निरोध व्रत– सात स्वर रूप जीवशब्द (गान) और वीणा आदि से उत्पन्न अजीव शब्द रागादि के निमित्त कारण है, अत· इनका न सुनना।

(१३)घ्राणेन्द्रिय निरोध व्रत– सुगन्धि और दुर्गन्ध में राग–द्वेष नही करना।

(१४)रसनेन्द्रिय निरोध व्रत– जिह्वालम्पटता के त्याग सहित और आकांक्षा रहित परिणामपूर्वक दातार के यहाँ मिले भोजन को ग्रहण करना।

(१५) स्पर्शनेन्द्रिय निरोध व्रत– कठोर, नरम आदि आठ प्रकार का दुःख अथवा सुख रूप स्पर्श मे हर्ष– विपाद न रखना।

(१६) सामायिक- जीवन-मरण, सयोग-वियोग, मित्र-शत्रु, सुख-दुःख, भूख-प्यास आदि बाधाओ मे राग-द्वेष रहित समभाव रखना,

(१७)चतुर्विंशति-स्तव- ऋषभादि, चौबीस तीर्थकरो की मन-वचनकाय की शुद्धतापूर्वक स्तुति करना।

(१८)वन्दना- अरहतदेव, निर्ग्रन्थ गुरु और जिन शास्त्र को मन-वचन-काय की शुद्धि सहित बिना मस्तक नमाये नमस्कार करना।

(१९)प्रतिक्रमण- द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव रूप किये गये दोष को शोधना और अपने आप प्रकट करना।

(२०)प्रत्याख्यान-नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव-इन छहो में शुभ मन, वचन, काय से आगामी काल के लिये अयोग्य का त्याग करना।

(२१)कायोत्सर्ग-निश्चित क्रियारूप एक नियत काल के लिये जिन गुणो की भावना सहित देह मे ममत्व को छोड़कर स्थिति होना।

(२२)केशलोच-दो, तीन या चार महीने बाद प्रतिक्रमण व उपवास सहित दिन मे अपने हाथ से मस्तक, दाढ़ी, मूछ के बालो का उखाड़ना।

(२३)अचेलक-वस्त्र, चर्म, टाट, तृण आदि से शरीर को नही ढ़कना और आभूषणो से भूषित न होना।

(२४)अस्नान- स्नान-उबटन-अञ्जन-लेपन आदि का त्याग।

(२५)क्षितिशयन- जीव बाधा रहित गुप्त प्रदेश में डण्डे अथवा धनुष के समान एक करवट से सोना।

(२६)अदन्तधावन-अगुली, नख, दातून, तृण आदि से दन्त-मल को शुद्ध नही करना।

(२७) स्थिति भोजन-अपने हाथो को भोजनपात्र बनाकर भीत आदि के आश्रय रहित चार अगुली के अन्तर से समपाद खड़े रहकर तीन भूमियो की शुद्धता से आहार ग्रहण करना।

(२८) एक भक्त-सूर्य के उदय और अस्त काल की तीन घड़ी समय छोड़कर एक बार भोजन करना।

इस प्रकार एक मुमुक्षु दिगम्बर मुनि के श्रेष्ठपद को तब ही प्राप्त कर सकता है जब वह उपर्युक्त अट्ठाइस मूल गुणो का पालन करने लगे। इनके अतिरिक्त जैन मुनि के लिए और भी उत्तर गुणो का पालन करना आवश्यक है, किन्तु ये अट्ठाइस मूल गुण ही ऐसे व्यवस्थित नियम हैं कि मुमुक्षु को निर्विकारी और योगी बना दे। यही कारण है कि आज तक दिगम्बर जैन मुनि अपने पुरातन वेष मे देखने को नसीब

हो रहे हैं। यदि यह वैज्ञानिक नियम प्रवाह जैन धर्म मे न होता तो अन्य मतान्तरो के नग्न साधुओं के सदृश आज दिगम्बर जैन साधुओ के भी दर्शन होना दुर्लभ हो जाते। दिगम्बर साधु- नगे जैन साधु के लिये 'दिगम्बर साधु' पद का प्रयोग करना ही हम उचित समझते हैं- ये उपर्युक्त प्रारम्भिक गुणो को देखते हुये, जिनके बिना वह मुनि ही नही हो सकता, दिगम्बर मुनि के जीवन के कठिन श्रम, इन्द्रिय निग्रह, सयम, धर्म भाव, परोपकार वृत्ति, निशक रूप इत्यादि का सहज ही पता लग जाता है। इस दशा में यदि वे जगद्वन्द्य हो तो आश्चर्य क्या!

दिगम्बर मुनियो के सम्बन्ध में यह जान लेना भी जरूरी है कि उनके (१) आचार्य, (२) उपाध्याय और (३) साधु रूप तीन भेदो के अनुसार कर्त्तव्य में भी भेद है। आचार्य साधु के गुणो के अतिरिक्त सर्वकाल सम्बन्धी आचार को जानकर स्वय तद्वत् आचरण करे तथा दूसरो से करावे, जैन धर्म का उपदेश देकर मुमुक्षुओ का सग्रह करे और उनकी सार-सभार रखे। उपाध्याय का कार्य साधु कर्म के साथ-साथ जैन शास्त्रो का पठन-पाठन करना है। जो मात्र उपर्युक्त गुणो को पालता हुआ ज्ञान-ध्यान में लीन रहता है, वह साधु है। इस प्रकार दिगम्बर मुनियो को अपने कर्त्तव्य के अनुसार जीवनयापन करना पड़ता है। आचार्य महाराज जी का जीवन सघ केउद्योत में ही लगा रहता है, इस कारण कोई-कोई आचार्य विशेष ज्ञान-ध्यान करने की नियत से अपने स्थान पर किसी योग्य शिष्य को नियुक्त करके स्वय साधु-पद में आ जाते हैं। मुनि-दशा ही साक्षात् मोक्ष का कारण है।

दिगम्बर मुनि के पर्यायवाची नाम

दिगम्बर मुनि के लिये जैनशास्त्रो मे अनेक शब्द व्यवहृत हुये मिलते हैं, तथापि जैनेतर साहित्य मे भी वह एक से अधिक नामो से उल्लिखित हुये हैं। सक्षेप मे उनका साधारण सा उल्लेख कर देना उचित है, जिससे किसी प्रकार की शका को स्थान न रहे। साधारणतः दिगम्बर मुनि के लिये व्यवहृत शब्द निम्न प्रकार देखने को मिलते हैं-

अकच्छ, अकिञ्चन, अचेलक (अचेलव्रती), अतिथि, अनगारी, अपरिग्रही, अह्रीक, आर्य, ऋषि, गणी, गुरु, जिनलिगी, तपस्वी, दिगम्बर, दिग्वास, नग्न, निश्चेल, निर्ग्रंथ, निरागार, पाणिपात्र, भिक्षुक, महाव्रती, माहण, मुनि, यति, योगी, वातवसन, विवसन, सयमी (सयत), स्थविर, साधु, सन्यस्थ, श्रमण, क्षपणक।

सक्षेप में इनका विवरण इस प्रकार है-

१.अकच्छ[१]- लगोटी रहित जैन मुनि।

२.अकिञ्चन [२]-जिनके पास किंचित् मात्र (जरा भी)परिग्रह न हो वह जैन मुनि।

३.अचेलक या अचेलव्रती- चेल अर्थात् वस्त्र रहित साधु। इस शब्द का व्यवहार जैन और जैनेतर साहित्य मे हुआ मिलता है।'मूलचार'[३] मे कहा है-

"अच्चेलक लोचो वासट्ठसरीरदा य पडिलिहण।
एसो हु लिगकप्पो चदुव्विधो होदिणादव्वो।।९०८।।"

अर्थ-'आचेलक्य अर्थात् कपड़े आदि सब परिग्रह का त्याग, केशलोच, शरीर सस्कार का अभाव, मोर पीछी-यह चार प्रकार लिंगभेद जानना।'

श्वेताम्बर जैन ग्रथ "आचारांगसूत्र" में भी अचेलक शब्द प्रयुक्त हुआ मिलता है-

"जे अचेले परि वुसिए तस्सण भिक्खुस्सणो एवभवद्"[४]
"अचेलए ततो चाई, त वोसज्ज वत्थमणगारे।"[५]

उनके 'ठाणांगसूत्र मे हैं "पचहिं ठाणेहिं समणे निग्गथे अचेलए सचेलयाहि निग्गथीहि सद्धि सेवसयाणे नाइक्कमई।"

---

१ वृजेश॰, पृ ४।
२. Ibid।
३ पृष्ठ ३२६।
४. आचा , पृ १५१।
५. अध्याय ९, उद्देश्य १, सूत्र ४।

अर्थात्-"और भी पॉच कारण से वस्त्र रहित साधु वस्त्र सहित साध्वी साथ रहकर जिनाज्ञा का उल्लघन करते हैं।"[१]

बौद्ध शास्त्रो मे भी जैन मुनियो का उल्लेख 'अचेलक' रूप में हुआ मिलता है। जैसे "पाटिकपुत्त अचेलो"- अचेलक पाटिक पुत्र, यह जैन साधु थे।[२] चीनी त्रिपिटक में भी जैन साधु "अचेलक" नाम से उल्लिखित हुए हैं।[३] बौद्ध टीकाकार बुद्धघोष 'अचेलक' से भाव नग्न के लेते हैं।[४]

४.अतिथि- ज्ञानादि सिद्धर्य्थ तनुस्थित्यर्थान्नाय यः स्वयम्, यत्नेनातति गेह वा न तिथिर्यस्य सोऽतिथिः।

—सागार धर्मामृत, अ.५, श्लो. ४२

जिनके उपवास, व्रत आदि करने की गृहस्थ श्रावक के समान अष्टमी आदि कोई खास तिथि (तारीख) नियत न हो, जब चाहे करें।

५.अनगार[५]-आगाररहित, गृहत्यागी दिगम्बर मुनि।

इस शब्द का प्रयोग अणयारमहरिसीण-मूलाचार, अनगार भावनाधिकार, श्लो. २ में, अनगार महर्षिणां इसकी श्लोक की सस्कृत छाया और 'न विद्यतेऽगार गृह स्त्रयादिक येषातेऽनगार" इसी श्लोक की सस्कृत टीका में मिलता है।

श्वेताम्बरीय आचारांग सूत्र में हैं "त वोसज्ज वत्थ-मणगारे।"[६]

६.अपरिग्रही- तिलतुषमात्र परिग्रह रहित दिगम्बर मुनि।

७.अह्रीक- लज्जाहीन, नगे मुनि। इस शब्द का प्रयोग अजैन ग्रथकारो ने दिगम्बर मुनियो के लिए घृणा प्रकट करते हुए किया है, जैसे बौद्धो के 'दाठावश मे है'[७]-

'इमे अहिरिका सब्बे सद्धादिगुणवज्जिता।
श्रद्धा सठाच दुप्पञ्चा सग्गमोक्ख विबन्धका।।८८।।'

बौद्ध नैयायिक कमलशील ने भी जैनो का 'अह्रीक' नाम से उल्लेख किया है (अह्रीकादयश्चोदयन्ति, स्याद्वाद परीक्षा प्र. 'तत्वसग्रह', पृ. ४८६)। वाचस्पति अभिधानकोष मे भी 'अह्रीक' को दिगम्बर मुनि कहा गया है-"अह्रीक क्षपणके तस्य दिगम्बरत्वेन लज्जाहीनत्वात् तथात्वम्।" 'हेतुबिन्दुतर्कटीका' मे भी जैन मुनि के धर्म का उल्लेख 'क्षपणक' और 'अह्रीक' नाम से हुआ है तथा श्वेताम्बराचार्य श्री वादिदेवसूरि ने भी अपने 'स्याद्वाद-रत्नाकर' ग्रथ मे दिगम्बर जैनो का उल्लेख अह्रीक नाम से किया है। (स्याद्वादरत्नाकर, पृ. २३०)[८]

---

१ ठाणा०, पृ ५६१।
२ भमबु०, पृ १०, २५५।
३ "वीर", वर्ष ४, पृ ३५३।
४ अचेलकोऽतिनिच्चेलो नग्गो।'I HO III p 245।
५ वृजेश०, पृ ४।
६ आचा०, पृ २१०।
७ दाठा०, पृ १४।
८ पुरातत्व वर्ष ५, अक ४, पृ. २६६, २६७।

८.आर्य- दिगम्बर मुनि। दिगम्बराचार्य शिवार्य अपने दिगम्बर गुरुओ का उल्लेख इसी नाम से करते हैं[1]-

"अज्ज जिणणदिगणि, सव्वगुत्तगणि अज्जमित्तणदीण।
अवगमिय पादमूले सम्मसुत्त च अत्थ च।।
पुव्वायरिय णिवद्धा उपजीविता इमा ससत्तीए।
आराधण सिवज्जेण पाणिदल भोजिणा रइदा।"

यह सब आर्य (साधु) पाणिपात्रभोजी दिगम्बर थे।

९.ऋषि- दिगम्बर साधु का एक भेद है (यह शब्द विशेषतया ऋद्धिधारी साधु के लिए व्यवहृत होता है) श्री कुन्दकुन्दाचार्य इसका स्वरूप इस प्रकार निर्दिष्ट करते है[2]-

'णय, राय, दोस, मोहो, कोहो, लोहो, य जस्स आयत्ता।
पच महव्वयधारा आयदण महरिसी भणिय।।६।।'

अर्थात्- मद, राग, दोष, मोह, क्रोध, लोभ, माया आदि से रहित जो पचमहाव्रतधारी हैं, वह महाऋषि हैं।

१०.गणी-मुनियो के गण मे रहने के कारण दिगम्बर मुनि इस नाम से प्रसिद्ध होते हैं। 'मूलाचार' मे इसका उल्लेख निम्न प्रकार हुआ है-

"विस्समिदो तद्दिवस मोमसिता णिवेदयदि गणिणो।"[3]

११.गुरु- शिष्यगण-मुनि श्रावकादि के लिये धर्मगुरु होने के कारण दिगम्बर मुनि इस नाम से भी अभिहित है। उल्लेख यूं मिलता है-

"एवं आपुच्छिता सगवर गुरुणा विसज्जिओ संतो।"[4]

१२.जिनलिंगी- [5]जनेन्द्र भगवान् द्वारा उपदिष्ट नग्न वेष का पालन करने के कारण दिगम्बर मुनि इस नाम से भी प्रसिद्ध हैं।

१३.तपस्वी-विशेषतर तप में लीन होने के कारण दिगम्बर मुनि तपस्वी कहलाते है। 'रत्नकरण्ड श्रावकाचार' में इसकी व्याख्या निम्न प्रकार की गई है-

"विषयाशावशातीतो निरारम्भोऽपरिग्रहः।
ज्ञान-ध्यान-तपोरक्तस्तस्वी स प्रशस्यते।।१०।।[6]

१४.दिगम्बर- दिशाये उनके वस्त्र हैं इसलिये जैन मुनि दिगम्बर हैं। मुनि कनकामर अपने को जैन मुनि हुआ दिगम्बर शब्द से ही प्रकट करते हैं-

---

१. जैहि , भा १२, पृ. ३६०।
२ अष्ट , पृ ११४।
३ मूला ,पृ ७५।
४ मूला, पृ ६७।
५ वृजेश , पृ ४।
६ र श्रा , पृ ८।

"वइरायह हुवइ दियवरेण।
सुप्रसिद्ध णाम कणयामरेण।।[1]

हिन्दू पुराणादि ग्रन्थो में भी जैन मुनि इस नाम से उल्लिखित हुए हैं।[2]

१५. दिग्वास- यह भी न. १४ के भाव मे प्रयुक्त हुआ जैनेतर साहित्य मे मिलता है। 'विष्णु पुराण' मे (५ । १०) मे हैं-दिग्वाससामय धर्म.।

१६. नग्न-यथाजातरूप जैन मुनि होते है, इसलिये वह नग्न कहे गए हैं। श्री कुन्दकुन्दाचार्य जी ने इस शब्द का उल्लेख यो किया है-

"भावेण होइ णग्गो, वाहिरलिगेण किं च णग्गेण।"[3]

वराहमिहिर कहते हैं-"नग्नान् जिनानां विदु.।"[4]

१७. निश्चेल- वस्त्र रहित होने के कारण यह नाम है। उल्लेख इस प्रकार हैं-

"णिच्चेल पाणिपत्त उवइट्ठ परम जिणवरिंदेहि।"[5]

१८ निर्ग्रंथ- ग्रथ अर्थात् अन्तर-वाहर सर्वथा परिग्रह रहित होने के कारण दिगम्बर मुनि इस नाम से वहुत प्राचीन काल से प्रसिद्ध हैं। "धर्मपरीक्षा' में निर्ग्रथ साधु को वाह्याभ्यन्तर ग्रन्थ (परिग्रह) रहित नग्न ही लिखा है-

'त्यक्तवाह्यान्तरग्रंथो नि कपायो जितेन्द्रियः।
परीपहसह साधुर्जातरूपधरो मतः ।।१८।।७६।।'

"मूलाचार" मे भी अचेलक मूल गुण की व्याख्या करते हुये साधु को निर्ग्रथ भी कहा गया है-

"वत्थाजिणवक्केण य अहवा पत्तादिणा असवरण।[6]
णिब्भूसण णिग्गथ अच्चेलक्कजगदि पूज्ज।।३०।।"

'भद्रवाहु चरित्र' के निम्न श्लोक भी 'निर्ग्रर्थ शब्द का भाव दिगम्बर प्रकट करते हैं[7]-

'निर्ग्रथ-मार्गमुत्सृज्य सग्रन्थत्वेन ये जडाः।
व्याचक्षन्ते शिव नृणा तद्वचो न घटामटेत ।।९५।।'

अर्थ-"जो मूर्ख लोग निर्ग्रथ मार्ग के बिना परिग्रह के सद्भाव में भी मनुष्यो को मोक्ष का प्राप्त होना बताते हैं। उनका कहना प्रमाणभूत नही हो सकता।"

---

१ वीर, वर्प ४, पृ २०१।

२ विष्णु पुराण में है 'दिगम्बरो मुण्डो बर्हपत्रघर' (५-२), पद्मपुराण (भूतिखण्ड, अध्याय ६६), प्रवोधचन्द्रोदयनाटक, अक ३ (दिगम्बर सिद्धान्त, पचतन्त्र "एकाकी गृहसत्यक्त पाणिपात्रो दिगम्बर.।" -पचतन्त्र

३ अप्ट, पृ २००।

४ वराहमिहिर, १९ ।६१।

५ अप्ट पृ ६३।

६ मूला पृ १३।

७ भद्र, ७८ व ८६।

"अहो निर्ग्रंथता शून्य किमिद नौतनं मतम्।
न मेऽत्र युज्यते गन्तु पात्रदण्डादिमण्डितम्।।१४५।।"

अर्थ-"अहो। निर्ग्रंथतारहित यह दण्ड पात्रादि सहित नवीन मत कौन है? इनके पास मेरा जाना योग्य नही है।"

'भगवन्मदाग्नहादग्न्या गृहणीतामर-पूजिताम्।
निर्ग्रंथपदवी पूतां हित्वा सग मुदाऽखिलम्।।१४९।।

अर्थ-"भगवन! मेरे आग्रह से आप सब परिग्रह छोडकरपहले ग्रहण की हुई देवताओ से पूजनीय तथा पवित्र निर्ग्रंथ अवस्था ग्रहण कीजिये।" 'सग' शब्द का अर्थ अगले श्लोक मे 'सग'वसनादिकमञ्जसा' किया है। अतः यह स्पष्ट है कि निर्ग्रंथ अवस्था वस्त्रादिरहित दिगम्बर है। किन्तु दुर्भाग्य से जैन-समाज मे कुछ ऐसे लोग हो गए हैं जिन्होने शिथिलाचार के पोपण के लिए वस्त्रादि परिग्रहयुक्त अवस्था को भी निर्ग्रंथ मार्ग घोषित कर दिया है। आज उनका सप्रदाय 'श्वेताम्बरजैन' नाम से प्रसिद्ध है। यद्यपि उनके पुरातन ग्रथ दिगम्बर वेप को प्राचीन और श्रेष्ठ मानते हैं, किन्तु अपने को प्राचीन सप्रदाय प्रकट करने के लिये वह वस्त्रादि युक्त भी निर्ग्रंथ मार्ग प्रतिपादित करते हैं। यह मान्यता पुष्ट नही है। इसलिये सक्षेप मे इस पर यहाँ विचार कर लेना समुचित है।

श्वेताम्बर ग्रथ इस बात को प्रकट करते हैं कि दिगम्बर (नग्न) धर्म को भगवान् ऋपभदेव ने पालन किया था-वह स्वयं दिगम्बर रहे थे[१] और दिगम्बर वेष इतर वेपों से श्रेष्ठ हैं[२], तथापि भगवान् महावीर ने निर्ग्रंथ श्रमण और दिगम्बरत्व का प्रतिपादन किया था और आगमी तीर्थकर भी उसका प्रतिपादन करेंगे, यह भी श्वेताम्बर शास्त्र प्रकट करते है।[३] अतः स्वय उनके अनुसार भी वस्त्रादियुक्त वेष श्रेष्ठ और मूल निर्ग्रंथ धर्म नही हो सकता।

"श्वेताम्बराचार्य श्री आत्माराम जी ने भी अपने "तत्त्वनिर्णयप्रासाद" में 'निर्ग्रंथ' शब्द की व्याख्या दिगम्बर भावपोपक रूप मे दी है, यथा-

---

१. 'कल्पसूत्र'-J S Pt.I.,P285।

२ आचाराग सूत्र में कहा है-

Those are called naked, who in this world never returning (to a worldy state), (follow) my religion according to the commandment. This highest doctrine has here been declared for men"-J S.I,P56

"आउरण बज्जियाण विसुद्धजिणकप्पियाणन्तु।"

अर्थ-"वस्त्रादि आवरणयुक्त साधु से रहित जिनकल्पि साधु विशुद्ध है। सवत् १९३४ में मुद्रित प्रवचनसारोद्धार, भाग ३, पृ १३।

३ "सजहानामए अज्जोमए समणाण निग्गथाण नग्गभावे मुण्ड भावे अण्हाणए अदन्तवणे अच्छत्तए अणुवाहणए भूमिसेज्जा फलग-सेज्जा कट्ठसेज्जा केसलोए बंभचेरवासे

'कथा कौपीनोत्तरा सगादीनाम् त्यागिनो यथा जातरूपधरा निर्ग्रंथा निष्परिग्रहाः।' जैनेतर साहित्य और शिलालेखीय साक्षी भी उक्त व्याख्या की पुष्टि करती है। वैदिक साहितत्य मे 'निर्ग्रथ' शब्द का व्यवहार 'दिगम्बर' साधु के रूप मे ही हुआ मिलता है। टीकाकार उत्पल कहते हैं[१]–

"निर्ग्रंथो नग्नः क्षपणकः।"

इसी तरह सायणाचार्य भी निर्ग्रंथ शब्द को दिगम्बर मुनि का द्योतक प्रकट करते हैं[२]–

"कथा कौपीनोत्तरा सगादिनाम् त्यागिना, यथाजातरूपधरा निर्ग्रंथा निष्परिग्रहा-। इति सवर्तश्रुतिः।

हिन्दूपद्मपराण' मे दिगम्बर जैन मुनि के मुख से कहलाया गया है–

"अर्हन्तो देवता यत्र, निर्ग्रंथो गुरुरुच्यते।"

अब यदि निग्रथ के भाव वस्त्रधारी साधु के होते तो दिगम्बर मुनि उसे अपने धर्म का गुरु न बताते। इससे स्पष्ट है कि यहाँ भी निर्ग्रंथ शब्द दिगम्बर मुनि के रूप मे व्यवहृत हुआ है।

"ब्रह्माण्डपुराण" के उपोद्धात ३, अ १४, पृ १०४ में है–

"नग्नादयो न पश्येयु श्राद्धकर्म–व्यवस्थितम्।।३४।।"

अर्थात–"जब श्राद्धकर्म में लगे तब नग्नादिको को न देखे।" और आगे इसी पृष्ठ पर ३९ वे श्लोक में लिखा है कि नग्नादिक कौन हैं?

"वृद्ध श्रावक निर्ग्रंथाः इत्यादि"।[३]

वृद्ध श्रावक शब्द क्षुल्लक–ऐलक का द्योतक है तथा निर्ग्रंथ शब्द दिगम्बर मुनि का द्योतक है अर्थात् जैन धर्म के किसी भी गृहत्यागी साधु को श्राद्धकर्म के समय

लद्धावलद्ध वित्तीओ जाव पण्णत्ताओ एवामेव महा पउमेवि अरहा समणाण णिग्गथाण नग्गभावे जाव लद्धावलद्ध वित्तीओ जाव पन्नवेहित्ति।" अर्थात्–भगवान महावीर कहते हैं कि श्रमण निर्ग्रंथ को नग्नभाव, मुण्डभाव, अस्नान, छत्र नही करना, पगरखी नही पहनना, भूमिशैया, केशलोंच, ब्रह्मचर्य पालन, अन्य के ग्रह में भिक्षार्थ जाना, आहार की वृत्ति जैसे मैने कही वैसे महापद्म अरहत भी कहेंगे। ठाणा, पृ ८१३।

'नगिणापिंडोलगाहमा। मुण्डाकण्डू विणट्ठण ।।७२।। –सयडाग

'अहाइ भगव एव–से दते दविए वोसट्ठकाएत्रिवच्चे–माहणोत्ति व, समणेत्ति वा, 'भिक्खूत्तिवा, णिग्गथेत्ति वा पडिभाह भेते।' –सूयडाग, २५८

१ I H Q III, 245

२ तत्त्वनिर्णयप्रसाद, पृ. ५२३ व दि. जै १०–१–४८

३ वेजै पृ १४।

नही देखना चाहिये, क्योकि सभव है कि वह उपदेश देकर उसकी निस्सारता प्रकट कर दे। अतः वैदिक साहित्य के उल्लेखो से भी निर्ग्रंथ शब्द नग्न साधु के लिये प्रयुक्त हुआ सिद्ध होता है।

बौद्ध साहित्य भी इस ही बात का पोषण करता है। उसमे 'निर्ग्रंथ' शब्द साधु रूप में सर्वत्र नग्न मुनि के भाव मे प्रयुक्त हुआ मिलता है। भगवान् महावीर को बौद्ध साहित्य मे उनके कुल अपेक्षा निर्ग्रंथ नातपुत्त कहा है[१] और श्वेताम्बर जैन साहित्य से भी यह प्रकट है कि निर्ग्रंथ महावीर दिगम्बर रहे थे। बौद्ध शास्त्र भी उन्हे निर्ग्रंथ और अचेलक[२] प्रकट करते है। इससे स्पष्ट है कि बौद्धो ने 'निर्ग्रंथ' और 'अचेलक' शब्दो को एक ही भाव (Sense) मे प्रयुक्त किया है अर्थात् नग्न साधु के रूप मे , तथापि बौद्ध साहित्य के निम्न उद्धरण भी इस ही बात के द्योतक हैं–

'दीघनिकाय ग्रथ (१ । ७८–७९ में लिखा है कि[३]–

"Pasendi, King of Kosal saluted Niganthas."

अर्थात्–कौशल का राजा पसनदी (प्रसेनजित) निर्ग्रंथो (नग्न जैन मुनियो) को नमस्कार करता था।

बौद्धो के 'महावग्ग' नामक ग्रथ मे लिखा है कि "एक बडी सख्या मे निर्ग्रंथगण वैशाली मे सड़क–सडक और चौराहे–चौराहे पर शोर मचाते दौड़ रहे थे।" इस उल्लेख से दिगम्बर मुनियो का उस समय निर्बाध रूप मे राज मार्गों से चलने का समर्थन होता है। वे अष्टमी और चतुर्दशी को इकट्ठे होकर धर्मोपदेश भी दिया करते थे।[४]

'विशाखावत्थु' मे भी निर्ग्रंथ साधु को नग्न प्रकट किया गया है।[५] 'दीघनिकाय' के 'पासादिक सुत्तन्त' मे है कि "जब निगन्ठ नातपुत्त का निर्वाण हो गया तो निर्ग्रंथ मुनि आपस मे झगडने लगे। उनके इस झगडे को देखकर श्वेत वस्त्रधारी गृही श्रावक बडे दुःखी हुये।[६] अब यदि निर्ग्रंथ साधु भी श्वेत वस्त्र पहनते होते तो श्रावको के लिये एक विशेषण रूप में न लिखे जाते। अतः इससे भी 'निर्ग्रंथ साधु' का नग्न होना प्रकट है।

---

१ मज्झिमनिकाय १ । ९२, अगुत्तरनिकाय १ । २२०।

२ जातक भा २, पृ १८२, भमबु २४५।

३ Indian Historical Quarterly Vol I p 153

४ महावग्ग २।१।१ और भ महावीर और म बुद्ध, पृ २८०।

५ भमबु पृ २५२।

६ "तस्म कालकिरियाय भिन्ना निगण्ठ द्वेधिक जाता, भण्डन जाता कलह जाता वधो एव खोमजेनिगण्ठेसु नाथ पुत्तियेसु वत्तति ये पि निगन्ठस्स नाथपुत्तस्स सावका गिही ओदातवसना दु रक्खाते इत्यादि। (PTS III 117–118) भमतु, पृ २१४।

'दाठावसो' में अहिरिका' शब्द के साथ-साथ निगण्ठ शब्द का प्रयोग जैन साधु के लिये हुआ मिलता है[1] और 'अह्रीक' या 'अहिरिक' शब्द नग्नता का द्योतक है। इसलिये बौद्ध साहित्यानुसार भी निर्ग्रंथ साधु को नग्न मानना ठीक है।

शिलालेखीय साक्षी भी इसी बात को पुष्ट करती है। कदम्बवशी महाराज श्री विजयशिवमृगेश वर्मा ने अपने एक ताम्रपत्र मे अर्हत भगवान और श्वेताम्बर महाश्रमण सघ तथा निर्ग्रंथ अर्थात् दिगम्बर महाश्रमण सघ के उपभोग के लिये कालवग नामक ग्राम को भेट मे देने का उल्लेख किया है।[2]

यह ताम्रपत्र ई. पॉचवी शताब्दी का है। इससे स्पष्ट है कि तब के श्वेताम्बर भी अपने को निर्ग्रंथ न कहकर दिगम्बर सघ को ही निर्ग्रंथ सघ मानते थे। यदि यह बात न होती तो वह अपने को 'श्वेतपट' और दिगम्बर को 'निर्ग्रंथ' न लिखाने देते।

कदम्ब ताम्रपत्र के अतिरिक्त विक्रम सं ११६१ का ग्वालियर से मिला एक शिलालेख भी इसी बात का समर्थन करता है। उसमे दिगम्बर जैन यशोदेव को 'निर्ग्रंथनाथ' अर्थात् दिगम्बर मुनियो के नाथ श्री जिनेन्द्र का अनुयायी लिखा है। अत· इससे भी स्पष्ट है कि 'निर्ग्रंथ' शब्द दिगम्बर मुनि का द्योतक है।[3]

चीनी यात्री ह्वेनसांग के वर्णन से भी यही प्रकट होता है कि 'निर्ग्रंथ' का भाव नग्न अर्थात् दिगम्बर मुनि हैं-

The Li-hi (Nigranth's) distinguish themselves by leaving their bodies naked and pulling out their hair" (St. Julien, Vienna, p 224).

अत· इन सब प्रमाणो से यह स्पष्ट है कि 'निर्ग्रंथ' शब्द का ठीक भाव दिगम्वर (नग्न) मुनि का है।

१९. निरागार- आगार-घर आदि परिग्रह रहित दिगम्वर मुनि। 'परिगहरहिओ निरायारो'।

---

१ 'इसमें अहिरिका सव्वे सद्धादिगुण वज्जिता। यद्धा सठाच दुप्पज्जासग्गमोक्ख विबन्धका ।।८८।। इति सो चिन्तयित्वान गृहसीवो नराधिपो। पव्वाजेसि सकारट्ठा निगण्ठे ते अपेसके।।८९।। -दाठावंसो, पृ १४

२ कदम्बना श्री विजयशिवमृगेश वर्मा कालवगं ग्राम त्रिधा विभज्य दत्तवान् अत्रपूर्व्वमर्हच्छाला परमपुष्कलस्थान निवासिभ्य भगवर्द्हन्महाजिनेन्द्र देवताभ्य एकोभाग द्वितीयोर्हत्प्रोक्तसद्धर्मकरण परस्य श्वेतपट महाश्रमणसघोपभोगाय तृतीयो निर्ग्रंथमहाश्रमणसघोपभोगायेति. । -जैहि , भा १४, पृ २२९।

३. The Gwalior inscrips of Vik 1161 (1104 A D.).

"It was composed by a Jaina Yasodeva, who was an adherent of the digambara or nude sect (Nigranthanatha) "-Catalogue of Archaeological Exhibits in the U PP Museum, Lucknow, Pt I (1915), p 44

२०. पाणिपात्र- करपात्र ही जिनका भोजनपात्र है, वह दिगम्बरमुनि।

'णिच्चेल पाणिपत्तं उवइट्ठ परम जिणवरिंदेहिं।'[1]

२१. भिक्षुक- भिक्षावृत्ति का धारक होने के कारण दिगम्बर मुनि इस नाम से प्रसिद्ध होता है। इसका उल्लेख 'मूलाचार' मे मिलता है-

'मणवचकायपउत्ती भिक्खू सावज्जकज्जसजुत्ता।
खिप्प णिवारयंतो तिहि दु गुत्तो हवदि एसो।।३३१।।

२२. महाव्रती[2]-पच महाव्रतो को पालन करने के कारण दिगम्बर मुनि इस नाम से प्रगट हैं।

२३. माहण-ममत्व त्यागी होने के कारण माहण नाम से दिगम्बर मुनि अभिहित होता है।

२४. मुनि- दिगम्बर साधु श्री कुन्दकुन्दाचार्य इस का उल्लेख यूँ करते हैं[3]-

"पच महव्वयजुत्ता पचिंदिय सजमा णिरावेक्खा।
सज्झायझाणजुत्ता मुणिवर वसहा णिइच्छति।।"

२५. यति- दिगम्बर मुनि कुन्दकुन्द स्वामी कहते हैं-

"सुद्ध सजमचरण जइधम्म णिक्कलं वोच्छे"[4]

२६. योगी-योगनिरत होने के कारण दिगम्बर साधु का यह नाम है। यथा[5]-

"ज जाणियूण जोई जो अत्थो जोइ ऊण अणवरय।
अव्वावाहमणंत अणोवय लहइ णिव्वाण।।"

२७. वातवसन-वायुरूपी वस्त्रधारी अर्थात् दिगम्बर मुनि।

"श्रमण दिगम्बराः श्रमण वातवसनाः" -इतिनिघण्टुः

२८. विवसन- वस्त्र रहित मुनि। वेदान्तसूत्र की टीका में दिगम्बर जैन मुनि 'विवसन' और 'विसिच्' कहे गए हैं।[6]

२९. संयमी(संयत्)-यमनियमो का पालक सो दिगम्बर मुनि। उल्लेख यू है-

"पचमहव्वय जुत्तो तिहि गुत्तिहिं जो स सजदो होइ।"[7]

३०. स्थविर- दीर्घ तपस्वी रूप दिगम्बर मुनि। 'मूलाचार' में उल्लेख इस प्रकार है[8]-

"तत्थ ण कप्पइ वासोजत्थ इमे णत्थि पच आधारा।

---

१. वृजेश, पृ. ४।
२. अष्ट. पृ.१४२।
३ अष्ट., पृ ९९।
४. अष्ट., पृ २९०।
५. अष्ट., पृ २९०। -
६ वेदान्तसूत्र २-२-३३ - शंकरभाष्य-वीर, वर्ष २, पृ ३१७।
७ अष्ट., पृ.७१।
८. मूला , पृ ७१।

आइरियउवज्झाया पवत्त थेरा गणधरा य।।"

३१. साधु–आत्मसाधना में लीन दिगम्बर मुनि। इनको भी कुछ परिग्रह न रखने का विधान है[१]–

३२. संन्यस्त[२]– सन्यास ग्रहण किये हुए होने के कारण दिगम्बर मुनि इस नाम से भी प्रख्यात हैं।

३३. श्रमण–अर्थात् समरसी भाव सहित दिगम्बर साधु। उल्लेख यूँ है–

'वन्दे तव सावणणा' (वन्दे तप श्रमणान्)[४]

'समणोमेत्ति य पढम विदिय सव्वत्थ सजदो मेत्ति।'[५]

३४. क्षपणक–नग्न साधु। दिगम्बराचार्य योगीन्द्र देव ने यह शब्द दिगम्बर साधु के लिए प्रयुक्त किया है[६]–

"तरुणउ बूढउ रूपडउ सूरउ पडिउ दिव्वु।
खवणउ वदउ सेवडउमूढ़उ मण्णइ सव्व।।८३।।

श्वेताम्बर जैन ग्रथो मे भी दिगम्बरमुनियो के लिये यह शब्द व्यवहृत हुआ है[६]–

"खोमाणराजकुलजोऽपिसमुद्र सूरि
र्गच्छ शशास किल दमवण प्रमाण (?)।
जित्वा तदां क्षपणकान्स्ववश वितेने
नार्गेद्रदे (?) भुजगनाथनमस्य तीर्थे।"

श्री मुनिसुन्दर सुरि ने अपनी गुर्वावली मे इस श्लोक के भाव मे 'क्षपणकान्' की जगह 'दिगवसनान्' पद का प्रयोग करके इसे दिगम्बर मुनि के लिये प्रयुक्त हुआ स्पष्ट कर दिया है।[८] श्वेताम्बराचार्य हेमचन्द्र ने अपने कोष मे 'नग्न' का पर्यायवाची शब्द 'क्षपणक'भी दिया है।[९] यही बात श्रीधरसेन के कोष से भी प्रकट है।[१०] अजैन शास्त्रो मे भी 'क्षपणक' शब्द दिगम्बर जैन साधुओ के लिए व्यवहृत हुआ मिलता है। 'उत्पल'कहताहै?[१]–

"निर्ग्रथो नग्नः क्षपणकः।"

"अद्वैतब्रह्मसिद्ध" (पृ १६९) से भी यही प्रकट है–

---

१ अष्ट पृ. ६७।
२ वृजेश. पृ ४।
३ अष्ट, पृ ३७।
४ मूला , पृ ४५।
५. 'परमात्म प्रकाश'– रश्रा. पृ. १४०
६ रश्रा., पृ १३९।
७. रश्रा , पृ १४०।
८. 'नग्नो विवाससि मागधे च क्षपणके।'
९. 'नग्नस्त्रिषु विवस्त्रे सयात्पु सि क्षपणवन्दिनो ।'

"क्षपणका जैनमार्गसिद्धान्तप्रवर्तका इति केचित्।"

"प्रवोधचद्रोदय नाटक" (अंक ३) मे भी यही निर्दिष्ट किया गया है[२]--

"क्षपणकवेशो दिगम्बरसिद्धान्तः।"

"पचत त्र--अपरीक्षितकारकतत्र"[३] "दशकुमार चरित्र[४]" था "मुद्राराक्षस--नाटक"[५] मे भी "क्षपणक" शब्द दिगम्बर मुनि के लिए व्यवहृत हुआ मिलता है। मोनियर विलियम्स के 'सस्कृत कोष' मे भी इसका अर्थ यही लिखा है।[६]

इस प्रकार उपर्युक्त नामो से दिगम्बर जैन मुनि प्रसिद्ध हुये मिलते हैं। अतएव इनमे से किसी भी शब्द का प्रयोग दिगम्बर मुनि का द्योतक ही समझना चाहिये।

---

१ IHQ.III,245, 13--J G.,XIV,48

२. J G , XIV,48

३ (क्षपणक विहार गत्वा)--'एकाकीगृहसत्यक्त पाणिपात्रो दिगम्बरः।'

४ द्वितीय उच्छ्वास, वीर, वर्ष २, पृ ३१७।

५ मुद्राराक्षस, अक ४--वीर, वर्ष ५, पृ ४३०

6 " kaspnaka is a religious mendicant, specially a Jain mendicant who wears no garment." -- Monier William's, Sanskrit Dictionary, p 326

इतिहासातीत काल में दिगम्बर मुनि

"आतिथ्यरूप मासर महावीरस्य नग्नहुः
रूपमुपसदा मेतत्तिस्रो रात्री सुरासुता।"

–यजुर्वेद, अ १९.मत्र १४

भारतवर्ष का ठीक–ठीक इतिहास ईस्वी पूर्व आठवी शताब्दी तक माना जाता है। इसके पहले की कोई भी बात विश्वसनीय नही मानी जाती, यद्यपि भारतीय विद्वान अपनी–अपनी धार्मिक–वार्ता इस काल से भी बहुत प्राचीन मानते और उसे विश्वसनीय स्वीकार करते हैं। उनकी यह वार्ता 'इतिहासातीत काल' की वार्ता समझनी चाहिये। दिगम्बर मुनियो के विपय में भी यही बात है। भगवान ऋपभदेव द्वारा एक, अज्ञात अतीत मे दिगम्बर मुद्रा का प्रचार हुआ और तब से वह ईस्वी पूर्व आठवी शताब्दी तक ही नही बल्कि आज तक निर्बाध प्रचलित है। दिगम्बर मुद्रा के इस इतिहास की एक सामान्य रूपरेखा यहाँ प्रस्तुत करना अभीप्ट है।

इतिहासातीत काल मे प्राचीन जैन शास्त्र अनेक जैन–सम्राट और जैन तीर्थकरो का होना प्रकट करते है और उनके द्वारा दिगम्बर मुद्रा का प्रचार भारत में ही नही बल्कि दूर–दूर देशो तक हो गया था। दिगम्बर जैन आम्नाय के प्रथमानुयोग सम्बन्धी शास्त्र इस कथा–वार्ता से भरे हुये हैं, उनको हम यहाँ दुहराना नही चाहते, प्रत्युत जैनेतर शास्त्रो के प्रमाणो को उपस्थित करके हम यह सिद्ध करना चाहते हैं कि दिगम्बर मुनि प्राचीन काल से होते आये हैं और उनका विहार सर्वत्र निर्बाध रूप से होता रहा है।

भारतीय साहित्य मे वेद प्राचीन ग्रथ माने गये हैं। अत सबसे पहिले उन्ही के आधार से उक्त व्याख्या को पुष्ट करना श्रेप्ठ है। किन्तु इस सम्बन्ध मे यह बात ध्यान देने योग्य है कि वेदो के ठीक–ठीक अर्थ आज नही मिलते और भारतीय धर्मो के पारस्परिक विरोध के कारण बहुत से ऐसे उल्लेख उनमे से निकाल दिये गये अथवा अर्थ बदलकर रखे गए है जिनसे वेद–बाह्य सम्प्रदायो का समर्थन होता था। इसी के साथ यह बात भी है कि वेदो के वास्तविक अर्थ आज ही नही मुद्दतो पहले लुप्त हो चुके थे[१] और यही कारण है कि एक ही वेद के अनेक विभिन्न भाष्य मिलते हैं। अत वेदों के मूल वाक्यो के अनुसार उक्त व्याख्या की पुप्टि करना यहाँ अभीप्ट हैं।

---

१ ई पूर्व ७ वी शताब्दि का वैदिक विद्वान कौत्स्य वेदो को अनर्थक बतलाता है। (अनर्थका हि मत्रा । यास्क, निरुक्त १५–१) यास्क इसका समर्थन करता है। (निरुक्त १६ ।
२ देखो 'Asur India', p 1, V)।

'यजुर्वेद (अ. १९, मत्र १४) मे, जो इस परिच्छेद के आरभ में दिया हुआ है, अन्तिम तीर्थकर महावीर का स्मरण नग्न विशेषण के साथ किया गया है। 'महावीर' और 'नग्न' शब्द जो उक्त मन्त्र मे प्रयुक्त हुये है उनके अर्थ कोष ग्रथो मे अतिम जैन तीर्थकर और दिगम्बर ही मिलते है।[1] इसलिये इस मत्र का सम्बन्ध भगवान् महावीर से मानना ठीक है। वैसे बौद्ध साहित्यादि से स्पष्ट है कि महावीर स्वामी नग्न साधु थे। इस अवस्था मे उक्त मत्र में 'महावीर' शब्द 'नग्न' विशेषण सहित प्रयुक्त हुआ, जो इस बात का द्योतक है कि उसके रचयिता को तीर्थकर महावीर का उल्लेख करना इष्ट है। इस मंत्र मे जो शेष विशेषण है वह भी जैन तीर्थकर के सर्वथा योग्य हैं और इस मत्र का फल भी जैन शास्त्रानुकूल है। अतः यह मत्र भगवान् महावीर को दिगम्बर मुनि प्रकट करता है।

किन्तु भगवान महावीर तो ऐतिहासिक महापुरुष मान लिये गये हैं, इसलिये उनसे पहले के वैदिक उल्लेख प्रस्तुत करना उचित है। सौभाग्य से हमे ऋक्सहिता (१० । १३६-२) मे ऐसा उल्लेख निम्न शब्दो में मिल जाता है-

"मुनयो वातवसना·।"

भला यह वातवसन-दिगम्बर मुनि कौन थे? हिन्दु पुराण ग्रथ बताते है कि वे दिगम्बर जैन मुनि थे। जैसे कि हम पहले देख चुके है और भी देखिये, श्रीमद्भागवत् मे जैन तीर्थकर ऋपभदेव ने जिन ऋपियो को दिगम्बरत्व का उपदेश दिया था, वे 'वातरशनानां श्रमण' कहे गये हैं।[2] ओ. अल्ब्रेट् वेबर भी उक्त वाक्य को दिगम्बर जैन मुनियो के लिये प्रयुक्त हुआ व्यक्त करते है।[3]

इसके अतिरिक्त अथर्ववेद (अ.१५) मे जिन 'व्रात्य' पुरुषो का उल्लेख है, वे दिगम्बर जैन ही हैं, क्योकि व्रात्य 'वैदिक सस्कारहीन' बताये गये हैं[4] और उनकी क्रियाये दिगम्बर जैनो के समान है। वे वेद विरोधी थे। झल्ल, मल्ल, लिच्छवि, ज्ञातृ, करण, खस और द्राविड़ एक व्रात्य क्षत्री की सन्तान बताये गये है[5] और ये सब प्राय· जैन धर्म भूकृथे। ज्ञातृवश मे तो स्वय भगवान महावीर का जन्म हुआ था, तथापि, मध्यकाल मे भी जैनी 'व्रती' (Verteis) नाम से प्रसिद्ध रह चुके हैं, जो 'व्रात्य' से मिलता-जुलता शब्द है।[6] अच्छा तो इन जैन धर्म भूकृव्रात्यो मे दिगम्बर जैन मुनि का होना लाज़मी है।[7] 'अर्थवेद' भी इस बात को प्रकट करता है। उसमे व्रात्य के दो भेद

---

१ वेंजै , पृ ५५-६०।

२ वेजै, पृ ३।

३ I A, Vol XXX, p 280

४ अमरकोष २ । ८ व मनु , १० । २० सायणाचार्य भी यही कहते हैं-"व्रात्यो नाम उपनयनादि सस्कारहीन पुरुष·। सोऽर्थाद् यज्ञादिवेदविहिताः क्रिया कर्तुनाधिकारी। इत्यादि" -अथर्ववेद सहिता पृ २९३

५ मनु ,१० ।२२।

६ सूस पृ ३९८ व ३९९।

७ 'व्रात्य जैनी हैं, इसके लिये "भगवान् पार्श्वनाथ" की प्रस्तावना देखिए।

'हीन व्रात्य' और 'जयेष्ठ व्रात्य' किये हैं। इनमे ज्येष्ठ व्रात्य दिगम्बर मुनि का द्योतक है, क्योकि उसे 'समनिचमेद्र' कहा गया है, जिसका भाव होता है 'अपेतप्रजनना।'[1] यह शब्द 'अह्नीक' शब्द के अनुरूप है और इसमे ज्येष्ठ व्रात्य का दिगम्बरत्व स्पष्ट है।

इस प्रकार वेदो से भी दिगम्बर मुनियो का अस्तित्व सिद्ध है।[2] अब देखिये उपनिषद् भी वेदो का समर्थन करते है। 'जाबालोपनिषद्' निर्ग्रथ शब्द का उल्लेख करके दिगम्बर साधु का अस्तित्व उपनिषद् काल मे सिद्ध करता है–

"यथाजातरूपधरो निर्ग्रथो निष्परिग्रहः ....
शुक्लध्यानपरायणः।" .... (सूत्र ६)

निर्ग्रंथ साधु यथाजातरूपधारी तथा शुक्ल ध्यान परायण होता है। सिवाय निर्ग्रथ (जैन) मार्ग के अन्यत्र कही भी शुक्ल ध्यान का वर्णन नही मिलता, यह पहले भी लिखा जा चुका है। 'मैत्रेयोपनिषद्' मे 'दिगम्बर' शब्द का प्रयोग भी इसी बात का द्योतक है।[3] 'मुण्डकोपनिषद्' की रचना भृगु अगरिस नामक एक भ्रष्ट दिगम्बर जैन मुनि द्वारा हुई थी और उसमे अनेक जैन मान्यताये तथा पारिभाषिक शब्द मिलते हैं। 'निर्ग्रंथ' शब्द, जो खास जैनो का पारिभाषिक शब्द है, इसमे व्यवहृत हुआ है और उसका विश्लेषण केशलोच (शिरोव्रत विधिवद्यैस्तु चीर्ण) दिया है[६] तथा 'अरिष्टनेमि' का स्मरण भी किया है, जो जैनियो के बाईसवें तीर्थकर है।[4] इससे भी उस काल में दिगम्बर मुनियो का होना प्रमाणित है।

अब 'रामायण काल' मे दिगम्बरमुनियो के अस्तित्व को देखिये। 'रामायणके 'बालकाण्ड' (सर्ग १४, श्लोक. २२) मे राजा दशरथ श्रमणो को आहार देते बताये गये है ("तापसा भुञ्जते चापि श्रमण भुञ्जते तथा") और 'श्रमण' शब्द का अर्थ 'भूषणटीका'

---

१. भपा, प्रस्तावना, पृ ४४–४५।

२ जैन ग्रन्थकार प्रातः स्मरणीय स्व प टोडरमल जी ने आज से लगभग दो–ढाई सौ वर्ष पहले (१) निम्न वेद मन्त्रों का उल्लेख अपने ग्रथ 'मोक्षमार्ग प्रकाश' में किया है और ये भी दिगम्बर मुनियो के द्योतक हैं–

ऋग्वेद में आया है– "ॐ त्रैलोक्य प्रतिष्ठितान् चतुर्विंशति तीर्थकान् ऋषभाद्या वर्द्धमानान्तान् सिद्धान् शरण प्रपद्य। ॐ पवित्र नग्नमुपर्विप्रसामहे एषा नग्ना जातिर्येषा वीरा इत्यादि।

यजुर्वेद में है–ॐ नमो अर्हतो ऋषभो ऊ ऋषभपवित्रं पुरुहूतमध्वद यज्ञेषु नग्न परममाह सस्तुत वर शत्रु जयत पशुरिद्रमाहूतिरिति स्वाहा।" ऊ नग्नं सुधीरं दिग्वाससं ब्रह्मगर्म्व सनातन उपैमि वीर पुरुषमर्हंतमादित्य वर्णा तमस पुरस्तात् स्वाहा।" (पृ. २०२)

३ "देशकालविमुक्ततोऽस्मि दिगम्बर सुखोस्म्यहम्" –दिमु, पृ १०

४ वीर, वर्ष ८, पृ २५३।

५ स्वस्ति नस्ताक्ष्यों अरिष्टनेमि।' –ईशाद्य, पृ १४

मे दिगम्बर मुनि किया गया है,[१] जो ठीक है, क्योकि दिगम्बर मुनि का एक नाम 'श्रमण' भी है, तथापि जैन शास्त्र राजा दशरथ और रामचन्द्र जी आदि का जैन भक्त प्रगट करते हैं।[२] योगवाशिष्ट' में रामचन्द्र जी 'जिन भगवान्' के समान होने की इच्छा प्रकट करके अपनी जैनभक्ति प्रकट करते हैं।[३] अतः रामायण के उक्त उल्लेख से उस काल मे दिगम्बर मुनियो का होना स्पष्ट है।

"महाभारत"मे भी 'नग्न क्षपणक' के रूप मे दिगम्बर मुनियो का उल्लेख मिलता है,[४] जिससे प्रमाणित है कि "महाभारत काल" मे भी दिगम्बर जैन मुनि मौजूद थे। जैन शास्त्रानुसार उस समय स्वय तीर्थंकर अरष्टनेमि विद्यमान थे।

हिन्दू पुराण ग्रथ भी इस विषय मे वेदादिग्रथो का समर्थन करते हैं। प्रथम जैन तीर्थंकर ऋषभदेवजी को श्रीमद्भागवत और विष्णुपुराण दिगम्बर मुनि प्रगट करते है, यह हम देख चुके। अब 'विष्णुपुराण' मे और भी उल्लेख है वह देखिये।[५] वहाँ मैत्रेय पाराशर ऋषि से पूछते है कि 'नग्न' किसको कहते हैं? उत्तर में पाराशर कहते हैं कि " जो वेद को न माने वह नग्न है" अर्थात् वेद विरोधी नगे साधु 'नग्न' हैं। इस सबध मे देव और असुर सग्राम की कथा कहकर किस प्रकार विष्णु के द्वारा जैन धर्म की उत्पत्ति हुई, यह वह कहते हैं। इसमे भी जैन मुनि का स्वरूप 'दिगम्बर' लिखा है-

"ततो दिगम्बरो मु डो वर्हिपत्र धरो द्विज।"

देवासुर युद्ध की घटना इतिहासातीत काल की है। अतः इस उल्लेख से भी उस प्राचीन काल मे दिगम्बर मुनि का अस्तित्व प्रमाणित होता है तथा वह निर्बाध विहार करते थे, यह भी इससे स्पष्ट है क्योकि इसमे कहा गया है कि वह दिगम्बर मुनि नर्मदा तट पर स्थित असुरो के पास पहुचा और उन्हे निज धर्म मे दीक्षित कर लिया।[६]

'पद्मपुराण' प्रथम सृष्टि, खण्ड १३ (पृ. ३३) पर जैन धर्म की उत्पत्ति के सबध मे एक ऐसी ही कथा है, जिसमें विष्णु द्वारा मायामोह रूप दिगम्बर मुनि द्वारा जैन धर्म का निकास हुआ बताया गया है-

वृहस्पति साहाय्यार्थ विष्णुना मायामोह समुत्पादवम्
दिगम्बरेण मायामोहने दैत्यान् प्रति जैनधर्मोपदेशः दानवानां
मायामोह मोहितानां-गुरुणा दिगवर जैनधर्म दीक्षा दानम्।

---

१. "श्रमण दिगम्बरा श्रमणा वातवसना ।"
२ पद्मपुराण देखो।
३ योग वासिष्ट, अ १५, श्लो ८।
४ आदिपर्व, अ ३, श्लो २६-२७।
५ विष्णुपुराण तृतीयाँश, अ १७-१८ वेजै , पृ २५ व पुरातत्व ४ । १८० ।
६ पुरातत्व ४ । १७९ ।

मायामोह को उसमें "योगी दिगम्बरो मुण्डो बर्हिपत्रधरो ह्यय" लिखा है।[१] इससे भी उक्त दोनो बातो की पुष्टि होती है।

इसी 'पद्मपुराण' मे (भूमि खड, अ. ६६)[२] में राजा वेण की कथा है। उसमे लिखा है कि एक दिगम्बर मुनि ने उस राजा को जैन धर्म मे दीक्षित किया था। मुनि का स्वरूप यू लिखां है—

"नग्नरूपो महाकायः सितमुण्डो महाप्रभः।
मार्ज्जनी शिखिपत्राणां कक्षायाँ स हि धारयन्।।
गृहीत्वा पानपात्रश्च नारिकेलमनीकरे।
पठमानो मरच्छास्त्र वेदशास्त्रविदूषकम्।।
यत्रवेणो महाराजस्तत्रोपापात्त्वरान्वित ।
सभायाँ तस्य वेणस्य प्रविवेश सपापवान्।।"

वह नग्न साधु महाराज वेण की राजसभा में पहुच गया और धर्मोपदेश देने लगा।[३] इससे प्रकट है कि दिगम्बर मुनि राजसभा मे भी बेरोक-टोक पहुचते थे। वेण ब्रह्मा से छठी पीढ़ी में थे।[४] इसलिये यह एक अतीव प्राचीनकाल मे हुये प्रमाणित होते हैं।

'वायुपुराण' मे भी निर्ग्रंथ श्रमणो का उल्लेख है कि श्राद्ध मे इनको न देखना चाहिये।[५]

'स्कन्धपुराण' (प्रभासखण्ड के वस्त्रापथ क्षेत्र माहात्म्य, अ.१६ पृ. २२१) मे जैन तीर्थकर नेमिनाथ को दिगम्बर शिव के अनुरूप मानकर जाप करने का विधान है[६]—

"वामनोपि ततश्चक्रे तत्र तीर्थावगाहनम्
यादृग्रूप शिवोदृष्टः सूर्यबिम्बे दिगम्बर ।।९४।।
पद्मासनस्थितः सौम्यस्तथात तत्र संस्मरन्।
प्रतिष्ठाप्य महामूर्ति पूजयामासवासरम् ।।९५।।
मनोभीष्ठार्थ-सिद्धायर्थ तत· सिद्धमवाप्तमान्।
नेमिनाथ शिवेत्येव नामचक्रे शवामनः ।।९६।।"

---

१ वेजै , पृ १५।

२ R C Dutt. Hindu Shastras Pt VIII. pp 213–22 & J G XIV 89

३ उसने बताया कि मेरे मत में—

"अर्हतो देवता यत्र निर्ग्रंथो गुरुरुच्यते।
दया वै परमो धर्मस्तत्र मोक्ष प्रदृश्यते।"

यह सुनकर वेण जैनी हो गया। (एव वेणस्य वै राज्ञ सुष्टिरेस्व महात्मन । धर्माचार परित्यज्य कथ पापे मतिर्भवेत्।।) जैन सम्राट् खारवेल के शिलालेख से भी राजा वेण का जैनी होना प्रमाणित है। (जर्नल ऑफ दी बिहार एण्ड उडीसा रिसर्च सोसाइटी, भा १३, पृ. २२४)।

४. J G , XIV, 162

५ पुरातत्व, पृ ४, पृ १८१।

६ वेजै , पृ ३४।

इस प्रकार हिन्दू पुराण ग्रंथ भी इतिहासातीत काल मे दिगम्बर जैन मुनियो का होना प्रमाणित करते हैं।

बौद्ध शास्त्रो मे भी ऐसे उल्लेख मिलते हैं जो भगवान् महावीर के पहले दिगम्बर मुनियो का होना सिद्ध करते हैं। बौद्ध साहित्य मे अंतिम तीर्थंकर निर्ग्रंथ महावीर के अतिरिक्त श्री सुपार्श्व[१] अनन्तजिन[२] और पुष्पदन्त[३] के भी नामोल्लेख मिलते हैं। यद्यपि उनके सम्बन्ध मे यह स्पष्ट उल्लेख नही है कि वे जैन तीर्थंकर और नग्न थे, किन्तु जब जैन साहित्य मे उस नाम के दिगम्बर वेषधारी तीर्थंकर महामुनीश मिलते हैं, तब उन्हें जैन और नग्न मानना अनुचित नही है। वैसे बौद्ध साहित्य भगवान् पार्श्वनाथ के तीर्थवर्ती मुनियों का नग्न प्रकट करता है[४] अतः इस स्त्रोत से भी प्राचीन काल मे दिगम्बर मुनियो का होना सिद्ध है।

इस अवस्था मे जैन शास्त्रो का यह कथन विश्वसनीय ठहरता है कि भगवान् ऋषभनाथ के समय से बराबर दिगम्बर जैन मुनि होते आ रहे हैं और उनके द्वारा जनता का महत कल्याण हुआ है। जैन तीर्थंकर सब ही राजपुत्र थे आर बड़े-बड़े राज्यो को त्यागकर दिगम्बर मुनि हुये थे। भारत के प्रथम सम्राट् भरत, जिनके नाम से यह देश भारतवर्ष कहलाता है, दिगम्बर मुनि हुये थे। उनके भाई श्री बाहुवलि जी अपनी तपस्या के लिए प्रसिद्ध है। तपस्वी रूप मे उनकी महान् मूर्ति आज भी श्रवणवेलगोल में दर्शनीय वस्तु है। उनकी उस महाकाय नग्नमूर्ति के दर्शन करके स्त्री-पुरुष, बालक-वृद्ध भारतीय तथा विदेशी अपने को सौभाग्यशाली समझते हैं। रामचन्द्र जी, सुग्रीव, युधिष्ठर आदि अनेक दिगम्बर मुनि इस काल में हुये हैं, जिनके भव्य चरित्रो से जैन शास्त्र भरे हुये हैं। गतकाल मे भारत मे दिगम्वरत्व अपनी अपूर्व छठा दर्शा चुका है।

---

१. 'महावग्ग'(१। २२-२३ SEB. p. 144) में लिखा है कि बुद्ध राजगृह में जब पहले-पहले धर्म प्रचार को आए तो लाठी वन में "सुप्पतित्थ्य" के मदिर में ठहरे। इसके बाद इस मदिर में ठहरने का उल्लेख नही मिलता। इसका कारण यही है कि इस जैन मदिर के प्रबन्धकों ने जब यह जान लिया कि महात्मा बुद्ध अब जैन मुनि नही रहे तो उन्होंने उनका आदर करना रोक दिया। विशेष के लिये देखो भमबु, पृ ५०-५१।

२. उपक आजीवक अनन्तजिनको अपना गुरु बताता है। आजीविकों ने जैन धर्म से बहुत कुछ लिया था। अत· यह अनन्तजिन तीर्थंकर ही होना चाहिए। आरिय-परियेषण-सुत IHQIII 247

३ 'महावस्तु' में पुष्पदंत को एक बुद्ध और ३२ लक्षणयुक्त महापुरुष बताया गया है। -ASM p. 30

४. महावग्ग (७०-३) में है कि बौद्ध भिक्षुओं ने नगे और भोजन पात्रहीन मनुष्यों को दीक्षित कर लिया, जिस पर लोग कहने लगे कि बौद्ध भी "तिथियों" की तरह करने लगे। तित्थिय महात्मा बुद्ध और भगवान् महावीर से प्राचीन साधु और खासकर दिगम्बर जैन साधु थे। इसलिये इन्हें पार्श्वनाथ के तीर्थ का मुनि मानना ठीक है। भमबु., पृ. २३६-२३७ व जैसिभ १। २-३। २४-२६, तथा IA , August 1930

भगवान् महावीर और उनके समकालीन दिगम्बर मुनि

'निगण्ठो' आवुसो नाथपुतो सव्वज्ञु, सब्वदस्सावी अपरिसेस ज्ञाण दस्सन परिजानातिः।'
— मुज्झिमनिकाय

'निगण्ठो नातुपुत्तो सघी चेव गणी च गणाचार्यो च ज्ञातो यसस्सी तित्थकरो साधु सम्मतो बहुजनस्स रत्तस्सू चिर पव्वजितो अद्धगतो वयो अनुप्पत्ता।' —दीघनिकायः

भगवान् महावीर वर्द्धमान ज्ञातृवशी क्षत्रियो के प्रमुख राजा सिद्धार्थ और प्रियकारिणी त्रिशला के सुपुत्र थे। रानी त्रिशला वज्जियन राष्ट्रसघ के प्रमुख लिच्छवि-अग्रणी राजा चेटक की सुपुत्री थी। लिच्छवि क्षत्रियो का आवास समृद्धिशाली नगरी वैशाली में था। ज्ञातृक क्षत्रियो की बसती भी उसी के निकट थी। कुण्डग्राम और कोल्लगसन्निवेश उनके प्रसिद्ध नगर थे। भगवान् महावीर वर्द्धमान का जन्म कुण्डग्राम मे हुआ था और वह अपने ज्ञातृवश के कारण "ज्ञातृपुत्र" के नाम से भी प्रसिद्ध थे। बौद्ध ग्रंथो मे उनका उल्लेख इसी नाम से मिलता है और वहाँ उन्हें भगवान् गौतम बुद्ध का समकालीन बताया गया है। दूसरे शब्दो मे कहें तो भगवान् महावीर आज से लगभग ढाई हजार वर्ष पहले इस धरातल को पवित्र करते थे और वह क्षत्री राजपुत्र थे।[१]

भरी जवानी मे ही महावीर जी ने राज-पाट का मोह त्याग कर दिगम्बर मुनि का वेश धारण किया था और तीस वर्ष तक कठिन तपस्या करके वह सर्वज्ञ और सर्वदर्शी तीर्थकर हो गये थे। 'मज्झिमनिकाय' नामक बौद्ध ग्रन्थ में उन्हें सर्वज्ञ, सर्वदर्शी और अशेष ज्ञान तथा दर्शन का ज्ञाता लिखा है।[२] तीर्थकर महावीर ने सर्वज्ञ होकर देश-विदेश मे भ्रमण किया था और उनके धर्म प्रचार से लोगो का आत्म-कल्याण हुआ था। उनका विहार सघ सहित होता था और उनकी विनय हर कोई करता था। बौद्ध ग्रथ 'दीघनिकाय' मे लिखा है कि "निर्ग्रंथ ज्ञातृपुत्र (महावीर) संघ के नेता हैं, (गणाचार्य हैं, दर्शन विशेष के प्रणेता हैं, विशेष विख्यात हैं, तीर्थकर हैं, वह

१. विशेष के लिये हमारा "भगवान् महावीर और महात्मा बुद्ध" नामक ग्रथ देखो।
२. मज्झिमनिकाय (P.T.S.) भा १, पृ. ९२-९३।

मनुष्यो द्वारा पूज्य हैं, अनुभवशील हैं, बहुत काल से साधु अवस्था का पालन करते है और अधिक वय प्राप्त हैं।"[१]

जैन शास्त्र 'हरिवंशपुराण' मे लिखा है कि "भगवान् महावीर ने मध्य के (काशी, कौशल, कौशल्य, कुसध्य, अश्वष्ट, त्रिगतपञ्चाल, भद्रकार, पाटच्चार, मौक, मत्स्य, कनीय, सूरसेन एव वृकार्थक), समुद्रतट के (कलिंग, कुरुजांगल, कैकेय, आत्रेय, कांबोज, बाल्हीक, यवनश्रुति, सिंधु, गाँधार, सौवीर, सूर, भीरु, दशेरुक, वाडवान, भारद्वाज और काथतोय) और उत्तर दिशा के (तार्ण, कार्ण, प्रच्छाल आदि) देशो मे बिहार कर उन्हें धर्म की ओर ऋजु किया था।"[२]

'भगवान् महावीर का धर्म अहिंसा प्रधान तो था ही, किन्तु उन्होने साधुओ के लिये दिगम्बरत्व का भी उपदेश दिया था।[३] उन्होने स्पष्ट घोषित किया था कि जैन धर्म मे दिगम्बर साधु ही निर्वाण प्राप्त कर सकता है। बिना दिगम्बर वेष धारण किये निर्वाण प्राप्त कर लेना असभव है और उनके इस वैज्ञानिक उपदेश का आदर आबाल–वृद्ध–वनिता ने किया था।'

'विदेह में जिस समय भगवान् महावीर पहुँचे तो उनका वहाँ के लोगो ने विशेष आदर किया। वैशाली मे उनके शिष्यो की सख्या अधिक थी। स्वय राजा चेटक उनका शिष्य था। अग देश में जब भगवान् पहुचे तो वहाँ के राजा कुणिक आजातशत्रु के साथ सारी प्रजा भगवान् की पूजा करने के लिये उमड़ पड़ी। राजा कुणिक कौशाम्बी तक महावीर स्वामी को पहुचाने गये। कौशाम्बी नरेश ऐसे प्रतिबुद्ध हुये कि वह दिगम्बर मुनि हो गये।' मगध देश मे भी भगवान् महावीर का खूब विहार हुआ था और उनका अधिक समय राजगृह में व्यतीत हुआ था। 'सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार भगवान् के अनन्य भक्त थे और उन्होने धर्मप्रभावना के अनेक कार्य किये थे। श्रेणिक के अभयकुमार, वारिषेण आदि कई पुत्र दिगम्बर मुनि हो गये थे। दक्षिण भारत मे जब भगवान् का विहार हुआ तो हेमाँग देश के राजा जीवधर दिगम्बर मुनि हो गये थे। इस प्रकार भगवान् का जहाँ–जहाँ विहार हुआ वहाँ–वहाँ दिगम्बर धर्म का प्रचार हो गया।' शतानीक, उदयन आदि राजा, अभय, नंदिषेण आदि राजकुमार शालिभद्र, धन्यकुमार, प्रीतकर आदि धनकुबेर, इन्द्रभूति, गौतम आदि ब्राह्मण विद्वान, विद्युच्चर आदि सदृश पतितात्माये– अरे न जाने कौन–कौन भगवान् महावीर की शरण में आकर मुनि हो गये।[४]

---

१. दीघनिकाय। (P.T.S.) भा १, पृ.४८–४९।
२ हरिवंश पुराण (कलकता), पृ १८।
३. भमवु ५४–८० व ठाणा, पृ ८१३।
४. भमवु., पृष्ठ ९५–९६।

(सचमुच अनेक धर्म-पिपासु भगवान् के निकट आकर धर्मामृत पान करते थे। यहाँ तक कि स्वयं महात्मा गौतमबुद्ध और उनके मत पर भगवान् के उपदेश का प्रभाव पड़ा था।) (बौद्ध भिक्षुओं ने भी नग्नता धारण करने का आग्रह महात्मा बुद्ध से किया था।[1] इस पर यद्यपि महात्मा बुद्ध ने नग्न वेष को बुरा नहीं बतलाया, किन्तु उसमें कुछ ज्यादा शिष्य पाने का लाभ न देखकर उसे उन्होंने अस्वीकार कर दिया।)[2] किन्तु तो भी एक समय नेपाल के तांत्रिक बौद्धों में नग्न साधुओं का अस्तित्व हो गया था।[3] सच बात तो यह है कि नग्न वेष को साधु पद के भूषण रूप में सब ही को स्वीकार करना पडता है। उसका विरोध करना प्रकृति को कोसना है। उस पर महात्मा बुद्ध के जमाने मे तो उसका विशेष प्रचार था। अभी भगवान् महावीर ने धर्मोपदेश देना प्रारम्भ नही किया था कि प्राचीन जैन और आजीविक आदि साधु नंगे घूमकर उसका प्रचार कर रहे थे।[4]

देखिये बौद्ध ग्रथो के आधार मे इस विषय मे डॉ. स्टीवेन्सन लिखते हैं[5] -

"(एक तीर्थक नग्न हो गया) लोग उसके लिये बहुत से वस्त्र लाये, किन्तु उनको उसने स्वीकार नही किया। उसने यही सोचा कि 'यदि मैं वस्त्र स्वीकार करता हूँ तो ससार मे मेरी अधिक प्रतिष्ठा नही होगी।' वह कहने लगा कि लज्जा ढकने के लिए ही वस्त्रधारण किया जाता है और लज्जा ही पाप का कारण है, हम अर्हत हैं, इसलिए विषय वासना मे अलिप्त होने के कारण हमें लज्जा की कुछ भी परवाह नही।' इसका यह कथन सुनकर बड़ी प्रसन्नता से वहाँ इसके पाँच सौ शिष्य बन गए, बल्कि जम्बूद्वीप मे इसी को लोग सच्चा बुद्ध कहने लगे।"

यह उल्लेख सभवत मक्खलि गोशाल अथवा पूर्ण काश्यप के सम्बन्ध में है। ये दोनो साधु भगवान् पार्श्वनाथ की शिष्य परम्परा के मुनि थे।[6] मक्खलि गोशाल भगवान् महावीर से रुष्ट होकर अलग धर्म प्रचार करने लगा था और वह "आजीविक" सम्प्रदाय का नेता बन गया था। इस सम्प्रदाय का निकास प्राचीन जैन धर्म से हुआ था[7] और इसके साधु भी नग्न रहते थे।[8] पूरण-काश्यप गोशाल का साथी और वह भी दिगम्बर रहा था। सचमुच दिगम्बर जैन धर्म पहले से ही चला आ रहा था, जिसका प्रभाव इन लोगों पर पड़ा था।

(उस पर भगवान् महावीर के अवतीर्ण होते ही दिगम्बरत्व का प्रचार और भी बढ़ गया। यहाँ तक कि दूसरे सम्प्रदायों के लोग भी नग्न वेष धारण करने को [illegible] हो गये, जैसा कि ऊपर प्रकट किया गया है।)

(बौद्धशास्त्रो मे निर्ग्रंथ (दिगम्बर) [illegible] महावीर के [illegible] किया मिलता है। 'मज्झिम निकाय' के 'अभय राजकुमार सुत्त' [illegible]

---

1. [illegible] पृ १०७-११०।
2. 'महावग्ग (८-२८-१)' से है कि [illegible] बौद्ध [illegible] ने महात्मा बुद्ध से [illegible] कि भगवान् ने सबसे मुख्य [illegible] [illegible] स्त्रियाँ और [illegible]

राजगृह मे एक समय रहे थे।[९] 'उपालीसुत' से भगवान महावीर का नालन्द में विहार करना स्पष्ट है। उस समय उनके साथ एक बड़ी सख्या मे निर्गुण साधु थे।[१०]

को उत्पन्न करने में कारणभूत है- इससे पाप मिटता, कषाय दबते, दया भाव बढता तथा विनय और उत्साह आता है। प्रभो! यह अच्छा हो, यदि आप भी नग्न रहने की आज्ञा दें।" एक श्रमण के लिये यह अयोग्य है। इसलिये इसका पालन नही करना चाहिये। हे मूर्ख! तिव्थियों की तरह तू भी नग्न कैसे होगा? हे मूर्ख, इससे नये लोग भी दीक्षित न होगे।"

३. नेपाल मे गूढ और तात्रिक नाम की एक बौद्ध धर्म की शाखा है। मि हाग्सन ने लिखा है कि इस शाखा में नग्न यति रहा करते हैं।' —जैसि भा , १।२–३, पृ २५

४ जेम्स एल्वी प्रो जैकोबी तथा डा बुल्हर इस ही बात का समर्थन करते हैं कि दिगम्बरत्व महात्मा बुद्ध के पहले से प्रचलित था और आजीविक आदि तीर्थकों पर जैन धर्म का प्रभाव पडा था, यथा–

"In James d' Alwis' paper (Ind Anti VIII) on the Six Tirthakas the "Digambaras" appear to have been regarded as an old order of ascetics and all of these heretical teachers betray the influence of Jainism in their doctrines" —IA, IX, 161

Prof Jacobi remarks "The preceding four Tirthaks (Makkhali Goshal etc.) appear all to have adopted some or other doctrines or practices, which makes part of the Jaina system, probably from the Jains themselves It appears from the preceding remarks that Jaina ideas and practices must have been current at the time of Mahavira and independently of him This combined with other arguments, leads us to the existence long before Mahavira" —IA , IX, 162

Prof T W Rhys Davids notes in the "Vinaya Texts" that "the sect now called Jains are divided into two classes Digambara & Swetambara, the later of which it naked They are known to be the successors of the school called Niganthas in the Pali Pitakas" —SBE, XIII 41

Dr Buhler writes, "From Buddhist accounts in their canonical works as well as in other books, it may be seen that this rival (Mahavira) was a dangerous and influential one and that even in Buddha's time his teaching had spread, considerably. Also they say in their description of other rivals of Buddha that these in order to gain esteem, copied the Nirganthas and went unclothed or that they were looked upon by the people as Nirgrantha holy ones, because they happened to lost their clothes" —AISJ, p 36

५ जैसिभा, १ ।२–३ । २४ "The people bought clothes in an abundance for him, but he (kassapa) refused them as he thought that if he put them on, he would not be treated with the same respect Kassapa said, "Clothes are for the covering of shame and the shame is the effect of sin I am an Arahat, As I am free from evil desires, I know no shame" etc –BS pp 74-75

६ भमवु , पृ १७–२१ ।

७ वीर, वर्ष ३, पृ ३१२ व भमवु १७–२१ ।

८ 'आजीविको ति नग्न–समणको।' पपञ्च–सूदनी १ । २०९, IHQ, III, 24

९ मज्झिम (PTS) भा १, पृ ३९२ व भमवु , पृ १९१।

१० मज्झिम १।३७१ व 'The M N tells us that once Nigantha Nathaputta was at Nalanda with a big retinue of the Niganthas" — AIT p 147

सामगामसुत्त से यह प्रकट है कि भगवान ने पावा से मोक्ष प्राप्त की थी।[१] दीघनिकाय का "पासादिक सुत्त" भी इसी बात का समर्थन करता है।[२] "सयुक्तनिकाय" से भगवान महावीर का सघसहित "मच्छिकाखण्ड" में विहार करना स्पष्ट है।[३] ब्रह्मजालसुत्त मे राजगृह के राजा अजातशत्रु को भगवान महावीर स्वामी के दर्शन के लिये लिखा गया है।[४] "विनयपिटक" के महावग्ग ग्रथ से भगवान महावीर का वैशाली में धर्म प्रचार करना प्रमाणित है।[५] एक "जातक" में भगवान महावीर को "अचेलक नातपुत्त" कहा गया है।[६] "महावस्तु" से प्रकट है कि अवन्ती के राजपुरोहित का पुत्र नालक बनारस आया था। वहाँ उसने निर्ग्रंथ नातपुत्त (महावीर को)धर्मप्रचार करते पाया।[७]

दीघनिकाय से स्पष्ट है कि कौशल के राजा पसेनदी ने निर्ग्रंथ नातपुत्त (महावीर) को नमस्कार किया था।[८] उसकी रानी मल्लिका ने निर्ग्रंथो के उपयोग के लिये एक भवन बनवाया था।[९] सारांशत· बौद्ध शास्त्र श्री भगवान महावीर के दिगन्तव्यापी और सफल विहार की साक्षी देते हैं।

भगवान के विहार और धर्म प्रचार से जैन धर्म का विशेष उद्योत हुआ था। जैन शास्त्र कहते हैं कि उनके सघ में चौदह हजार दिगम्बर मुनि थे। जिनमे ९९०० सधारण मुनि, ३०० अगपूर्वधारी मुनि, १३०० अवधिज्ञानधारी मुनि, ९०० ऋद्धिविक्रिया युक्त, ५०० चार ज्ञान के धारी, ७०० केवलज्ञानी और ९०० अनुत्तरवादी थे।(महावीर सघ के ये दिगम्बर मुनि दस गणो मे विभक्त थे। और ग्यारह गणधर उनकी देख रेख करते थे)[१०] इन गणधरो का सक्षिप्त वर्णन निम्न प्रकार है –

(१) इन्द्रभूति गौतम,(२) वायुभूति,(३) अग्निभूति, ये तीनो गणधर मगध देश के गौर्वर ग्राम के निवासी वसुभूति (शाडिल्य) ब्राह्मण की स्त्री पृथ्वी(स्थिण्डिला) और केसरी के गर्भ से जन्मे थे। गृहस्थाश्रम त्यागने के बाद ये क्रम से गौतम, गार्ग्य और भार्गव नाम से प्रसिद्ध हुए थे। जैन होने के पहले ये तीनो वेद धर्मपरायण ब्राह्मण विद्वान थे। भगवान महावीर के निकट इन तीनो ने अपने कई सौ

---

१ मज्जिम १।९३– भमवु २०२। २ दोघ. III ११७–११८–भमवु, पृ २१४।
३ सयुक्त ४।२८७ भमवु, पृ 216।
४ भमबु पृ. २२२।
५. महावग्ग ६।३१–११–भमबु. पृ. २३१–२३६।
६ जातक २।१८२।
७ ASM ,p 159
८ दोघ १।७८–७९–IHQ I, 153
९. LWB,p 109
१०. भम ११७।

शिष्यों सहित जैन धर्म की दीक्षा ग्रहण की थी और ये दिगम्बर मुनि होकर मुनियों के नेता हुए थे। देश देशान्तर में विहार करके इन्होंने खूब धर्मप्रभावना की थी।[१]

चौथे गणधर व्यक्त कोल्लग सन्निवेश निवासी धनमित्र ब्राह्मण की वारुणी[२] नामक पत्नी की कोख से जन्मे थे। दिगम्बर मुनि होकर यह भी गणनायक हुये थे।

पाँचवें सुधर्म नामक गणधर भी कोल्लग सन्निवेश के निवासी धम्मिल ब्राह्मण के सुपुत्र थे। इनकी माता का नाम भद्दिला था। भगवान महावीर के उपरान्त इनके द्वारा जैन धर्म का विशेष प्रचार हुआ था।[३]

छटे माण्डिक नामक गणधर मौर्याख्य देश निवासी धनदेव ब्राह्मण की विजया देवी स्त्री के गर्भ से जन्मे थे। दिगम्बर मुनि होकर यह वीर संघ में सम्मिलित हो गये थे और देश-विदेश में धर्मप्रचार किया था।

सातवें गणधर मौर्यपुत्र भी मौर्याख्य देश के निवासी मौर्यक ब्राह्मण के पुत्र थे। इन्होंने भी भगवान महावीर के निकट दिगम्बरीय दीक्षा ग्रहण करके सर्वत्र धर्म प्रचार किया था।

आठवें गणधर अकम्पन थे, जो मिथिलापुरी निवासी देव नामक ब्राह्मण की जयन्ती नामक स्त्री के उदर से जन्मे थे। इन्होंने भी खूब धर्मप्रचार किया था।

नवें अचल नामक गणधर कोशलापुरी के वसुविप्र के सुपुत्र थे। इनकी माँ का नाम नन्दा था। इन्होंने भी दिगम्बर मुनि हो सर्वत्र विहार किया था।

दसवें गणधर मैत्रेय थे। वह वत्सदेशस्थ तुंगिकाख्य नगरी के निवासी दत्त ब्राह्मण की स्त्री करुणा के गर्भ से जन्मे थे। इन्होंने भी अपने गण के साधुओं सहित धर्म प्रचार किया था।

ग्यारहवें गणधर प्रभास राजगृह निवासी बल नामक ब्राह्मण की पत्नी भद्रा की कुक्षि से जन्मे थे और दिगम्बर मुनि तथा गणनायक होकर सर्वत्र धर्म का उद्योत करते हुए विचरे थे।[४]

(इन गणधरों की अध्यक्षता में रहे उपर्युक्त चौदह हजार दिगम्बर मुनियों ने तत्कालीन भारत का महान उपकार किया था। विद्या, धर्मज्ञान और सदाचार उनके सदुद्योग से भारत में खूब फैले थे।) जैन और बौद्ध शास्त्र यही प्रकट करते हैं-

"The Buddhist and Jaina texts tall us that the intincrant teachers of the time wandered about in the country. engaging themselves wherever they stoppd in serious discussion[*] on matters relating to religion. philosophy ethics morals and polity."

---

१. वृजैश. पृ. ६०-६१।
२. वृजैश. पृ. ८।
३. वृजैश. पृ. ८।
४. वृजैश पृ. ८।

भावार्थ – बौद्ध और जैन शास्त्रो से ज्ञात होता है कि तत्कालीन धर्म गुरु देश मे सर्वत्र विचारते थे। और जहाँ वे ठहरते थे वहाँ धर्म, सिद्धान्त, आचार, नीति और राष्ट्रवार्ता विषयक गम्भीर चर्चा करते थे। सचमुच उनके द्वारा जनता का महान हित हुआ था।

बौद्ध शास्त्रो में भी भगवान महावीर के सघ के किन्ही दिगम्बर मुनियो का वर्णन मिलता है। यद्यपि जैन शास्त्रो मे उनका पता लगा लेना सुगम नही है। जो हो, उनसे स्पष्ट है कि भगवान महावीर और उनके दिगम्बर शिष्य देश मे निर्बाध विचरते और लोक कल्याण करते थे।

सम्राट श्रेणिक बिम्बसार के पुत्र राजकुमार अभय दिगम्बर मुनि हो गये थे, यह बात बौद्धशास्त्र भी प्रकट करते हैं।[१] उन राजकुमार ने ईरान देश के वासियो में भी धर्मप्रचार किया था। फलतः उस देश का राजकुमार आर्द्रक निर्ग्रंथ साधु हो गया था।[२]

बौद्ध शास्त्र वैशाली के दिगम्बर मुनियो मे सुणक्खत्त, कलारमत्थुक और पाटिकपुत्र का नामोल्लेख करते है। सुणक्खत्त एक लिच्छवि राजपुत्र था और वह बौद्ध धर्म को छोड़कर निर्ग्रंथ मत का अनुयायी हुआ था।[३]

वैशाली के सन्निकट एक कन्डरमसुक नामक दिगम्बर मुनि के आवास का भी उल्लेख बौद्ध शास्त्रो मे मिलता हैं। उन्होने यावत् जीवन नग्न रहने और नियमित परिधि मे विहार करने की प्रतिज्ञा ली थी।[४]

श्रावस्ती के कुल पुत्र (Councillor's son) अर्जुन भी दिगम्बर मुनि होकर सर्वत्र विचरे थे।[५]

यह/दिगम्बर मुनि और उनके साथ जैन साध्वियाँ भी सर्वत्र धर्मोपदेश देकर मुमुक्षुओ को जैन धर्म मे दीक्षित करते थे।[६] इस उद्देश्य को लेकर वे नगरो के चौराहो पर जाकर धर्मोपदेश देते और वादभेरी बजाते थे। बौद्ध शास्त्र कहते हैं कि "उस समय तीर्थक साधु प्रत्येक पक्ष की अष्टमी, चतुर्दशी और पूर्णमासी को एकत्र होते थे और धर्मोपदेश करते थे। लोग उसे सुनकर प्रसन्न होते और उनके अनुयायी बन जाते थे"[७]

---

१ PB, p 30 व भमबु, पृ २६६।

२ ADJB, I, p 92

३ भमबु, पृ २५५।

४ "अचेलो कन्डरमसुको वेसालियम् पटिवसति लाभग्ग–प्पतोच एव पसग्ग, प्पतोच वज्जिगा में। तस्स सत्तवत्त–पदानि समत्तानि समादिन्नानि होन्ति–'यावजीवम् अचेलको अस्स्म, नटत्थम् परिदहेय्यम् यावजीवम् ब्रह्मचारी अस्स्म् न मेथनुम पटिसेवेय्यम् इत्यादि।" – दीघनिकाय (PTS) भा ३, पृ ९–१० व भमबु, पृ २१३

५ PB, p 83 व भमबु, पृ २६७।

६ बौद्धों के थेर–थेरी गाथाओं से यह प्रकट है। भमबु, पृ २५६–२६८।

७ महावग्ग २।१।१ व भमबु, पृ २४०।

इन साधुओ को जहाँ भी अवसर मिलता था वहाँ अपने धर्म की श्रेष्ठता को प्रमाणित करके अवशेष धर्मों को गौण प्रकट करते थे।

भगवान महावीर और महात्मा गौतम बुद्ध दोनो ने ही अहिसा धर्म का उपदेश दिया था, किन्तु भगवान् महावीर की अहिसा में मन, वचन, काय पूर्वक जीवहत्या से विलग रहने का विधान था–भोजन या मौज शौक के लिये भी उसमे जीवो का प्राण व्यपरोपण नही किया जा सकता था। इसके विपरीत महात्मा बुद्ध की अहिसा मे बौद्ध भिक्षुओ को मॉस और मत्स्य भोजन ग्रहण करने की खुली आज्ञा थी। एक बार नही अनेक बार स्वय महातमा बुद्ध ने मॉस–भक्षण किया था।[१] ऐसे ही अवसरो पर दिगम्बर मुनि, बौद्ध भिक्षुओ को आड़े हाथो लेते थे। एक मरतवा जब भगवान महावीर ने बुद्ध के इस हिंसक कर्म का निषेध किया, तो बुद्ध ने कहा 'भिक्षुओ, यह पहला मौका नही है, बल्कि नातपुत्त (महावीर) इससे पहले भी कइ मरतवा खास मेरे लिये पके हुए मॉस को मेरे भक्षण करने पर आक्षेप कर चुके हैं।"[२] एक दूसरी वार जव वैशाली मे महात्मा बुद्ध ने सेनापति सिंह के घर पर मॉसाहार किया तो बौद्ध शास्त्र कहता है कि 'निर्ग्रथ एक बड़ी सख्या मे वैशाली में सड़क–सडक, चौराहे–चौराहे पर यह शोर मचाते कहते फिरे कि आज सेनापति सिंह ने एक बैल का वध किया है और उसका आहार श्रमण गौतम के लिये बनाया है। श्रमण गौतम जानवूझकर कि यह बैल मेरे आहार के निमित्त मारा गया है पशु का मॉस खाता है, इसलिए वही उस पशु के मारने के लिए बधक है।"[३] इन उल्लेखो से उस समय दिगम्बर मुनियो का निर्वाध रूप में जनता के मध्य विचरने और धर्मोपदेश देने का स्पष्टीकरण होता है।

बौद्ध गृहस्थो ने कई मरतवा दिगम्बर मुनियो को अपने घर के अन्तःपुर में बुलाकर परीक्षा की थी।[४] सारांशतः दिगम्बर मुनि उस समय हाट–बाजार, घर–महल, रक–राव सब ठौर सब ही को धर्मोपदेश देते हुए विहार करते थे। अव आगे के पृष्ठो में भगवान् महावीर के उपरान्त दिगम्बर मुनियो के अस्तित्व और विहार का विवेचन कर देना उचित है। ■

---

१ भमबु , पृ १७० ।

२ Cowell Jatakas II, 182–भमबु , पृ २४६ ।

३. "At the time a great number of the Nigathas(running) through Vaisali, from road to road, cross-way to cross-way, with outstretched arms cried "Today siha, the General has killed a great ox and has made a meal for the Sarmana Gotama, the Sarmana Gotama knowingly eats this meat of an animal killed for this very purpose, & has that become virtually the author of that diet" – Vinaya Texts,SBE ,Vol.XVII, p 116& HG , p 85

४ H.G., pp. 88–95 व भमबु. ए, पृ २४९–२५६ ।

[११] नन्द साम्राज्य में दिगम्बर मुनि

"King Nanda had taken away 'image' known as "The Jaina of Kalinga' .Carrying away idols of worship as a mark of trophy and also showing respect to the particular idol is known in later history The datum (1) proves that Nanda was a Jaina and (2) that Jainism was introduced in Orissa very early "

—K.P.Jayaswal[1]

शिशुनाग वश में कुणिक अजातशत्रु के उपरान्त कोई पराक्रमी राजा नही हुआ और मगध साम्राज्य की बागडोर नन्द वश के राजाओ के हाथ में आ गई। इस वश में 'वर्द्धन'(Increaser) उपाधिधारी राजा नन्द विशेष प्रख्यात और प्रतापी था। उसने दक्षिण-पूर्व और पश्चिमीय समुद्रतटवर्ती देश जीत लिये थे तथा उत्तर मे हिमालय प्रदेश और कश्मीर एव अवन्ति और कलिग देश को भी उसने अपने आधीन कर लिया था।[२] कलिग-विजय मे वह वहाँ से 'कलिगजिन' नामक एक प्राचीन मूर्ति ले आया था और उसे विनय के साथ उसने अपनी राजधानी पाटलीपुत्र में स्थापित किया था। उसके इस कार्य से नन्दवर्द्धन का जैन धर्मावलम्बी होना स्पष्ट है। 'मुद्राराक्षश नाटक' और जैन साहित्य से इस वश के राजाओ का जैनी होना सिद्ध हैं। उनके मत्री भी जैन थे। अन्तिम नन्द का मन्त्री राक्षस नामक नीति निपुण पुरुष था। मुद्राराक्षस नाटक मे उससे जीवसिद्धि नामक क्षपणक अर्थात् दिगम्वर जैन मुनि के प्रति विनय प्रकट करते दर्शाया गया है तथा यह जीवसिद्धि सारे देश मे-हाट-बाजार और अन्त पुर-सब ही ठौर बेरोक-टोक विहार करता था, यह बात भी उक्त नाटक से स्पष्ट है। ऐसा होना है भी स्वाभाविक, क्योकि जब नन्द वश के राजा जैनी थे तो उनके साम्राज्य मे दिगम्बर जैन मुनि की प्रतिष्ठा होना लाज़मी था। जनश्रुति से यह भी प्रकट है कि अन्तिम नन्द राजा ने 'पञ्चपहाड़ी' नामक पॉच स्तूप

---

१ JBORS , VOL XIVp 245.

२ Ibid, Vol 78–79.

Chanakya says–

"There is a fellow of my studies, deep
The Brahman Indusarman, him I sent,
When just I vowed the death of Nanda, hithere;
And here repairing as a Buddha 1/4 {ki kd 1/2} mindicant "

* Having the marks of a Kasapanaka. the Individual is a Jaina .Raksasa repose in him implict confidence –HDW, p 10

पटना मे बनवाये थे।[१] पञ्चपहाड़ी' (राजगृह) जैनो का प्रसिद्ध तीर्थ है। नन्द ने उसी के अनुरुप पॉच स्तूप पटना मे बनावाये प्रतीत होते है। यह कार्य भी उनकी मुनि–भक्ति का परिचायक है।

जैन कथा ग्रन्थो से विदित है कि एक नन्द राजा स्वय दिगम्बर जैन मुनि हो गये थे तथा उनके मत्री शकटाल भी जैनी थे।[२] शकटाल के पुत्र स्थूलभद्र भी दिगम्बर मुनि हो गये थे।[३] सारांश यह कि नन्द–साम्राज्य के प्रसिद्ध पुरुषों ने स्वय दिगम्बर मुनि होकर तत्कालीन भारत का कल्याण किया था और नन्द राजा जैनो के सरक्षक थे।[४]

शिशुनाग वश के अन्त और नन्द राज्य के आरम्भ काल मे जम्बू स्वामी अन्तिम केवली सर्वज्ञ ने नग्न वेष मे सारे भारत का भ्रमण किया था। कहते हैं कि बगाल के कोटिकपुर नामक स्थान पर उन्होने सर्वज्ञता प्राप्त की थी[५]। उनका विहार बगाल के प्रसिद्ध नगर पु ड्रवर्द्धन, ताम्रलिप्त आदि मे हुआ था। एक बार वह मथुरा भी पहुँचे थे। अन्त मे जब वह राजगृह विपुलाचल से मुक्त हो गये, तो मथुरा मे उनकी स्मृति मे एक स्तूप बनाया गया था।[६]

मथुरा जैनो का प्राचीन केन्द्र था। वहॉ भगवान् पार्श्वनाथ जी के समय का एक स्तूप मौजूद था।[७] इसके अतिरिक्त नन्दकाल मे वहाँ पॉच सौ एक स्तूप और बनाये

---

१. "Sir G Grierson informs me that the Nandas were reputed to be bitter enemies of the Brahmans the Nandas were Jainsa and therefore hatefuls to the Brahamans. The supposition that the last Nanda was either a Jaina or Buddhist is strengthened by the face that one from of the local tradition attributed to him the erection of the Panch Pahari at Patna. a group of ancient stupas, which be either Jaina of Buddhist" –EHI ,p 44

उनका जैन होना ठीक है, क्योकि नन्दवर्द्धन के जैन होने में सदेह नही है और "मुद्राराक्षस" नन्दमत्री आदि को जैन प्रकट करता है।

२ हरियेण कथा कोप तथा आराधना कथा कोष देखो।

३ सातवी गुजराती साहित्य परिषद् रिपोर्ट (पृष्ठ ४१) तथा "भद्रबाहु चरित्र" (पृष्ठ ४१) में स्थूलभद्रादि को दिगम्बर मुनि लिखा है। (रामल्यस्थूल भद्राख्य स्थूलाचार्यादियोगिन ।)

४ "Nanda were Jains" CHI, Vol I ,p. 164

The nine kings of the Nanda dynasty of Magadha were patrons of the Order (Sangha of Mahavira)" –HARI, p 59

५ "In Kotikapur Jambu attained emancipation (Omniscience)" –वीर, वर्ष ३ पृ ३७

६ अनेकान्त, वर्ष १, पृ १४१।

"मगधदिमहादेश मथुरादिपुरीरस्तथा। कुर्वन् धर्मोपदेश स केवलज्ञानलोचन ।।११८।।१२।।

वर्पाष्टादशपर्यन्त स्थितस्तत्र जिनधिप ततो जगाम निर्वाण केवली विपुलाचलात् ।।१।।

–जम्बूस्वामी चरित्

७ JOAM,13

गये थे, क्योकि वहाँ से इतने ही दिगम्बर मुनियो ने समाधिमरण किया था। ये सब मुनिश्री जम्बूस्वामी के शिष्य थे। जिस समय जम्बूस्वामी दिगम्बर मुनि हुये तो उस समय विद्युच्चर नामक एक नामी डाकू भी अपने पाँच सौ साथियो सहित दिगम्बर मुनि हो गया था। एक बार यह मुनि सघ देश-विदेश में विहार करता हुआ शाम को मथुरा पहुचा। वहाँ महाउद्यान मे वह ठहर गया। तदोपरान्त रात को उन मुनियो पर वहाँ महाउपसर्ग हुआ और उसके परिणामस्वरुप मुनियों ने साम्य भाव से प्राण त्याग दिये। इस महत्त्वपूर्ण घटना की स्मृति में ही वहाँ पाँच सौ एक स्तूप बना दिये गये थे।[१]

इस प्रकार न जाने कितने मुनि पु गव उस समय भारत मे विहार करके लोगो का हितसाधन करते थे, उनका पता लगा लेना कठिन है। नन्द-साम्राज्य मे उनको पूरा-पूरा सरक्षण प्राप्त था।

---

[१२] मौर्य सम्राट और दिगम्बर मुनि

"भद्रबाहुवच श्रुत्वा चन्द्रगुप्तो नरेश्वरः।
अस्यैवयोगिन पार्श्वे दधौ जैनेश्वर तप· ।।३८।।
चन्द्रगुप्तमुनि· शीघ्र प्रथमो दशपूर्विणाम।
सर्वसघाधिपोजातो विशाखाचार्यसज्ञक· ।।३९।।
अनेन सह सघोपि समस्तो गुरुवाक्यत ।
दक्षिणापथदेशस्थ पुन्नाट विषय ययौ ।।४०।।"

—हरिषेण कथाकोष[२]

'मउउधरेसु' चरिमो चिणदिक्ख धरदि चन्दगुप्तो य।

—त्रिलोक प्रज्ञप्ति[३]

नन्द राजाओ के पश्चात् मगध का राजछत्र चन्द्रगुप्त नाम के एक क्षत्रिय राजपुत्र के हाथ लगा था। उसने अपने भुजविक्रम से प्रायः सारे भारत पर अधिकार कर

---

१ अनेकान्त, वर्ष १, पृ १३९-१४१।
'अथ विद्युच्चरो नाम्ना पर्यटन्निह सन्मुनि ।
एकादशागविद्यायामधीतो विदधत्तप ।
अथान्यद्यु सनि सगो मुनि पचशतैर्वृत ।।
मथुरायाँ महोद्यान-प्रदेशेष्वगमन्मुदा।
तदागच्छस वैलक्ष्यं भानुरस्ताचल श्रित· ।।इत्यादि।।"
२ जैहि, भा १४, पृ २१७।
३ जैहि ए ,भा ३, पृ ५३१।

लिया था और "मौर्य्य", नामक राजवश की स्थापना की थी। जैन शास्त्र इस राजा को दिगम्बर मुनि श्रमणपति श्रुतकेवली भद्रबाहु का शिष्य प्रकट करते है।[१] यूनानी राजपूत मेगस्थनीज भी चन्द्रगुप्त को श्रमणभक्त प्रकट करता है।[२] सम्राट चन्द्रगुप्त ने अपने वृहत् साम्राज्य मे दिगम्बर मुनियो के विहार और धर्म प्रचार करने की सुविधा की थी। श्रमणपति भद्रबाहु के सघ की वह राजा बहुत विनय करता था। भद्रबाहु जी बगाल देश के कोटिकपुर नामक नगर के निवासी थे।[३] एक बार वहाँ श्रुतकेवली गोवर्द्धन स्वामी अन्य दिगम्बर मुनियो सहित आ निकले, भद्रबाहु उन्ही के निकट दीक्षित होकर दिगम्बर मुनि हो गये। गोवर्द्धन स्वामी ने सघ सहित गिरनारजी की यात्रा का उद्योग किया था।[४] इस उल्लेख से स्पष्ट है कि उनके समय मे दिगम्बर मुनियो को विहार करने की सुविधा प्राप्त थी। भद्रबाहु जी ने भी सघ सहित देश-देशान्तर मे विहार किया था और वह उज्जैनी पहुँचे थे। वही से उन्होने दक्षिण देश की ओर सघ सहित विहार किया था, क्योकि उन्हे मालूम हो गया था कि उत्तरापथ मे एक द्वादशवर्षीय विकराल दुष्काल पड़ने को है जिसमे मुनिचर्या का पालन दुष्कर होगा।[५] सम्राट चन्द्रगुप्त ने भी इसी समय अपने पुत्र को राज्य देकर भद्रबाहु स्वामी के निकट जिनदीक्षा धारण की थी और वह अन्य दिगम्बर मुनियो के साथ दक्षिण भारत को चले गये थे।[६] श्रवणवेलगोल का कटवप्र नामक पर्वत उन्ही के कारण "चन्द्रगिरि" नाम से प्रसिद्ध हो गया है, क्योकि उस पर्वत पर चन्द्गुप्त ने तपश्चरण किया था और वही उनका समाधि मरण हुआ था।[१]

---

१. 'चन्द्रावदातसत्कीर्तिश्चन्द्रवन्मोदकर्तृणाम्। चन्द्रगुप्तिनृर्पस्तत्ल्चकच्चारुगुणोदय· ।।७।।२।।

ज्ञानविज्ञानपारीणोजिनपूजापुरदर । चतुर्द्धा दान दक्षो य· प्रतापजित भास्कर ।।८।।" भद्र

"समासाद्य स सूरीशं (भद्राबाहु) परीत्य प्रश्रयान्वित । समभ्यर्च्य गुरो पादावन्गघसदकादिकै ।।२६।।" —भद्र

२ "That Chandragupt was a member of the Jaina community is taken by their writers as a matter of course and treated as a known fact which needed neither argument nor demonstration The docum,entary evidence to this effect is of comparatively early date, and apparently absolved from all suspicion The testimony of Megasthense would likewise seem toimply that Chandragupta submitted to the devotional teaching of the Sramanas as opposed to the doctrines of the Brahmanas (Strabo XV p 60)" JRA Vol IX pp 175-176

३ "तमालपत्रवत्तस्य देशोऽभूतपौण्ड्रवर्द्धन ।"—"तत्र कोट्टपुर रम्य द्योतते नराकखण्डवत।"

'भद्रबाहुरितिख्यातिं प्राप्तवाबन्धुवर्गत ।" इत्यादि" —भद्र , पृ.१०-२३

४ "चिकीर्पुर्नैमित्तीर्थेशयात्रा रैवतकाचले।" —भद्र , पृ १३

५. भद्र ,पृ २७-५१।

६ *Jaina tradition avers that Chandragupta Maurya was a Jaina, and that, when a gtreat twelve years" famine occureed, he abdicated accompanied Bhadrabahu, the last of the saints called Srutakvalins, to the South, lived as an ascetic at Sravanabelgola in Mysore and ultimately commited Suicide by Starvation at that place, where his name is still hellin remembrance In the second edition of this book I rejected that tradition and dismissed the tale as imaginary histroy But on reconsideration of the whole evidence and the objections urged against the credibility of the story I am now disposed to belive that the tradition probably is true in its main outline and that Chandragupta really abdicated and became a Jaina ascetic*" & Sir Vincient Smith EH I, p , 54

बिन्दुसार ने जैनियो के लिये क्या किया? यह ज्ञात नही है, किन्तु जब उसका पिता जैन था, तो उस पर जैन प्रभाव पडना अवश्यम्भावी है।[१] उस पर उसका पुत्र आशोक अपने प्रारम्भिक जीवन में जैन धर्मपरायण रहा था, बल्कि अन्त समय तक उसने जैन सिद्धान्तो का प्रचार किया, यह अन्यत्र सिद्ध किया जा चुका है।[३] इस दिशा मे बिन्दुसार का जैन धर्म प्रेमी होना उचित है। अशोक ने अपने एक स्तम्भ मे स्पष्टतः निर्ग्रंथ साधुओ की रक्षा का आदेश निकाला था।[४]

सम्राट् सम्प्रति पूर्णतः जैन धर्मपरायण थे। उन्होने जैन मुनियो के विहार और धर्म प्रचार की व्यवस्था न केवल भारत में ही की, बल्कि विदेशो मे भी उनका विहार कराकर जैन धर्म का प्रचार करा दिया।[५]

उस समय में दशपूर्व के धारक विशाख, प्रोष्ठिल, क्षत्रिय आदि दिगम्बर जैनाचार्यो के सरक्षण में रहा जैन सघ खूब फला-फुला था। जिस साम्राज्य के अधिष्ठाता ही स्वय जब दिगम्बर मुनि होकर धर्म प्रचार करने के लिये तुल गये तो भला कहिये जैन धर्म की विशेष उन्नति और दिगम्बर मुनियो की बाहुल्यता उस राज्य मे क्यो न होती। मौर्य्यो का नाम जैन साहित्य मे इसीलिए स्वर्णाक्षरो मे अकित है।

---

[१३] सिकन्दर महान् एवं दिगम्बर मुनि

Onesikritos says that he himself was sent to converse with these sages For Alexander heard that these men (Sramans) went about naked,

---

१ Narsimhachar's Sravanabelagola p-25-40
विको , भाग ७, पृ १५६-१५७ तथा जैशिस भूमिका, पृ ५४-७०

२ "We may conclude that Bindusara followed the faith (Jainism) of this of his father (Chandragupta) and that, in the same belief whatever it may prove to have been his childhood's lessons were first learnt by Ashoka" —E Thomas, JRAS , IX , 181

३ हमारा "सम्राट अशोक और जैन धर्म" नामक ट्रैक्ट देखो।

४ स्तम्भ लेख न ७।

"That founder of the Mauraya dynasty, Chandragupta, as well as his Brahmin Minister, Chanadya were also inclined towards Mahavira's doctrines and ever Ashoka is said to have been laid towards Buddhism by a previous study of Jain teaching" —E B ,Havell HARI , p 59

५. कुणालसूनुस्त्रिखण्डभरताधिप परमार्हतो अनार्य्यदेशेष्वपि प्रवर्तित श्रमणविहार· सम्प्रति महाराजोंसौभवत् —पाटलीपुत्र कल्पग्रन्थ, EHI ,pp 202-203

inused themselves to hardships and were held in highest honour; that when invited they did not go to other person

—Mc Crindle, Ancient India, p. 70

जिस समय अन्तिम नन्दराजा भारत मे राज्य कर रहे थे और चन्द्रगुप्त मौर्य अपने साम्राज्य की नीव डालने मे लगे हुये थे, उस समय भारत के पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त पर यूनान का प्रतापी वीर सिकन्दर अपना सिक्का जमा रहा था। जब वह तक्षशिला पहुंचा तो वहाँ उसने दिगम्बर मुनियों की बहुत प्रशसा सुनी। उसने चाहा कि वे साधुगण उसके सम्मुख लाये जायें, किन्तु ऐसा होना असंभव था, क्योंकि दिगम्बर मुनि किसी का शासन नहीं मानते और न किसी का निमत्रण स्वीकार करते हैं। उस पर सिकन्दर ने अपने एक दूत को, जिसका नाम अन्शाकृतस (Oneskritos) था, उनके पास भेजा। उसने देखा, तक्षशिला के पास उद्यान में बहुत से नगे मुनि तपस्या कर रहे है। उनमें से एक कल्याण नामक मुनि से उसकी बातचीत होती रही थी। मुनि कल्याण ने अन्शकृतस मे कहा था कि यदि तुम हमारे तप का रहस्य समझना चाहते हो तो हमारी तरह दिगम्बर मुनि हो जाओ।[1] अशकृतस के लिये ऐसा करना असभव था। आखिर उसने सिकन्दर से जाकर इन मुनियो के ज्ञान और चर्या की प्रशसनीय बातें कहीं। सिकन्दर उनसे बहुत प्रभावित हुआ और उसने चाहा कि इन ज्ञान-ध्यान तपोरक्त का प्रकाश मेरे देश मे भी पहुचे। उसकी इस शुभ कामना को मुनि कल्याण ने पूरा किया था। जब सिकन्दर ससैन्य यूनान को लौटा तो मुनि कल्याण उसके साथ हो लिये थे, किन्तु ईरान मे ही उनका देहावसान हो गया था।अपना अन्त समय जानकर उन्होंने जैन व्रत सल्लेखना का पालन किया था। नगे रहना, भूमि शोधकर चलना, हरितकाय का विराधन न करना, किसी का निमत्रण स्वीकार न करना इत्यादि जिन नियमो का पालन मुनि कल्याण और उनके साथी मुनिगण करते थे उनसे उनका दिगम्बर जैन मुनि होना सिद्ध है।[2] आधुनिक विद्वान भी यही प्रकट करते है।[3]

---

१. AI p 69."(Alexander) despatched Onesikritos to them (gymnosophists). who relates that he found at the distance of 20 stadia from the city (of Taxilla) 15 men standing in different postures, sitting or lying down naked, who did not move from these-positions till the evening, when they return to the city. The most difficult thing to endure was the heat of the sun etc."

"Calanus bidding him (Onesi.) to strip himself, if he desired to hear any of his doctrine' —Plutarch, A.I., p 71.

२. वीर, वर्ष ७, पृ. १७६ व ३४१।

३. Encyclopadia Britannica (11th ed.) Vol. XV.p. 128"....the term Digambara ... is referred to in the well-known Greeck phrase Gymnosophists, used already by Megasthenes, which applies very aptly to the Nirgranthas (Digambara Jainas).

मुनि कल्याण ज्योतिषशास्त्र में निष्णात थे। उन्होने बहुत सी भविष्यवाणियाँ की थी[१] और सिकन्दर की मृत्यु को भी उन्होने पहिले से ही घोषित कर दिया था। इन भारतीय सन्तो की शिक्षा का प्रभाव यूनानियो पर विशेष पड़ा था, यहाँ तक कि तत्कालीन डायजिनेस (Diogenes) नामक यूनानी तत्त्ववेत्ता ने दिगम्बर वेष धारण किया था[२] और यूनानियो ने नगी मूर्तियाँ भी बनवाई थी।[३]

यूनानी लेखको ने इन दिगम्बर मुनियो के विषय में खूब लिखा है। वे बताते है कि यह साधु नगे रहते थे। सर्दी-गर्मी की परीषह सहन करते थे। जनता मे इनकी विशेष मांन्यता थी। हाट-बाजार मे जाकर यह धर्मोपदेश देते थे। बड़े-बड़े शिष्ट घरो के अत-पुरो मे भी ये जाते थे। राजागण उनकी विनय करते और सम्मति लेते थे। ज्योतिष के अनुसार ये लोगो को भविष्य का फलाफल भी बताते थे। भोजन का निमन्त्रण ये स्वीकार नही करते थे। विधिपूर्वक नगर मे कोई सभ्य उन्हे भोजन दान देता तो उसे ये ग्रहण कर लेते थे।[४] यूनानी लेखको के इस वर्णन से उस समय के दिगम्बर जैन मुनियो का महत्त्व स्पष्ट हो जाता है। उनके द्वारा भारत का नाम विदेशों मे भी चमका था। भला उन जैसे मुनीश्वरो को पाकर कौन न अपने को धन्य मानेगा।

---

१ "A calendar fragment discovered at Milet & belonging to the 2nd century B C, gives several weather forecasts on the authority of Indian Calanus" —QJMS ,XVIII 297

२ NJ In tro ,p 2

३ Pliny XXXIV 9–JRAS Vol IX p 232

४ Aristoboulos says "Their (Gymnosophists) spare time is spent in the market-place in respect their being public councillors they receive great homage etc"

Cicero (Tusc Dispute V , 27) — "What foreign land is more vast & wild than India? Yet in that nation first those who are reckoned sages spend their life time naked & endure the snows of Caucasus & the rage of winter without grieving & when they have committed their body to the flames not a groan escapes them when they are burning.

Clemens Alexandrinus—"Those Indians who are called Semnoi (श्रवण) go naked all their lives These practise truth, make predictions about futurity and worship a king of pyrnid beneath which they think the bones of some divinity lie buried (Stupas)" —A I ,p 183

"St Jerome—'Indian Gymnosophists' The king on coming to them worships them & the peace of his dominions depends according to his judgement on their prayers" —A I p 184

"Even wealthy house is open to them to the apartments of the women On entering they share the repast" —A I ,p 71

"When they repair to the city they disperse themselves to the market place If they happen to meet any who carries figs or bunches of grapes they take what he bestows without giving anything in return

[१४]

सुंग और आन्ध्र राज्यों में दिगम्बर मुनि

"The Andhra or Satvahana rule is characterised by almost the same social features as the farther south, but in point of religion they seem to have been great patrons of the Jainas & Buddhists."

—S.K. Aiyangar's Ancient India, p 34

अन्तिम मौर्य सम्राट वृहद्रथ का उसके सेनापति पुष्यमित्र सुग ने वध कर दिया था। इस प्रकार मौर्य साम्राज्य का अन्त करके पुष्यमित्र ने 'सुग राजवश' की स्थापना की थी। नन्द और मौर्य साम्राज्य में जहाँ जैन और बौद्ध धर्म उन्नति को प्राप्त हुये थे. वहाँ सुग वश के राजत्व काल मे ब्राह्मण धर्म उन्नत अवस्था को प्राप्त हुआ था किन्तु इसका अर्थ यह नही है कि ब्राह्मणेत्तर जैन आदि धर्मों पर इस समय कोई सकट आया हो। हम देखते हैं कि स्वय पुष्यमित्र के राजप्रासाद के सन्निकट नन्दराज द्वारा लाई गई, कलिग जिन की मूर्ति' सुरक्षित रही थी। इस अवस्था में यह नही कहा जा सकता है कि इस समय दिगम्बर जैन धर्म को विकट बाधा सहनी पड़ी थी।

उस पर सुग राजागण अधिक समय तक शासनाधिकारी भी न रहे। भारत के पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त और पंजाब की ओर तो यवन राजाओ ने अधिकार जमाना प्रारम्भ कर दिया और मगध तथा मध्य भारत पर जैन सम्राट खारवेल तथा आन्ध्र राजाओ के आक्रमण होने लगे। खारवेल की मगध विजय मे आन्ध्रवशी राजाओ ने उनका साथ दिया था।[१] मगध पर आन्ध्र राजाओ का अधिकार हो गया। इन राजाओ के उद्योग से जैन धर्म फिर एक बार चमक उठा।

आन्ध्रवशी राजाओ मे हाल, पुलुमायि आदि जैन धर्म प्रेमी कहे गये हैं।[२] इन्होंने दिगम्बर जैन मुनियो को विहार और धर्म प्रचार करने की सुविधा प्रदान की प्रतीत होती है। उज्जैनी के प्रसिद्ध राजा विक्रमादित्य भी इसी वश से सम्बन्धित बताये जाते हैं। वह शैव थे, परन्तु उपरान्त एक दिगम्बर जैनाचार्य के उपदेश से जैन हो गये थे।[३]

---

१ "In the decadance that followed the death of Ashoka, the Andhras seem to have had their own share and they may possibly have helped Kharvela of Kalinga, when he invaded Magadha in the Middle of the 2nd century B C. when the kanvar were overthrown the Andhras extend their power northwards & occupy Magadha" SAI pp 15–16

२ JBORS I 76–118 & CHEI p.532

३ Allahabad University Studies Pt II pp 113–147

ईस्वी पूर्व प्रथम शताब्दि में एक भारतीय राजा का सबध रोम के बादशाह ऑगस्टस से था। उन्होने उस बादशाह के लिये भेट भेजी थी। जो लोग उस भेट को ले गये थे, उनके साथ भृगुकच्छ (भडौच) से एक श्रमणाचार्य (दिगम्बर जैनाचार्य) भी साथ हो लिये थे। वह यूनान पहुचे थे और वहाँ उनका सम्मान हुआ था। आखिर सल्लेखना व्रत को धारण करके उन्होने अथेन्स (Athens) मे प्राण विसर्जन किये थे। वहाँ उनकी एक निषधिका बनायी गई थी।[१] अब भला कहिये, जब उस समय दिगम्बर मुनि विदेशो तक मे जाकर धर्म प्रचार करने में समर्थ थे, तो वे भारत में क्यो न विहार और धर्म प्रचार करने सफल होते। जैन साहित्य बताता है कि गगदेव सुधर्म, नक्षत्र, जयपाल, पाण्डु, ध्रुवसेन आदि दिगम्बर जैनाचार्यो के नेतृत्त्व में तत्कालीन जैन धर्म सजीव हो रहा था।

ईस्वी पूर्व प्रथम शताब्दि मे भारत मे अपोलो और दमस नामक दो यूनानी तत्त्वेत्ता आये थे। उनका तत्कालीन दिगम्बर मुनियो के साथ शास्त्रार्थ हुआ था।[२] सारांशत उस समय भी दिगम्बर मुनि इतने महत्त्वशील थे कि वे विदेशियो का भी ध्यान आकृष्ट करने को समर्थ थे।

---

[१५] यवन क्षत्रप आदि राजागण तथा दिगम्बर मुनि

"About the second century B C when the Greeks had occupied a fair portion of western India, Jainism appears to have made its way amongst them and the founder of the sect appears also to have been held in hign esteem by the Indo- Greeks, as is apparent from an account given in the milinda Panho." -H G p 78.

---

१ "In the sune year (25BC) went an Indian embassy with gifts to Augustus from a King called Purus by some and Pandian by other They were accompanied by the man who burnt himself at Athens He with a smile leapt upon the pyre naked On his tomb was this inscription "Zermano" ~ chegas to the custom of his country, lies here' Zermano-hegas seems to be the Greek rendering of Sramanachrya or Jaina Guru and the self-immolation a variety of Sallekhna" -IHQ, Vol II,p 293

२ "Apollonius of Tyana travelled with Damus Born about 4 B C. he came to explore the wonders of India ..He was a Phythoronan philosopher & met larchas at Taxila and disputed with Indian Gymaosophists. (Nirgranthas)" -QJMS,XVIII pp 305-306

मौर्यो के उपरान्त भारत के पश्चिमोत्तर सीमा प्रांत, पजाब, मालवा आदि प्रदेशो पर यूनानी आदि विदेशियो का अधिकार हो गया था। इन विदेशी लोगो मे भी जैन मुनियो ने अपने धर्म का प्रचार कर दिया था और उनमे से कई बादशाह जैन धर्म मे दीक्षित हो गये थे।

भारतीय यवनो (Greek) में मनेन्द्र (Menander) नामक राजा प्रसिद्ध था। उसकी राजधानी पजाव प्रान्त का प्रसिद्ध नगर साकल स्यालकोट था। बौद्ध ग्रथ 'मिलिनद्पण्ह' से विदित है कि उस नगर में प्रत्येक धर्म के गुरु पहुँचकर धर्मोपदेश देते थे।[१] मालूम होता है कि दिगम्बर जैन मुनियो को वहॉ विशेष आदर प्राप्त था, क्योकि 'मिलिनदपण्ह' मे कहा गया है कि पॉच सौ यूनानियो ने राजा मनेन्द्र से भगवान् महावीर के 'निर्ग्रथ' धर्म द्वारा मनस्तुष्टि करने का आग्रह किया था और मनेन्द्र ने उनका यह आग्रह स्वीकार किया था।[२] अन्ततः वह जैन धर्म मे दीक्षित हो गया था और उसके राज्य में अहिसा धर्म की प्रधानता हो गई थी।[३]

यवनो (Indo Greek) को हराकर शको ने फिर उत्तर-पश्चिम भारत पर अधिकार जमाया था। उन्होने 'छत्रप' प्रान्तीय शासक नियुक्त करके शासन किया था। इनमे राजा अजेस (Azes I) के समय मे तक्षशिला में जैन धर्म उन्नति पर था। उस समय के बने हुये जैन ऋषियो के स्मारक रूप स्तूप आज भी तक्षशिला मे भग्नावशेष है।[४]

शक राजा कनिष्क, हुविष्क और वासुदेव के राजकाल मे भी जैन धर्म उन्नत दशा मे रहा था। मथुरा उस समय प्रधान जैन केन्द्र था। अनेक निर्ग्रथ साधु वहॉ विचरते थे। उन नग्न साधुओ की पूजा राजपुत्र और राजकन्याये तथा साधारण जन-समुदाय किया करते थे।[५]

छत्रप नहपान भी जैन धर्म प्रेमी प्रतीत होता है। उसका राज्य गुजरात से मालवा तक विस्तृत था। जैन साहित्य में उनका उल्लेख नरवाहन और नहवाण रुप में हुआ मिलता है। नहपान ही सभवतः भूतबलि नामक दिगम्बर जैनाचार्य हुये थे, जिन्होने "पट्खण्डागम शास्त्र" की रचना की थी।

---

१. "They resound with cries of welcome to the teachers of every creed and the city is the resort of the leading men of each of the differing sects" -QKM p 3

२ QKM.p 8

३. वीर, वर्ष २, पृ ४४६-४४९।

४ AGT, pp 76-80

५ "Another locality in which the Jainas seem to have been formly established from the middle of the 2nd Century B C. onwards was Mathura in the old kingdom of Curasens" -CHI.I p 167 & see JOAM

सम्मिलित हुये थे।[१] इन ऋषि पुगवो ने मिलकर जिनवाणी का उद्धार किया था तथा सम्राट खारवेल के सहयोग से वे जैन धर्म के प्रचार करने मे सफल मनोरथ हुये थे। यही कारण है कि उस समय प्राय· सारे भारत मे जैन धर्म फैला हुआ था। यहाँ तक कि विदेशियो मे भी उसका प्रचार हो गया था, जैसे कि पूर्व परिच्छेद मे लिखा जा चुका है। अतएव यह स्पष्ट है कि ऐल० खारवेल के राजकाल मे दिगम्बर मुनियो का महान् उत्कर्ष हुआ था।

ऐल० खारवेल के बाद उनके पुत्र कुदेपश्री खर महामेघवाहन कलिग के राजा हुये थे। वह भी जैन धर्मानुयायी थे।[२] उनके बाद भी एक दीर्घ समय तक कलिग में जैन धर्म राष्ट्र धर्म रहा था। बौद्धग्रथ 'दाठवसो' से ज्ञात है कि कलिग के राजाओ मे महात्मा बुद्ध के समय से जैन धर्म का प्रचार था। गौतम बुद्ध के स्वर्गवासी होने के बाद बौद्धभिक्षु खेम ने कलिग के राजा ब्रह्मदत्त को बौद्ध धर्म मे दीक्षित किया था। ब्रह्मदत्त का पुत्र काशीराज और पौत्र सुनन्द भी बौद्ध रहे थे।[३] किन्तु तदोपरान्त फिर जैन धर्म का प्रचार कलिग में हो गया। यह समय सभवत· खारवेल आदि का होगा। कालान्तर मे कलिग का गुहशिव नामक प्रतापी राजा निर्ग्रथ साधुओ का भक्त कहा गया है। उसके बाद बौद्ध मत्री ने उसे जैन धर्म विमुख बना लिया था। निर्ग्रंथ साधु उसकी राजधानी छोड़कर पाटलिपुत्र चले गये थे। सम्राट् पाण्डु वहाँ पर शासनाधिकारी था। निर्ग्रथ साधुओ ने उससे गुहशिव की धृष्टता की बात कही थी।[४] यह घटना लगभग ईसवी तीसरी या चौथी शताब्दि की कही जा सकती है और इससे प्रकट है कि उस समय तक दिगम्बर मुनियो की प्रधानता कलिंग अग–बग और मगध मे विद्यमान थी। दिगम्बर मुनियो को राजाश्रय मिला हुआ था।

---

१ अनेकान्त, वर्ष १, पृ २२८।

२ JBORS III p 505

३ दन्त धातु ततो खेमो अत्तना गहित अदा।
दन्तपूरे कलिंगस्स ब्रह्मदत्तस्स राजिनो।।५७।। २।।
देसयित्थान सो धम्म भेत्वा सब्ब कुदिट्ठियो।।
राजान त पसादेसि अग्गम्हिरतनत्तगे।।५८।।
अनुजातो ततो तस्स कासिराज व्हयो सुतो।
रज्ज लद्धा अमच्चान सोकसल्लमपानुदि।।६६।।
सुनन्दो नाम राजिन्दो आनन्दजननो सत।
तस्स त्रजो ततो आसि बुद्धसासननामको।।६९।। —दाठा, पृ. ११–१२

४ गुहसीव व्हेयाराजा दुरतिक्कमसासनो।
तती रज्जसिरि पत्वा अनुगण्हि महाजन।।७२।। २।।
सपरत्थानभिञ्जेसो लाभासक्कारलोलूपे।
मायाविनो अविज्जन्धे निगण्ठे समुपठ्टहि।।७३।।
तस्सा मच्चस्स सो राजा सुत्वा धम्मसुभासित।
दुल्लद्धिमलमुञ्झित्वा पसीदि रतनत्तये।।८६।।

कुमारी पर्वत पर के शिलालेखो से यह भी प्रकट है कि कलिग में जैन धर्म दसवी शताब्दि तक उन्नतावस्था पर था। उस समय वहाँ पर दिगम्बर जैन मुनियो के विविध सघ विद्यमान थे, जिनमे आचार्य यशनन्दि, आचार्य कुलचन्द्र तथा आचार्य शुभचन्द्र मुख्य साधु थे।[१]

इस प्रकार कलिग मे दिगम्बर जैन धर्म का बाहुल्य एक अतीव प्राचीन काल से रहा है और वहाँ पर आज भी सराक लोग एक बडी सख्या मे हैं, जो प्राचीन श्रावक हैं।[२] उनका अस्तित्त्व इस बात का प्रमाण है कलिग में जैनत्व की प्रधानता आधुनिक समय तक विद्यमान रही थी।

---

[१७] गुप्त साम्राज्य में दिगम्बर मुनि

"The capital of the Gupta emperors became the centre of Brahmanical culture, but the masses followed the religions traditions of their forefathers, and Buddhist & Jain monasteries continued to be public schools and universities for the greater part of India."

—E B Havell, HARI, p 156

इति सो चिन्तयित्वान गुहसीवो नराधिपो।
पव्वाजेसी सकारट्ठ निगण्ठे ते असेसके।।८९।।
ततो निगण्ठा सव्वेपि घतसित्तानला यथा।
कोधग्गिजलिता गच्छ पुर पाटलिपुत्तका।।९०।।
तत्थ राजा महातेजो जम्बुदीपस्स हस्सरो।
पण्डु नामोतदा आसि अनन्त बलवाहनो।।९१।।
कोधन्धोऽय निगण्ठा ते सव्वे पेसुज्जकारका।
उपसकम्मराजान इद वचनमब्रु।।९२।। इत्यादि

—दाठा, पृ १३-१४

१ बबिओ जैस्मा, पृ ९४-९६।
२ बबिओ जैस्मा, पृ १०१-१०४।

यद्यपि गुप्त वश के राज्यकाल मे ब्राह्मण धर्म की उन्नति हुई थी, किन्तु जन-साधारण मे अब भी जैन और बौद्ध धर्मों का ही प्रचार था। दिगम्बर जैन मुनिगण ग्राम-ग्राम विचर कर जनता का कल्याण कर रहे थे और दिगम्बर उपाध्याय जैन-विद्यापीठो के द्वारा ज्ञान-दान करते थे। गुप्त काल मे मथुरा, उज्जैन, श्रावस्ती राजगृह आदि स्थान जैन धर्म के केन्द्र थे। इन स्थानो पर दिगम्बर जैन साधुओ के सघ विद्यमान थे। गुप्त सम्राट अब्राह्मण साधुओ से द्वेष नही रखते थे[१], तथापि उनका वाद ब्राह्मण विद्वानो के साथ कराकर सुनना उन्हे पसद था।

श्री सिद्धसेनादिवाकर के उद्‌गारो से पता चलता है कि "उस समय सरलवाद पद्धति और आकर्षक शान्ति वृत्ति का लोगो पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ता था। निर्ग्रंथ अकेले-दुकेले ही ऐसे स्थलो पर जा पहुँचते थे और ब्रह्मणादि प्रतिवादी विस्तृत शिष्य-समूह और जन-समुदाय सहित राजसी ठाट-बाट के साथ पेश-आते थे, तो भी जो निर्ग्रंथो को मिलता था वह उन प्रतिवादियो को अप्राप्य था।[२]

बगाल मे पहाडपुर नामक स्थान दिगम्बर जैन सघ का केन्द्र था। वहाँ के दिगम्बर मुनि प्रसिद्ध थे।[३]

गुप्त वश मे चन्द्रगुप्त द्वितीय प्रतापी राजा था। उसने 'विक्रमादित्य' की उपाधि धरण की थी। विद्वानो का कथन है कि उसी की राज-सभा मे निम्नलिखित विद्वान थे[४]-

'धन्वन्तरि क्षपणकोऽमरसिहशकु-
वतालभट्टघट खर्परकालिदासा।
ख्यातो वराहमिहिरो नृपते सभाया।
रत्नानि वै वररुचिर्नव विक्रमस्य।।'

इन विद्वानो मे 'क्षपणक' नाम का विद्वान एक दिगम्बर मुनि था। आधुनिक विद्वान उन्हे सिद्धसेन नामक दिगम्बर जैनाचार्य प्रकट करते हैं।[५] जैन शास्त्र भी उनका समर्थन करते हैं। उनसे प्रकट है कि श्री सिद्धसेन ने 'महाकाली' के मन्दिर में चमत्कार दिखाकर चन्द्रगुप्त को जैन धर्म मे दीक्षित कर लिया था।[६]

---

१ भाइ, पृ ९१।
२ जैहि, भा १४, पृ १५६।
३ IHQ, VII,441
४ रश्रा, पृ १३३
५ रश्रा चरित्र, पृ १३३-१४१।
६ वीर, वर्ष १, पृ ४७१।

उपर्युक्त विद्वानो में से अमरसिंह[1], वराहमिहिर[2] आदि ने अपनी रचनाओं मे जैनो का उल्लेख किया है, उससे भी प्रकट है कि उस समय जैन धर्म काफी उन्नत रुप मे था। वराहमिहिर ने जैनों के उपास्य देवता की मूर्ति नग्न बनती लिखी है, जिससे स्पष्ट है कि उस समय उज्जैनी मे दिगम्बर धर्म महत्त्वपूर्ण था। जैन साहित्य से प्रकट है कि उज्जैनी के निकट भद्दलपुर (वीसनगर) मे उस समय दिगम्बर मुनियो का सघ मौजूद था, जिसके आचार्यो की कालानुसार नामवली निम्न प्रकार हैं-

१.	श्री मुनि वज्रनन्दी	–	सन् ३०७ मे आचार्य हुये
२.	श्री मुनि कुमार नन्दी	–	सन् ३२९ में आचार्य हुये
३.	श्री मुनि लोकचन्द्र प्रथम	–	सन् ३६० में आचार्य हुये
४.	श्री मुनि प्रभाचन्द्र प्रथम	–	सन् ३९६ में आचार्य हुये
५.	श्री मुनि नेमिचन्द्र प्रथम	–	सन् ४२१ में आचार्य हुये
६.	श्री मुनि भानुनन्दि	–	सन् ४३० में आचार्य हुये
७.	श्री मुनि जयनन्दि	–	४५१ में आचार्य हुये
८.	श्री मुनि वसुनन्दि	–	४६८ में आचार्य हुये
९.	श्री मुनि वीरनन्दि	–	४७४ मे आचार्य हुये
१०.	श्री मुनि रत्ननन्दि	–	५०४ में आचार्य हुये
११.	श्री मुनि माणिक्यनन्दि	–	५२८ में आचार्य हुये
१२.	श्री मुनि मेघचन्द्र	–	५४४ मे आचार्य हुये
१३.	श्री मुनि शान्ति कीर्ति प्रथम	–	५६० में आचार्य हुये
१४.	श्री मुनि मेरुकीर्ति प्रथम	–	५८५ मे आचार्य हुये[3]

इनके वाद जो दिगम्बर जैनाचार्य हुये, उन्होनें भद्दलपुर (मालवा) से हटाकर जैन सघ का केन्द्र उज्जैन मे वना दिया।[4] इससे भी स्पष्ट है कि चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के निकट जैन धर्म को आश्रय मिला था। उसी समय चीनी यात्री फाह्यान भारत में आया था। उसने मथुरा के उपरान्त मध्यप्रदेश मे ९६ पाखण्डो का प्रचार लिखा है। वह कहता है कि "वे सव लोक और परलोक मानते हैं। उनके साधु-सघ हैं। वे भिक्षा करते हैं, केवल भिक्षापात्र नही रखते। सव नाना रुप से धर्मानुष्टान करते हैं।" दिगम्बर मुनियो के पास भिक्षापात्र नही होता-वे पाणिपात्र भोजी और उनके सघ होते हैं तथा वे मुख्यतः अहिसा धर्म का उपदेश देते हैं। फाह्यान भी कहता है कि "सारे

१. अमरकोष देखो।
२. 'नग्नान् जिनाना विदु' ।'- वराहमिहिर संहिता
३ पट्टवाली जैहि०, भाग ६, अंक ७-८, पृ० २९-३० व IA, XX, 351-352
४. IA, XX, 352

देश मे सिवाय चाण्डाल के कोई अधिवासी न जीवहिंसा करता है, न मद्य पीता है और न लहसुन खाता है।....न कही सूनागार और मद्य की दुकाने है।[१] ....उसके इस कथन से भी जैन मान्यता का समर्थन होता है कि भद्दलपुर, उज्जैनी आदि मध्यप्रदेशवर्ती नगरो मे दिगम्बर जैन मुनियो के सघ मौजद थे और उनके द्वारा अहिंसा धर्म की उन्नति होती थी।

फाह्यान सकाश्य, श्रावस्ती, राजगृह आदि नगरो मे भी निर्ग्रंथ साधुओ का अस्तित्त्व प्रगट करता है। सकाश्य उस समय जैन तीर्थ माना जाता था। सभवतः यह भगवान् विमलनाथ तीर्थकर का केवल्यज्ञान का स्थान है। दो-तीन वर्ष हुये, वही निकट से एक नग्न जैन मूर्ति निकली थी और वह गुप्त काल की अनुमान की गई है।[२] इस तीर्थ के सम्बन्ध मे निर्ग्रथो और बौद्ध भिक्षुओ मे वाद हुआ वह लिखता है।[३] श्रावस्ती मे भी बौद्धो ने निर्ग्रथो से विवाद किया वह बताता है।[४] श्रावस्ती मे उस समय सुहृदध्वज वश केजैन राजा राज्य करते थे।[५] कुहाऊ(गोरखपुर) से जो स्कन्दगुप्त के राजकाल का जैन लेख मिला है[६] उससे स्पष्ट है कि इस ओर अवश्य ही दिगम्बर जैन धर्म उन्नतावस्था पर था।

सॉची से एक जैन लेख विक्रम स. ४६८ भाद्रपद चतुर्थी का मिला है। उसमें लिखा है कि उन्दान के पुत्र आमरकार देव ने ईश्वरवासक गॉव और २५ दीनारों का दान किया। यह दान काकनावोट के जैन विहार मे पॉच जैन भिक्षुओ के भोजन के लिये और रत्नगृह मे दीपक जलाने के लिये दिया गया था। उक्त आमरकारक देव चन्द्रगुप्त के यहॉ किसी सैनिक पद पर नियुक्त था।[७] यह भी जैनोत्कर्ष का द्योतक है।

राजगृह पर भी फाह्यान निर्ग्रथो का उल्लेख करता है[८]। वहॉ की सुभद्र गुफा मे तीसरी या चौथी शताब्दि का एक लेख मिला है जिससे प्रकट है कि मुनि संघ ने मुनि वैरदेव को आचार्य पद पर नियुक्त किया था।[९] राजगृह में गुप्त काल की अनेक दिगम्बर मूर्तियॉ भी हैं।[१०]

---

१ फाह्यान, पृ. ३१
२ IHQ, Vol V p 142
३. फाह्यान, पृ ३५-३६।
४ फाह्यान, पृ ४०-४५।
५ सप्राजैस्मा, पृ. ६५।
६ भाप्रारा , भा २, पृ २८९।
७ भाप्रारा., भा. २, पृ. २६३।
८ "Here also the Nigantha made a pit with fire in it and poisoned the food of which the invited Buddha to patake (The Nirgranthas were ascetics who went naked") — Fa-Hian Beal pp 110-113
यह उल्लेख साम्प्रदायिक द्वेष का द्योतक है।
९. वबिओ जैसमा , पृ. १६।
१० "Report on the Ancient Jain Remains on the hills of Rajgir" submitted to he Patna Court by R.B Ramprasad Chanda B.A.Ch. IV p.30 (Jain images of the Gupta & Pala period at Rajgir)

सारांशतः गुप्तकाल मे दिगम्बर मुनियो का बाहुल्य था और वे सारे देश में घूम-घूम कर धर्मोद्योत कर रहे थे।

---

[१८] हर्षवर्द्धन तथा ह्वेनसांग के समय में दिगम्बर मुनि

"बौद्धो और जैनियो की भी संख्या बहुत अधिक थी।...बहुत से प्रान्तीय राजा भी इनके अनुयायी थे। इनके धार्मिक सिद्धान्त और रीतिरिवाज भी तत्कालीन समाज पर पर्याप्त प्रभाव डाले हुये थे। इनके अतिरिक्त तत्कालीन समाज में साधुओ, तपस्वियो, भिक्षुओ और यतियो का एक बड़ा भारी समुदाय था, जो उस समय के समाज मे विशेष महत्त्व रखता था।....(हिन्दुओ मे) बहुत से साधु अपने निश्चित स्थानो पर बैठे हुये ध्यान-समाधि करते थे, जिनके पास भक्त लोग उपदेश आदि सुनने आया करते थे। बहुत से साधु शहरो व गॉवो में घूम-घूमकर लोगो को उपदेश व शिक्षा दिया करते थे। यही हाल बौद्ध भिक्षुओं और जैन साधुओ का भी था।....साधारणतः लोगो के जीवन को नैतिक एव धार्मिक बनाने मे इन साधुओ, यतियो और भिक्षुओ का बड़ा भारी भाग था।"[१] -कृष्णचन्द्र विद्यालंकार

गुप्त साम्राज्य के नष्ट होने पर उत्तर-भारत का शासन योग्य हाथो मे न रहा। परिणाम यह हुआ कि शीघ्र ही हूण जाति के लोगो ने भारत पर आक्रमण करके उस पर अधिकार जमा लिया। उनका राज्य सभी धर्मो के लिये थोड़ा-बहुत हानिकारक हुआ, किन्तु यशोवर्मन राजा ने सगठन करकें उन्हे परास्त कर दिया। इसके बाद हर्षवर्द्धन नामक सम्राट एक ऐसे राजा मिलते हैं जिन्होने सारे उत्तर-भारत मे प्राय· अपना अधिकार जमा लिया था और दक्षिण-भारत को हथियाने की भी जिन्होने कोशिश की थी। इनके राजकाल में प्रजा ने सतोष की सांस ली थी और वह धर्म-कर्म की बातो की ओर ध्यान देने लगी थी।

गुप्तकाल से ही ब्राह्मण धर्म का पुनरुत्थान होने लगा था और इस समय भी उसकी बाहुल्यता थी, किन्तु जैन और बौद्ध धर्म भी प्रतिभाशाली थे। धार्मिक जागृति का वह उन्नत काल था। गुप्तकाल से जैन, बौद्ध और ब्राह्मण विद्वानो में वाद और

---

१. हर्षकालीन भारत-"त्यागभूमि", वर्ष २, खण्ड १, पृ ३०१।

शास्त्रार्थ होना प्रारम्भ हो गये थे। हर्ष के काल में उनको वह उन्नत रुप मिला कि समाज में विद्वान ही सर्वश्रेष्ठ पुरुष गिना जाने लगा।[१] इन विद्वानो में दिगम्बर मुनियो का भी सद्भाव था। सम्राट हर्ष के राजकवि बाण ने अपने ग्रथो मे उनका उल्लेख किया है। वह लिखता है कि "राजा जब गहन जंगल मे जा पहुचा तो वहाँ उसने अनेक तरह के तपस्वी देखे। उनमें नग्न (दिगम्बर) आर्हत (जैन) साधु भी थे।[२] हर्ष ने अपने महासम्मेलन में उन्हे शास्त्रार्थ के लिये बुलाया था और वह एक बड़ी सख्या में उपस्थित हुये थे।[३] इससे प्रकट होता है कि उस समय हर्ष की राजधानी के आस-पास भी जैन धर्म का प्रावल्य था, वैसे तो वह सारे भारत में फैला हुआ था। उज्जैन का दिगम्बर जैन सघ अब भी प्रसिद्ध था और उसमें तत्कालीन निम्न दिगम्बर जैनाचार्य मौजूद थे[४]-

१. श्री दिगम्बर जैनाचार्य महाकीर्ति, सन् ६२९ को आचार्य हुये
२. श्री दिगम्बर जैनाचार्य विष्णुनन्दि सन् ६४७ को आचार्य हुये
३. श्री दिगम्बर जैनाचार्य श्रीभूषण सन् ६६९ को आचार्य हुये
४. श्री दिगम्बर जैनाचार्य श्रीचन्द्र सन् ६७८ को आचार्य हुये
५. श्री दिगम्बर जैनाचार्य श्रीनन्दि सन् ६९२ को आचार्य हुये
६. श्री दिगम्बर जैनाचार्य देशभूषण सन् ७०८ को आचार्य हुये

सम्राट हर्ष के समय मे (७ वी श.) चीन देश से ह्वेनसांग नामक यात्री भारत आया था। उसने भारत और भारत के बाहर दिगम्बर जैन मुनियो का अस्तित्व बतलाया है।[५] वह उन्हे निर्ग्रंथ और नगे साधु लिखता है तथा उनकी केशलुञ्चन क्रिया का भी उल्लेख करता है।[६] वह पेशावर की ओर से भारत मे घुसा था और वही सिंहपुर मे उसने नगे जैन मुनियो को पाया था।[७] 'इसके उपरान्त पजाब और मथुरा, स्थानेश्वर, ब्रह्मपुर, आहिक्षेत्र, कपिथ, कन्नौज, अयोध्या, प्रयाग, कौशांबी, बनारस, श्रावस्ती इत्यादि मध्यप्रदेशवर्ती नगरो मे यद्यपि उसने दिगम्बर मुनियो का पृथक् उल्लेख नही किया है, परन्तु एक साथ सब प्रकार के साधुओ का उल्लेख करके उसने उनके अस्तित्त्व को इन नगरो में प्रकट कर दिया है। मथुरा के सम्बन्ध में वह लिखता है

---

१ भाइ , पृ १०३-१०४।
२. दिमु , पृ २१।
३ Hari , p 270
४ जैहि , ए भा ६, अंक ७-८, पृ. ३० व I.A , XX-352.
५ "Hieun Tsang found them (Jains) spread through the whole of India and even beyond its boundaries -" AISJ P45
विशेष के लिये ह्वेनसाग का भारत भ्रमण (इण्डियन प्रेस लि.) देखो।
६ "The Li-hi (Nirgranthas) distinguish themselves by leaving their bodies naled & puling out their hair. Their skin is all cracked their feet are hard & chapped like cotting trees" —(St. Julien, Vienna p 224)
७. हुमा., पृ १४३।

कि "पॉच देव मन्दिर भी है, जिनमे सब प्रकार के साधु उपासना करते हैं।"[१] स्थानेश्वर के विषय मे उसने लिखा है कि "कई सौ देव मन्दिर बने हैं, जिनमें नाना जाति के अगणित भिन्न धर्मावलम्बी उपासना करते है।"[२] ऐसे ही उल्लेख अन्य नगरो के सम्बन्ध मे उसने किये हैं।

राजगृह के वर्णन मे ह्वेनसांग ने लिखा है कि "विपुल पहाड़ी की चोटी पर एक स्तूप उस स्थान मे है, जहाँ प्राचीन काल मे तथागत भगवान् ने धर्म की पुनरावृत्ति की थी। आजकल बहुत से निर्ग्रंथ लोग (जो नगे रहते है, इस स्थान पर आते हैं और रात-दिन अविराम तपस्या किया करते हैं तथा सवेरे से सांझ तक इस (स्तूप) की प्रदक्षिणा करके बड़ी भक्ति से पूजा करते है।"[३]

पुण्ड्रवर्द्धन (बगाल) मे वह लिखता है कि "कई सौ देवमन्दिर भी हैं जिनमें अनेक सप्रदाय के विरुद्ध धर्मावलम्बी उपासना करते हैं। अधिक सख्या निर्ग्रंथ लोगो (दिगम्बर मुनियो) की है।"[४]

समतट (पूर्वी बगाल) मे भी उसने अनेक दिगम्बर साधु पाये थे। वह लिखता है, "दिगम्बर साधु, जिनको निर्ग्रंथ कहते है, बहुत बडी सख्या मे पाये जाते है।"[५]

ताम्रलिप्ति मे वह विरोधी और बौद्ध दोनो का निवास बतलाता है। कर्णसुवर्ण के सम्बन्ध मे भी यही बात कहता है।[६]

कलिंग मे इस समय दिगम्बर जैन धर्म प्रधान पद ग्रहण किये हुए था। ह्वेनसांग कहता है कि वहाँ 'सबसे अधिक सख्या निर्ग्रंथ लोगो की है।[७] इस समय कलिग मे सेनवश के राजा राज्य कर रहे थे, जिनका जैन धर्म से सम्बन्ध होना बहुत कुछ सभव है।[८]

दक्षिण कौशल मे वह विधर्मी और बौद्ध दोनो को बताता है। आन्ध्र में भी विरोधियो का अस्तित्त्व वह प्रकट करता है।[९]

चोल देश में बहुत से निर्ग्रंथ लोग बताता हैं।[१०] द्रविड़ के सम्बन्ध मे वह कहता है कि "कोई अस्सी देव मन्दिर और असख्य विरोधी हैं, जिनको निर्ग्रंथ कहते हैं।[११]

१ हुभा , पृ १८१।
२ हुभा , पृ १८६।
३ हुभा , पृ. ४७४-४७५।
४ हुभा , पृ ५२६।
५ हुभा , पृ ५३३।
६ हुभा , पृ ५३५-५३७।
७ हुभा , पृ ५४५।
८ वीर, वर्ष ४, पृ ३२८-३३२।
९ हुभा , पृ ५४६-५५७।
१० हमभा , पृ ५७०।
११ हूभा , पृ ५७२

मालकूट (मलय देश) में वह बताता है कि "कई सौ देव मदिर और असख्य विरोधी हैं, जिनमें अधिकतर निर्ग्रथ लोग है।"[1]

इस प्रकार ह्वेनसांग के भ्रमण–वृतान्त से उस समय प्रायः सारे भारतवर्ष मे दिगम्बर जैन मुनि निर्बाध विहार और धर्म प्रचार करते हुय मिलते हैं।

---

[११] मध्यकालीन हिन्दू राज्य में दिगम्बर मुनि

"श्री धाराधिप–भोजराज–मुकुट–प्रोताश्मरश्मिच्छटा–
च्छाया–कुकम–पक–लिप्त–चरणाम्भोजात–लक्ष्मीधव।
न्यायाब्जाकरमण्डने दिनमणिश्शब्दाब्ज–रोदोमणि–
स्थेयात्पण्डित–पुण्डरीक तरणि श्रीमान्प्रभाचन्द्रमाः।।"

–चन्द्रागिरि शिलालेख

राजपूत और दिगम्बर मुनि

हर्ष के उपरान्त उत्तर भारत में कोई एक सम्राट न रहा, बल्कि अनेक छोटे–छोटे राज्यो में यह देश विभक्त हो गया। इन राज्यों मे अधिकांश राजपूतों के अधिकार मे थे और इनमे दिगम्बर मुनि निर्बाध विचर कर जनकल्याण करते थे। राजपूतो में अधिकांश जैसे चौहान, पड़िहार आदि एक समय जैन धर्म के भक्त थे और उनके कुलदेवता चक्रेश्वरी, अम्बा आदि शासन देवियाँ थी।[2]

उत्तर–भारत में कन्नौज को राजपूत–काल में भी प्रधानता प्राप्त रही हैं। वहाँ का राजाभोज परिहार (८४०–९० ई.) सारे उत्तर भारत का शासनाधिकारी था। जैनाचार्य बप्पसूरि ने उसके दरबार में आदर प्राप्त किया था।[3]

श्रावस्ती, मथुरा, असाईखेड़ा, देवागढ़, वारानगर, उज्जैन आदि स्थान उस समय भी जैन केन्द्र बने हुये थे। ग्यारहवी शताब्दी तक श्रावस्ती में जैन धर्म राष्ट्र धर्म रहा था। वहाँ का अन्तिम राजा सुहृद्ध्वज था।[4] उसके सरक्षण में दिगम्बर मुनियो का लोककल्याण में निरत रहना स्वाभाविक है।

---

१. हुमा॰ पृ॰ ५७४
२. वीर, वर्ष, ३ पृ॰ ४७२ – एक प्राचीन जैन गुटका में यह बात लिखी हुई है।
३ भाइ॰ पृ॰ १०८ व दिजै॰ वर्ष २३, पृ॰ ८४ ।
४ संप्राजैस्मा पृ ६५

बनारस के राजा भीमसेन जैनधर्मानुयायी थे और वह अन्त मे पिहिताश्रव नामक जैनमुनि हुये थे।[१]

मथुरा के रणकेतु नामक राजा जैन धर्म का भक्त था। वह अपने भाई गुणवर्मा सहित नित्य जिनपूजा किया करता था। आखिर गुणवर्मा को राज्य देकर वह जैन मुनि हो गया था।[२]

सूरीपूर (जिला आगरा) का राजा जितशत्रु भी जैनी था। वह बड़े-बड़े विद्वानो का आदर करता था। अन्त में वह जैन मुनि हो गया था और शान्तिकीर्ति के नाम से प्रसिद्ध हुआ था।[३]

मालवा के परमारवशी राजाओं में मुञ्ज और भोज अपनी विद्यारसिकता के लिये प्रसिद्ध है। उनकी राजधानी धार नगरी विद्या केन्द्र थी। मुञ्ज के दरबार में धनपाल, पद्मगुप्त, धनञ्जय, हलायुद्ध आदि अनेक विद्वान थे।[४] मुञ्जनरेश से दिगम्बर जैनाचार्य महासेन ने विशेष सम्मान पाया था।[५] मुञ्ज के उत्तराधिकारी सिंधु राज के एक सामन्त के अनुरोध पर उन्होने 'प्रद्युम्न चरित' काव्य की रचना की थी। कवि धनपाल का छोटा भाई जैनाचार्य के उपदेश से जैन हो गया था, किन्तु धनपाल को जैनो से चिढ़ थी। आखिर उनके दिल पर भी सत्य जैन धर्म का सिक्का जम गया और वह भी जैनी हो गये थे।[६]

दिगम्बर जैनाचार्य श्री शुभचन्द्र जी राजा मुञ्ज के समकालीन थे। उन्होनें राज का मोह तयागकर दिगम्बरी दीक्षा ग्रहण की थी।[७]

राजा मुञ्ज के समय मे ही प्रसिद्ध दिगम्बरचार्य श्री अमितगति जी हुये थे। वह माथुर सघ के आचार्य माधवसेन के शिष्य थे। 'आचार्यवर्य अमितगति बड़े भारी विद्वान् और कवि थे। इनकी असाधारण विद्वता का परिचय पाने को इनके ग्रथों का

---

१. जैप्र., पृ २४२।
२. पूर्व.।
३. पूर्व , पृ. २४१।
४ भप्रारा. भा. १, पृ. १००।
५. मप्राजैस्मा., भूमिका, पृ. २०।
६. भप्रारा., भा. १, पृ १०३-१०४।
७. मजैइ., पृ. ५४-५५।

मनन करना चाहिये। रचना सरल और सुखसाध्य होने पर भी बड़ी गभीर और मधुर है। सस्कृत भाषा पर इनका अच्छा अधिकार था।[१]

'नीतिवाक्यामृत' आदि ग्रथो के रचयिता दिगम्बराचार्य श्री सोमदेव सूरि श्री अमितगति आचार्य के समकालीन थे। उस समय इन दिगम्बराचार्यो द्वारा दिगम्बर धर्म की खूब प्रभावना हो रही थी।[२]

राजाभोज और दिगम्बर मुनि

मुञ्ज के समान राजाभोज के दरबार में भी जैनो को विशेष सम्मान प्राप्त था। भोज स्वय शैव था, परन्तु 'वह जैनो और हिन्दुओ के शास्त्रार्थ का बड़ा अनुरागी था।' श्री प्रभाचन्द्राचार्य का उसने बड़ा आदर किया था। दिगम्बर जैनाचार्य श्री शातिसेन ने भोज की सभा में सैकडो विद्वानो से वाद करके उन्हें परास्त किया था।[३]

एक कवि कालिदास राजाभोज के दरबार मे भी थे। कहते हैं कि उनकी स्पर्द्धा दिगम्बराचार्य श्री मानतु ग जी से थी। उन्ही के उकसाने पर राजा भोग ने मानतुगाचार्य को अडतालीस कोठो के भीतर बन्द कर दिया था, किन्तु श्री भक्तामर स्तोत्र' की रचना करते हुये वह आचार्य अपने योगवल से बन्धनमुक्त हो गए थे। इस घटना से प्रभावित होकर कहते हैं, राजाभोज जैन धर्म मे दीक्षित हो गये थे,[४] किन्तु इस घटना का समर्थन किसी अन्य श्रोत से नही होता।

श्री ब्रह्मदेव के अनुसार 'द्रव्यसग्रह' के कर्ता श्री नेमिचन्द्राचार्य भी राजाभोज के दरवार मे थे।[५] श्री नयनन्दी नामक दिगम्बर जैनाचार्य ने अपना "सुदर्शन चरित्र" राजाभोज के राजकाल में समाप्त किया था।[६]

उज्जैनी का दिगम्बर संघ

भोज ने अपनी राजधानी उज्जैनी मे उपस्थित की थी। उस समय भी उज्जैनी अपने "दिगम्बर जैन सघ के लिए प्रसिद्ध थी। उस समय तक सघ में निम्न आचार्य हुए थे[७]-

अनन्तकीर्ति	सन् ७०८ ई.
धर्मनन्दि	सन् ७२८ ई.

१ विको, भा २, पृ ६४।
२ विर, पृ ११५।
३ भाप्रारा, भाग १, पृ ११८-१२१।
४ भक्तामर कथा, जैप्र, पृ २३९।
५ द्रस, पृ १ वृत्ति ।
६ मप्राजैस्मा, भूमिका, पृ २०।
७ जैहि भा. ६, अक ७-८ पृ ३०-३१

विद्यानन्दि	सन् ७५१ ई.
रामचन्द्र	सन् ७८३ ई.
रामकीर्ति	सन् ७९० ई.
अभयचन्द्र	सन् ८२१ ई.
नरचन्द्र	सन् ८४० ई.
नागचन्द्र[1]	सन् ८५९ ई.
हरिनन्दि	सन् ८८२ ई.
हरिचन्द्र	सन् ८९१ ई.
महीचन्द्र	सन् ९१७ ई.
माघचन्द्र	सन् ९३३ ई.
लक्ष्मीचन्द्र	सन् ९६६ ई.
गुणकीर्ति	सन् ९७० ई.
गुणचंद्र	सन् ९९१ ई.
लोकचन्द्र	सन् १००९ ई.
श्रुतकीर्ति	सन् १०२२ ई.
भावचन्द्र	सन् १०३७ ई.
महीचन्द्र	सन् १०५८ ई.

आपके संघ में दिगम्बर मुनियों की संख्या अधिक थी और आपके धर्मोपदेश के द्वारा धर्म प्रभावना विशेष हुई थी।[2]

इनकी उपाधियाँ 'त्रिविध विद्येश्वरवैयाकरणभास्कर-महा-मंडलाचार्यनकंवागीश्वर' थीं। इनके विहार द्वारा खूब प्रभावना हुई।[3]

बाद के परमार राजाओं के समय में दिगम्बर मुनि

मालवा के परमार राजाओं में विन्ध्यवर्मा का नाम भी उल्लेखनीय है। इस राजा के राजकाल में प्रसिद्ध जैन कवि आशाधर ने ग्रंथ रचना की थी और उस समय कई दिगम्बर मुनि भी राजसम्मान पाये हुये थे। इनमें मुनि उदयसेन और मुनि मदनकीर्ति उल्लेखनीय हैं। मुनि मदनकीर्ति ही विन्ध्यवर्मा के पुत्र अर्जुनदेव के राजगुरु मदनोपाध्याय अनुमान किये गये हैं। इन्हें और मुनि विशालकीर्ति, मुनि विनयचन्द्र

---

१. ईडर से प्राप्त पट्टावली में लिखा है कि "इन्होंने दस वर्ष विहार किया था और वह स्थिर व्रती थे।"–दिजै., वर्ष १४, अंक १०, पृ. १७–२४

२. दिजै., वर्ष १४, अंक १०, पृ. १७–२४।

३. पूर्व.

आदि को कविवर आशाधर ने जैन सिद्धान्त और साहित्य ज्ञान में निपुण बनाया था। नालछा उस समय जैन धर्म का केन्द्र था।[१]

श्वेताम्बर ग्रन्थ "चतुर्विंशति प्रबन्ध में लिखा है कि उज्जैनी में विशालकीर्ति नामक दिगम्बराचार्य के शिष्य मदनकीर्ति नाम के दिगम्बर साधु थे। उन्होने वादियो को पराजित करके 'महाप्रामाणिकपदवी पाई थी और कर्णाटक देश में जाकर विजयपुर नरेश कुन्तिभोज के दरबार में आदर पाया था और अनेक विद्वानो को पराजित किया था, किन्तु अन्त मे वह मुनिपद से भ्रष्ट हो गए थे।[१]

गुजरात के शासक और दिगम्बर मुनि

मालवा के अनुरुप गुजरात भी दिगम्बर जैन मुनियो का केन्द्र था। अकलेश्वर में भूतबलि और पुष्पदन्ताचार्य ने दिगम्बर आगम ग्रथो की रचना की थी। गिरि नगर के निकट की गुफाओ मे दिगम्बर मुनियो का सघ प्राचीन काल से रहता था। भृगुकच्छ भी दिगम्बर जैनो का केन्द्र था।

गुजरात मे चालुक्य, राष्ट्रकूद आदि राजाओ के समय में दिगम्बर जैन धर्म उन्नतशील था। सोलकियो की राजधानी अणहिलपुरपट्टन मे अनेक दिगम्बर मुनि थे। श्रीचन्द्र मुनि ने वही ग्रथ रचना की थी।[३] योगचन्द्र मुनि[४] ओर मुनि कनकामर भी शायद गुजरात में हुए थे। ईडर के दिगम्बर साधु प्रसिद्ध थे।

सोलकी सिद्धराज ने एक वाद सभा कराई थी, जिसमें भाग लेने के लिये कर्णाटक देश से कुमुदचन्द्र नामक एक दिगम्बर जैनाचार्य आये थे। दिगम्बराचार्य नग्न ही पाटन पहुचे थे। सिद्धराज ने उनका बड़ा आदर किया था। देवसूरि नामक श्वेताम्बराचार्य से उनका वाद हुआ था।[५] इस उल्लेख से स्पष्ट है कि उस समय भी दिगम्बर जैनो का गुजरात में इतना महत्त्व था कि शासक राजकुल का भी ध्यान उनकी ओर आकृष्ट हुआ था।

दिगम्बराचार्य ज्ञानभूषण

गुर्जर, सौराष्ट्र आदि देशो में जिन धर्म प्रचार श्री दिगम्बर भट्टारक ज्ञानभूषण जी द्वारा हुआ था। अहीर देश में उन्होने ऐलक पद धारण किया था और वाग्वर देश मे महाव्रतो को उन्होने अगीकार किया था। विहार करते हुये वह कर्णाटक, तौलव, तिलग, द्रविड़, महाराष्ट्र, सौराष्ट्र, रायदेश, भेदपाट, मालव, मेवात, कुरुजांगल,

---

१. भाप्रारा , भाग १, पृ १५७ व सागार भूमिका, पृ ९।
२. जैहि , भा ११, पृ ४८५।
३ वीर, वर्ष १, पृ ६३७।
४ वीर, वर्ष १, पृ ६३८।
५. विको., भा ५, पृ. १०५।

तुरुव, विराटदेश, नामियाडदेश, टग, राट, नाग, चोल आदि देशो में विचरे थे। तौलव देश के महावादीश्वर विद्वज्जनों और चक्रवर्तियो के मध्य उन्होने प्रतिष्ठा पाई थी। तुरुव देश में पट्दर्शन के ज्ञाताओ का गर्व उन्होने नष्ट किया था। नमियाड़ देश में जिन धर्म प्रचार के लिए नौ हजार उपदेशको को उन्होने नियुक्त किया था। दिल्ली पट्ट के वह सिहासनाधीश थे। श्री देवरायराज, मुदिपालराय, रामनाथराय, बोमरसराय, कलपराय, पाण्डुराय आदि राजाओ ने उनके चरणो की वंदना की थी।[१]

दिगम्बर जैनाचार्य श्री शुभचन्द्र

श्री ज्ञानभूपण जी के प्रशिष्य श्री शुभचन्द्राचार्य भी दिगम्बर मुनि थे। उनका पट्ट भी दिल्ली में रहा था। उन्होने भी विहार करते हुये गुजरात के वादियो का मद नष्ट किया था। वह एक अद्वितीय विद्वान् और वादी थे। उन्होने अनेक ग्रथो की रचना की थी। पट्टावली में उनके लिये लिखा है कि वह "छन्द–अलकारादिशास्त्र–समुद्र के पारगामी, शुद्धात्मा के स्वरुप चिन्तन करने ही से निन्द्रा को विनप्ट करने वाले सब देशो में विहार करने से अनेक कल्याणो को पाने वाले, विवेक, विचार, चतुरता, गम्भीरता, धीरता, वीरता, और गुणगण के समुद्र, उत्कृप्ट पात्र वाले, अनेक छात्रो का पालन करने वाले, सभी विद्वत्मण्डली मे सुशोभित शरीर वाले, गौडवादियो के अन्धकार के लिये सूर्य के से, कलिगवादिरुपी मेघ के लिये वायु के से, कर्णाटवादियो के प्रथम वचन खण्डन करने में परम समर्थ, पूर्ववादी रुपी मातग के लिए सिंह के से, तौलवादियो की विडम्वना के लिए वीर, गुर्जरवादी रुपी समुद्र के लिए अगस्त्य के से, मालववादियों के लिये मस्तकशूल, अनेक अभिमानियों के गर्व का नाश करने वाले, स्वसमय तथा परसमय के शास्त्रार्थ को जानने वाले और महाव्रत अगीकार करने वाले थे।"[२]

वारानगर का दिगम्बर संघ

उज्जैन के उपरान्त दिगम्बर मुनियो का केन्द्र विन्धायचल पर्वत के निकट स्थित वारानगर नामक स्थान हो गया था।[१] वारा प्राचीन काल से ही जैन धर्म का एक गढ़ था। आठवी या नवी शताब्दि में वहाँ श्री पद्मनन्दि मुनि ने 'जम्वूद्वीप प्रज्ञप्ति' की

---

१. जैसिभा , भाग १, किरण ४, पृ. ४८–४९।

२. जैसिभा., भा १, कि ४, पृ ४९–५०।

"छन्दालंकारादि–शास्त्रसरित्पतिपारप्राप्ताना शुद्धचिद्रूपचिंतन विनाशिनिद्राणां, सर्वदेशविहारावाप्तानेकभद्रणा, विवेकविचार–चातुर्य्यगुणगणसमुद्राणा, उत्कृष्टपात्राणा, पालितानेक–श्च्छात्राणा, विहितानेकोत्तमपात्राणाम् सकलविद्वज्जनसभाशोभितगात्राणा, गौडवादितम· सूर्य्य, कलिंगवादिजलदसदागंति, कर्णाटवायिडम्वनवीर गुर्जर वादिसिन्धुकुम्भोद्‌भव, मालववादिमस्तकशूल, जितानेकाखर्वगर्वत्राटन वज्रधराणा, ज्ञानसकलस्वसमयपरसमय–शाम्त्रार्थाना, अंगीकृतमहाव्रतानाम्।"

रचना की थी। इस ग्रथ की प्रशस्ति मे लिखा है कि "वारानगर में शांति नामक राजा का राज्य था। वह नगर धनधान्य से परिपूर्ण था। सम्यग्दृष्टि जनो से, मुनियो के समूह से और जैन मन्दिरो से विभूषित था। राजा शान्ति जिनशासनवत्सल, वीर और नरपति सपूजित था। श्री पद्मनन्दि जी ने अपने गुरु व अन्य रूप इन दिगम्बर मुनियो का उल्लेख किया है: वीरनन्दि[2], बलनन्दि, ऋषिविजयगुरु, माघनन्दि, सकलचन्द्र और श्रीनन्दि। इन्ही ऋषियो की शिष्य परम्परा मे उपरान्त वारानगर में निम्नलिखित दिगम्बराचार्यों का अस्तित्त्व रहा था[3]–

माघचन्द्र	सन् १०८३
ब्रह्मनन्दि	सन् १०८७
शिवनन्दि	सन् १०९१
विश्वचन्द्र	सन् १०९८
हरिनन्दि(सिहनन्दि)	सन् १ ०९९
भावनन्दि	सन् ११०३
देवनन्दि	सन् १११०
विद्याचन्द्र	सन् १११३
सूरचन्द्र	सन् १११९
माघनन्दि	सन् ११२७
ज्ञाननन्दि	सन् ११३१
गगकीत्ति	सन् ११४२

१ JAXX 353–354

२ "सिरिनिओ गुणसहिओ रिसिविजय गुरुत्ति विक्खाओ।"
"तब सजमसपण्णो बिक्खाओ माघनन्दिगुरु।"
"णवणियमसीलकलिदो गुणवत्तो सयलचन्द गुरु।"
"तस्सेव य वरसिस्सो णिम्मलवरणाणचरण सजुत्तो।"
सम्मद्दसणसुद्धों सिरिणगुरुत्ति बिक्खाओ। १५६।"
"पचाचार समग्गो छज्जीवदयावरो विगदमोहो।
हरिस–विसाय–विहूणा णामेणा य वीरणदित्ति ।।१५९।।"
"सम्मत अभिगदमणों णाणेण तह दसणे चरित्ते य।
परततिणियत्रमणों बलणदि गुरुत्ति बिक्खाओ।।१६१।।
तवणियमजोगजुत्तो ठज्जुत्तो णाणदसण चरित्ते।
आरम्भकरण रहियो णामणे य पउ मणंदीत्ति।।१६३।।"
"सिरि गुरुविजय सयासे सोऊण आगम सुपरिसुद्ध।"
"जिणसासणवच्छलो वीरो–णरवइ सपूजिओ–वाराणयरस्त पहु णरोत्तमोखत्ति भूपालो सम्मदिट्ठिजणोधे मुणिगणणिवहेहि मडिय रस्मे। इत्यादि
–जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति, जैसा स , भाग १, अक ४, पृ १५०

३ जैहि , भा ६, अक७–८, पृ ३१ व IA.XX 354

इन दिगम्बराचार्यो द्वारा उस समय मध्यप्रदेश मे जैन धर्म का खूब प्रचार हुआ था।

वि. सं. १०२५ मे अल्लू राजा नामक राजा की सभा मे दिगम्बराचार्य का वाद एक श्वेताम्बर आचार्य से हुआ था।[१]

चन्देल राज्य में दिगम्बर मुनि

चन्देल राजा मदनवर्म देव के समय (११३०-११६५ ई.) मे दिगम्बर धर्म उन्नत रुप मे रहा था।[२] खजुराहो के घटाई के मन्दिर वाले शिलालेख से उस समय दिगम्बराचार्य नेमिचन्द्र का पता चलता है।[३]

दिगम्बर जैन धर्म का आदर था। बीजोलिया के श्री पार्श्वनाथ जी के मन्दिर को दिगम्बर मुनि पद्मनन्दि और शुभचन्द्र के उपदेश से पृथ्वीराज ने मोराकुरी गॉव और सोमेश्वर राजा ने रेवाण नामक गॉव भेट किये थे।[६]

चित्तौड़ का जैनकीर्ति स्तम्भ वहॉ पर दिगम्बर जैन धर्म की प्रधानता का द्योतक है। सम्राट कुमारपाल के समय वहॉ पहाड़ी पर बहुत से दिगम्बर जैन (मुनि) थे।[७]

दिगम्बर जैनाचार्य श्री धर्मचन्द्र जी का सम्मान और विनय महाराणा हम्मीर किया करते थे।

झांसी जिले का देवगढ़ नामक स्थान भी मध्यकाल मे दिगम्बर मुनियो का केन्द्र था। वहॉ पॉचवी शताब्दि से तेरहवी शताब्दि तक का शिल्प कार्य दिगम्बर धर्म की प्रधानता का द्योतक है।

---

१. ADJB p.45.
२ विको , भा. ७, पृ. १९२।
३ विको., भा. ५, पृ. ६८०।
४. ADJB.p.86.
५ उपदेशेन ग्रथोऽय गुणकीर्ति महामुने.।
कायस्थ पद्मनाभेन रचितः पूर्व्व सूत्रत । —यशोधर चरित्र
६ राइ , भा. १, पृ ३६३।
७ It (जैन कीर्त्तिस्तम्भ) belongs to the Digamber Jains: many of whom seem to have been upon the Hill in Kumarpal's time." —मप्राजैस्मा. पृ १३५
८ "श्री धर्मचन्द्रोऽजनितस्यपट्टे हमीर भूपाल समर्चनीय.।

ग्वालियर मे कच्छपघाट (कछवाहे) और पड़िहार राजाओ के समय मे दिगम्बर जैन धर्म उन्नत रहा था। ग्वालियर किले की नग्न जैन मूर्तियाँ इस व्याख्या की साक्षी हैं। वारानगर के बाद दिगम्बर मुनियो का केन्द्र स्थान ग्वालियर हुआ था और वहाँ के दिगम्बर मुनियो में स. १२९६ मे आचार्य रत्नकीर्ति प्रसिद्ध थे। वह स्याद्वाद विद्या के समुद्र, बालब्रह्मचारी, तपसी और दयालु थे। उनके शिष्य नाना देशो में फैले हुये थे।

मध्यप्रान्त के प्रसिद्ध हिन्दू शासक कलचूरी भी दिगम्बर जैन धर्म के आश्रयदात थे।

बगाल मे भी दिगम्बर धर्म इस समय मौजूद था, यह बात जैन कथाओ से स्पष्ट है। 'भक्तामरकथा' में चम्पापुर का राजा कर्ण जैनी लिखा है। भगवान महावीर की जन्मनगरी विशाला का राजा लोकपाल जैनी था। पटना का राजाधात्रीवाहन श्री शिवभूषण नामक मुनि के उपदेश से जैनी हुआ था। गौड़ देश का राजा प्रजापति बौद्धधर्मी था, परन्तु जैन साधु मतिसागर की वाद शक्ति पर मुग्ध होकर प्रजा सहित जैनी हुआ था।[२] इस समय का जो जैन शिल्प बगाल आदि प्रान्तो में मिलता है, उस से उक्त कथाओ का समर्थन होता है।

आज तक बगाल मे प्राचीन श्रावक 'सराक' लोगो का बड़ी सख्या मे मिलना वहाँ पर एक समय दिगम्बर जैन धर्म की प्रधानता का द्योतक है।

इस प्रकार मध्यकाल के हिन्दु राज्यो में प्राय॰ समग्र उत्तर भारत में दिगम्बर मुनियो का विहार और धर्मप्रचार होता था। आठवी शताब्दि के उपरान्त जब दक्षिण भारत मे दिगम्बर जैनो के साथ अत्याचार होने लगा, तो उन्होंने अपना केन्द्रस्थान उत्तर भारत की ओर बढ़ाना शुरु कर दिया था। उज्जैन, वारानगर, ग्वालियर आदि स्थानो का जैन केन्द्र होना, इस ही बात का द्योतक है। ईस्वी ९-१० शताब्दि में जब अरब का सुलेमान नामक यात्री भारत में आया तो उसने भी यहाँ नगे साधुओ को एक बड़ी सख्या मे देखा था।[३] सारांशतः मध्यकालीन हिन्दू काल मे दिगम्बर मुनियो का भारत मे बाहुल्य था।

---

१. जैहि , भा ६, अक ७-८, पृ. २६।

२. जैप्र., पृ २४०-२४३।

३ "In India there are persons, who, in accordance with their profession, wander in the woods and mountains and rearely communicate with the rest of mankind Some of them go about naked"

—Sulaiman of Arab, Elliot, I p 6.

[२०]

भारतीय संस्कृत साहित्य में दिगम्बर मुनि

"पाणिः पात्र पवित्रं भ्रमणपरिगत भैक्षमक्षय्यमन्न।
विस्तीर्ण वस्त्रमाशा सुदशकममल तल्पमस्वल्पमुर्वी।।
येषां निःसङ्गताङ्गी करणपरिणतिः स्वात्मसन्तोषितास्ते।
धन्याः सन्यस्तदैन्यव्यतिकरनिकराः कर्मनिर्मूलयन्ति।।"

वैराग्यशतक"

भारतीय सस्कृत साहित्य में दिगम्बर मुनियो के उल्लेख मिलते हैं। इस साहित्य से हमारा मतलब उस सर्वसाधारणोपयोगी सस्कृत साहित्य से है जो किसी खास सम्प्रदाय का नही कहा जा सकता। उदाहरणतःकविवर भर्तुहरि के शतकत्रय को लीजिये। उनके 'वैराग्यशतक' मे उपर्युक्त श्लोक द्वारा दिगम्बर मुनि की प्रशसा इन शब्दो में की गई है कि "जिनका हाथ ही पवित्र बर्तन है, मॉग कर लाई हुई भीख ही जिनका भोजन है, दशो दिशाये ही जिनके वस्त्र है, सम्पूर्ण पृथ्वी ही जिनकी शय्या है, एकान्त में निःसग रहना ही जो पसन्द करते हैं, दीनता को जिन्होने छोड़ दिया है तथा कर्मो को जिन्होने निर्मूल कर दिया है और जो अपने मे ही सतुष्ट रहते हैं, उन पुरुषो को धन्य है।"[1] आगे इसी शतक मे कविवर दिगम्बर मुनिवत् चर्या करने की भावना करते हैं-

अशीमहि वय भिक्षामाशावासोवसीमहि।
शयीमहि महीपृष्ठे कुर्वीमहि किमीश्वरैः।।९०।

अर्थात् "अब हम भिक्षा ही करके भोजन करेगे, दिशा ही के वस्त्र धारण करेगे अर्थात् नग्न रहेगे और भूमि पर ही शयन करेगे। फिर भला हमें धनवानो से क्या मतलब?"[2]

इस प्रकार के दिगम्बर मुनि को कवि क्षमादि गुणलीन अभय प्रकट करते हैं-

१. वेजै., पृ.४६।
२. वेजै , पृ. ४७।

धैर्य यस्य पिता क्षमा व जननी शान्तिश्चिर गेहिनी।
सत्य-मित्रमिद दया च भगिनी भ्रातामनः सयमः।।
शय्या भूमितल दिशोऽपि वसन ज्ञानामृत भोजन।
ह्येते यस्य-कुटबिनो वद सखे कस्माद् भय योगिनः।।९८।।

अर्थात- "धैर्य जिसका पिता है, क्षमा जिसकी माता है, शान्ति जिसकी स्त्री है, सत्य जिसका मित्र है, दया जिसकी बहिन है, सयम किया हुआ मन जिसका भाई है, भूमि जिसकी शय्या है, दशो दिशाये ही जिसके वस्त्र है और ज्ञानामृत ही जिसका भोजन है- यह सब जिसके कुटुम्ब हो, भला उस योगी पुरुष को किसका भय हो सकता है?"[१]

'वैराग्यशतक' के उपर्युक्त श्लोक स्पष्टतया दिगम्बर मुनियो को लक्ष्य करके लिखे गये हैं। इनमे वर्णित सब ही लक्षण जैन मुनियो में मिलते हैं।

'मुद्राराक्षस' नाटक में क्षपणक जीवसिद्धि का पार्ट दिगम्बर मुनि का द्योतक है।[२] वहाँ जीवसिद्धि के मुख से कहलाया गया है-

"सासणमलिहताण पडिवज्जह मोहवाहि वेज्जाण।
जेमुत्तमात्तकडुअं पच्छापत्थमुपदिसन्ति ।।१८।।४।।"

अर्थात्- "मोह रूपी रोग के इलाज करने वाले अर्हतो के शासन को स्वीकार करो, जो मुहूर्त मात्र के लिये कडूवे है, किन्तु पीछे से पथ्य का उपदेश देते हैं।"

इस नाटक के पाँचवे अक मे जीवसिद्धि कहता है कि-

"अलहताण पणमामि जेदेगभीलदाए बुद्धिए।
लोउत लेहि लोए सिद्धिं मग्गेहि गच्छन्दि।।२।।"

भावार्थ- "ससार में जो बुद्धि की गभीरता से लोकातीत (अलौकिक) मार्ग से मुक्ति को प्राप्त होते हैं, उन अर्हतो को मैं प्रणाम करता हूँ।"[३]

'मुद्राराक्षस' के इस उल्लेख से नन्दकाल मे क्षपणक-दिगम्बर मुनियो के निर्वाध विहार और धर्म प्रचार का समर्थन होता है, जैसा कि पहले लिखा जा चुका है।

'वराहमिहिर सहिता' मे भी दिगम्बर मुनियो का उल्लेख है। उन्हें वहाँ जिन भगवान् का उपासक बताया गया है।"[४] वराहमिहिर के इस उल्लेख से उनके समय मे दिगम्बर मुनियो का अस्तित्व प्रमाणित होता है। अर्हत् भगवान् की मूर्ति को भी वह नग्न ही बताते हैं।"[५]

---

१ वेजै पृ ४७।
२. HDW p 10
३ वेजै., पृ.४०-४१।
४ "शाक्यान् सर्वहितस्य शाति मनसो नग्नान् जिनाना विदु'." ।।१९।।६१।।
५ "आजानु लम्बबाहु. श्रीवत्साङ्क प्रशान्तमूर्तिश्च।
दिग्वासास्तरुणो रुपवाश्च कार्योऽर्हता देव ।।४५।।५८।।
वराहमिहिर सहिता

कवि दण्डिन् (आठवीं श.) अपने "दशकुमारचरित" मे दिगम्बर मुनि का उल्लेख 'क्षपणक' नाम से करते है, जिससे उनके समय में नग्न मुनियों का होना प्रमाणित है।"[1]

'पचतन्त्र' (तत्र ४) का निम्न श्लोक उस काल में दिगम्बर मुनियों के अस्तित्त्व का द्योतक है[2]।

"स्त्रीमुद्रां मकरध्वजस्य जयिनी सर्वार्थ सम्पत् करी।
ये मूढ़ाः प्रविहाय यान्ति कुधियो मिथ्या फलांवेषिणः।।
ते तेनैव निहत्य निर्दयतरं नग्नीकृता मुण्डिताः।
केचिद्रक्तपटीकृताश्च जटिलाः कापालिकाश्चापरे।।"

"पचतन्त्र के "अपरीक्षितकारक पंचमतंत्र" की कथा दिगम्बर मुनियों से सम्बन्ध रखती है। उससे पाटलिपुत्र (पटना) में दिगम्बर धर्म के अस्तित्त्व का बोध होता है। कथा में एक नाई को क्षपणक विहार में जाकर जिनेन्द्र भगवान् की वंदना और प्रदक्षिणा देते लिखा है। उसने दिगम्बर मुनियों को अपने यहाँ निमन्त्रित किया, इस पर उन्होंने आपत्ति की कि श्रावक होकर यह क्या कहते हो? ब्राह्मणों की तरह यहाँ आमत्रण कैसा? दिगम्बर मुनि तो आहार-वेला पर घूमते हुये भक्त श्रावक के यहाँ शुद्ध भोजन मिलने पर विधिपूर्वक ग्रहण कर लेते हैं।[3] इस उल्लेख से दिगम्बर मुनियों के निमन्त्रण स्वीकार न करने और आहार के लिये भ्रमण करने के नियम का समर्थन होता है। इस तंत्र में भी दिगम्बर मुनि को एकाकी, गृहत्यागी, पाणिपात्र भोजी और दिगम्बर कहा गया है।[4]

"प्रबोधचंद्रोदय" नाटक के अंक ३ में निम्नलिखित वाक्य दिगम्बर जैन मुनि की तत्कालीन बाहुल्यता के बोधक हैं-

"सहि पेक्ख पेक्ख एसो गलण्तमल पंक पिच्छिलबीहच्छदेहच्छवीउल्लुञ्चि अचिउरो मुक्कवसणवेसदुद्दसणों सिहिसिहिदपिच्छआहत्थो इदोज्जेव पडिवहदि।"

भवार्थ- "हे सखि देख देख, वह इस ओर आ रहा है। उसका शरीर भयंकर और मलाच्छन्न है। सिर के बाल लुञ्चित किये हुये है और वह नंगा है। उसके हाथ में मोरपिच्छिका है और वह देखने में अपनोज है।

---

१. वीर, वर्ष २, पृ. ३१७।
२. पंत. निर्णयसागर प्रेस सं. १९०२, पृ. १९४ व JG.XIV, 124
३. 'क्षपणकविहारं गत्वा जिनेन्द्रस्य प्रदक्षिणत्रय विधाय .... भोः श्रावक, धर्मज्ञोऽपि किमेवं वदसि। किं वयं ब्रह्मणसमाना. यत्र आमन्त्रणं करोषि। वयं सदैव तत्काल परिचर्यया भ्रमन्तो भक्तिभाजं श्रावकमवलोक्य तस्य गृहे गच्छामः। -पंत,पृ.-२-६ व JG.XIV. 126-130
४. 'एमाकीगृहसंत्यक्तः पाणिपात्रो दिगम्बर.।

इस पर उस सखी ने कहा कि–

"आं ज्ञातमया, महामोहप्रवर्त्तितोऽयदिगम्बर सिद्धांतः।"

(तत· प्रविशतियथा निर्दिदष्ट· क्षपणकवेशो दिगम्बर सिद्धांत·)

भावार्थ– मैं जान गई! यह मायामोह द्वारा प्रवर्तित दिगम्बर (जैन) सिद्धान्त है।" (क्षपणक वेष मे दिगम्बर मुनि ने वहाँ प्रवेश किया।)[१]

नाटक के उक्त उल्लेख से इस बात का भी समर्थन होता है कि दिगम्बर मुनि स्त्रियो केसम्मुख घरो मे भी धर्मोपदेश के लिये पहुँच जाते थे।

"गोलाध्याय" नामक ज्योतिष ग्रन्थ मे दिगम्बर मुनियो की दो सूर्य और दो चन्द्रादि विषयक मान्यता का उल्लेख करके उसका निरसन किया गया है। इस उल्लेख से 'गोलाध्याय' के कर्ता के समय में दिगम्बर मुनियो का बाहुल्य प्रमाणित होता है। 'गोलाध्याय के टीकाकार लक्ष्मीदास दिगम्बर सम्प्रदाय से भाव "जैनो" का प्रकट करते है और कहते है कि "जैनो मे दिगम्बर प्रधान थे।"[२]

सस्कृत साहित्य के उपर्युक्त उल्लेखो से दिगम्बर मुनियो के अस्तित्त्व और उनके निर्बाध विहार और धर्म प्रचार का समर्थन होता है।

---
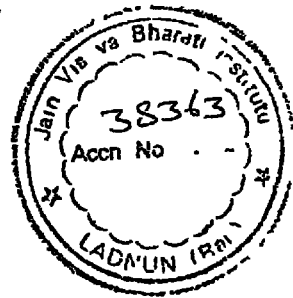
१ प्रबोधचन्द्रोदय नाटक, अक– JG, XIV, pp 46–50

2 (Goladhyay 3 Verses 8–10) The naked sectarians and the rest affirm that two suns, two moons and two sets of stars appear alternately· against them allege this reasoning. How absurd is the notion which you have formed of duplicate suns, moons and stars, when you see the revolution of the polar fish (Ursa Minor) The commentator Lakshamidas agree that the Jainas are here meant & remarks that they are described as 'naked sectrains' etc because the class of Digambaras is a principal one among these people –AR Vol IX. p 317

[२१] दक्षिण भारत में दिगम्बर जैन मुनि

"सरसा पयसा रिक्तेनाति तुच्छजलेन च।
जिनजन्मादिकल्याण क्षेत्रे तीर्थत्वमाश्रिते।।४०।।
नाशमेष्यति सद्धर्मो मारवीर मदच्छिदः।
स्थास्यतीह क्वचित्प्रान्ते विपये दक्षिणादिके।।४१।।"

—श्री भद्रबाहुचरित्र

दिगम्बर जैन धर्म दक्षिण भारत मे रहना निश्चित है

दिगम्बर जैनाचार्य, राजा चन्द्रगुप्त ने जो स्वप्न देखा उसका फल बताते हुये कह गये है कि "जलरहित तथा कहीं थोड़े जल भरे हुये सरोवर के देखने से यह सच जानो कि जहाँ तीर्थंकर भगवान् के कल्याणादि हुये हैं ऐसे तीर्थ स्थानों में कामदेव के मद का छेदन करने वाला उत्तम जिन धर्म नाश को प्राप्त होगा तथा कहीं दक्षिणादि देश में कुछ रहेगा भी।"[१] और दिगम्बरचार्य की यह भविष्यवाणी करीव-करीव ठीक ही उतरी है, जवकि उत्तर भारत में कभी-कभी दिगम्बर मुनियों का अभाव भी हुआ, तव दक्षिण भारत में आज तक वरावर दिगम्बर मुनि होते आये हैं और दिगम्बर जैनों के श्री कुन्दकुन्दादि वड़े-वड़े आचार्य दक्षिण भारत में ही हुये हैं। अतः दक्षिण भारत को दिगम्बर मुनियों का गढ़ कहना वेजा नहीं है।

ऋषभदेव और दक्षिण भारत

अच्छा तो यह देखिये कि दक्षिण भारत में दिगम्बर मुनियों का सद्भाव किस जमाने से हुआ है? जैन शास्त्र वतलाते है कि इस कल्पकाल में कर्मभूमि की आदि में श्री ऋषभदेव जी ने सर्वप्रथम धर्म का निरूपण किया था और उनके पुत्र वाहुवलि दक्षिण भारत के शासनाधिकारी थे। पोदनपुर उनकी राजधानी थी। भगवान् ऋषभदेव ही सर्वप्रथम वहाँ धर्मोपदेश देते हुये पहुंचे थे।[२] वह दिगम्बर मुनि थे, यह पहले ही लिखा जा चुका है। उनके समय में ही वाहुवलि भी राज-पाट छोड़कर दिगम्बर मुनि हो गये थे। इन दिगम्बर मुनि की विशालकाय नग्न मूर्तियाँ दक्षिण भारत में अनेक स्थानों पर आज भी मौजूद हैं। श्रवणवेलगोल में स्थित मूर्ति ५७ फीट ऊँची अति मनोज्ञ है; जिसके दर्शन करने देश-विदेश के यात्री आते है। कारकल-वेनूर आदि स्थानों में भी ऐसी ही मूर्तियाँ है। दक्षिण भारत में वाहुवलि मुनिराज की विशेष मान्यता है।[१]

---

१. भद्र., पृ. ३३।

२. आदिपुराण।

अन्य तीर्थंकरों का दक्षिण भारत से सम्बन्ध

ऋषभदेव के उपरान्त अन्य तीर्थंकरो के समय में भी दिगम्बर धर्म का प्रचार दक्षिण भारत में रहा था। तेईसवें तीर्थकर श्री पार्श्वनाथ जी के तीर्थ में हुये राजा करकण्डु ने आकर दक्षिण भारत के जैन तीर्थों की वन्दना की थी। मलय पर्वत पर रावण के वशजो द्वारा स्थापित तीर्थकरो की विशाल मूर्तियो की भी उन्होंने वन्दना की थी।[२] वही बाहुबलि की और श्री पार्श्वनाथ जी की मूर्तियाँ थीं जिनको रामचन्द्र जी ने लका से लाकर यहाँ स्थापित किया था।[३] अन्तिम तीर्थकर भगवान् महावीर ने भी अपने पुनीत चरणो से दक्षिण भारत को पवित्र किया था। मलय पर्वतवर्ती हेमॉग देश में जब वीर प्रभु पहुँचे थे तो वहाँ का जीवन्धर नामक राजा उनके निकट दिगम्बर मुनि हो गया था।[४] इस प्रकार अत्यन्त प्राचीनकाल से दिगम्बर मुनियो का सद्भाव दक्षिण भारत में है।

दक्षिण भारत के इतिहास के काल

किन्तु आधुनिक- इतिहासवेत्ता दक्षिण भारत का इतिहास ईस्वी पूर्व छठी या चौथी शताब्दि से आरम्भ करते है और उसे निम्न प्रकार छह भागो में विभक्त करते हैं-

(१) प्रारम्भिक काल- ईस्वी ५वी शताब्दि तक।

(२) पल्लवकाल- ई. ५वीं से ९ वी शताब्दि तक,

(३) चोल अभ्युदाय काल - ई.९वी १४वी शताब्दि तक,

(४) विजयनगर साम्राज्य का उत्कर्ष- १४वी से १६ वी शताब्दि तक,

(५) मुसलमान और मरहट्टा काल- १६वी से १८वी शताब्दि तक,

(६) ब्रिटिश काल- १८वी से १९ वी शताब्दी ई. तक।

दक्षिण भारत के उत्तर सीमावर्ती प्रदेश के इतिहास के छह भाग इस प्रकार हैं-

(१) आन्ध्र काल- ई.५वी शताब्दि तक,

(२) प्रारम्भिक चालुक्य काल-ई.५वी से ७वी शताब्दि और राष्ट्रकूट ७वीं से १० वी शताब्दि तक,

(३) अन्तिम चालुक्य काल- ई.१०वी से १४वी शताब्दि तक,

---

१. जैशिसं., भूमिका, पृ. १७-३२।
२ करकण्डु चरित् सधि ५।
३. जैशिस भूमिका, पृ २६।
४ भमवु.,पृ. ९६।
५. SAI p.31

(४) विजयनगर साम्राज्य

(५) मुसलमान–मरहट्टा,

(६) ब्रिटिश काल।

प्रारम्भिक काल मे दिगम्बर मुनि

अच्छा तो उपर्युक्त ऐतिहासिक कालो मे दिगम्बर जैन मुनियो के अस्तित्व को दक्षिण भारत मे देख लेना चाहिये। दक्षिण भारत के "प्रारम्भिक काल" मे चेर, चोल, पाण्ड्य– यह तीन राजवश प्रधान थे।[१] सम्राट अशोक के शिलालेख मे भी दक्षिण भारत के इन राजवशों का उल्लेख मिलता है।[2] चेर, चोल और पाण्ड्य यह तीनो ही राष्ट्र प्रारम्भ से जैनधर्मानुयायी थे।[3] जिस समय करकण्डु राजा सिहल द्वीप से लौटकर दक्षिण भारत–द्रविड़ देश मे पहुंचे तो इन राजाओ से उनकी मुठभेड़ हुई थी। किन्तु रणक्षेत्र मे जब उन्होने इन राजाओ के मुकुटो में जिनेन्द्र भगवान की मुर्तियाँ देखी तो उनसे सन्धि कर ली।[४] कलिगचक्रवर्ती ऐल. खारवेल जैन थे। उनकी सेवा मे इन राजाओ मे से पाण्ड्यराज ने स्वतः राज–भेट भेजी थी।[५] इससे भी इन राजाओ का जैन होना प्रमाणित है, क्योकि एक श्रावक का श्रावक के प्रति अनुराग होना स्वाभाविक है और जब ये राजा जैन थे तब इनका दिगम्बर जैन मुनियो को आश्रय देना प्राकृत आवश्यक है।

पाण्ड्यराज उग्रपेरूवलूटी (१२८–१४० ई.) के राजदरबार में दिगम्बर जैनाचार्य श्री कुन्दकुन्द विरचित तमिलग्रथ "कुर्रल" प्रकट किया गया था [६]। जैन कथाग्रंथ से उस समय दक्षिण भारत मे अनेक दिगम्बर मुनियो का होना प्रकट है। 'करकण्डु चरित्' में कलिग, तेर, द्रविड़ आदि दक्षिणावर्ती देशो में दिगम्बर मुनियो का वर्णन मिलता है। भगवान् महावीरने सघ सहित इन देशो मे विहार किया था, यह ऊपर लिखा जा चुका है तथा मौर्य चन्द्रगुप्त के समय श्रुतकेवली भद्रबाहु का सघ सहित दक्षिण भारत को जाना इस बात का प्रमाण है कि दक्षिण भारत में उनसे

---

१ S A.I.p 33

२. त्रयोदश शिलालेखं।

३ "Pandya Kingdom can boast of respectable antiquity The prevailing religion in early times in their Kingdom was jain creed"

— मजैस्मा पृ.१०५

४ "तहि अत्थि विकितिय दिणसराठ–सचल्लिउ ताकरकण्डु राउ।
तादिविड्देसुमहि अलु भमन्तु–संपतऊ तहिं मछरूवहन्तु।।
तहिं चोडे चोर पडिय णिवाई–केणा विखणद्वेते मिलीयाहि।
"करकण्डएं धरियाते सिरसो सिरमउड मत्ति वरणेहिं तहो।
मउड महि देखिवि जिणपणिव करकण्डवोजायउ बहुलु दुहु ।।१०।।

— करकण्डुचरित् सन्धि ८

५ JBORS. III. p.446

६. मजैस्मा., पृ.१०५।

पहले दिगम्बर जैन धर्म विद्यमान था। जैनग्रथ "राजावली कथा" मे वहाँ दिगम्बर जैन मन्दिरो और दिगम्बर मुनियो के होने का वर्णन मिलता है। बौद्ध ग्रथ 'मणिमेखलै' मे भी दक्षिण भारत मे ईस्वी की प्रारम्भिक शताब्दियों में दिगम्बर धर्म और मुनियो के होने का उल्लेख मिलता है।[१]

"श्रुतावतार कथा" से स्पष्ट है कि ईस्वी की पहली शताब्दि मे पश्चिम और दक्षिण भारत जैनधर्म के केन्द्र थे। श्रीधरसेनाचार्य जी का सघ गिरनार पर्वत पर उस समय विद्यमान था। उनके पास आगम ग्रथो को अवधारण करनेके लिये दो तीक्ष्ण-बुद्धि शिष्य दक्षिण मथुरा से उनके पास आये थे और तदोपरान्त उन्होंने दक्षिण मथुरा में चतुर्मास व्यतीत किया था। इस उल्लेख से उस समय दक्षिण मदुरा का दिगम्बर मुनियो का केन्द्र होना सिद्ध है।[२]

'नालदियार' और दिगम्बर मुनि

तमिल जैन काव्य "नालदियार", जो ईस्वी पाँचवी शताब्दि की रचना है, इस बातका प्रमाण है कि पाण्ड्यराज का देश प्राचीनकाल में दिगम्बर मुनियोका आश्रय स्थान था। स्वय पाण्ड्यराज दिगम्बर मुनियो के भक्त थे। "नालदियार" की उत्पत्ति के सम्बन्ध मे कहा जाता है कि एक बार उत्तर भारत मे दुर्भिक्ष पड़ा। उससे बचने के लिये आठ हजार दिगम्बर मुनियो का सघ पाण्ड्य देश मे जा रहा था, पाण्ड्यराज उनकी विद्वत्ता और तपस्या को देखकर उनका भक्त बन गया। जब अच्छे दिन आये तो इस सघ ने उत्तर भारत की ओर लौट जाना चाहा, किन्तु पाण्ड्यराज उनकी सत्संगति छोड़ने के लिये तैयार न थे। आखिर उस मुनि सघ का प्रत्येक साधु एक-एक श्लोक अपने-अपने आसन पर लिखा छोडकर विहार कर गये। जब ये श्लोक एकत्र किये गये तो वह सग्रह एक अच्छा खासा काव्य ग्रथ बन गया। यही 'नालदियार' था।[३] इससे स्पष्ट है कि पाण्ड्य देश उस समय दिगम्बर जैन धर्म का केन्द्र था और पाण्ड्यराज कलभ्रवश के सम्राट् थे। यह कलभ्रवश उत्तर भारत से दक्षिण में पहुँचा था और इस वश के राजा दिगम्बर मुनियो के भक्त और रक्षक थे।[४]

गंग वंश के राजा और दिगम्बर मुनिगण

ईस्वी दूसरी शताब्दी मे मैसूर मे गगवशी क्षत्रिय राजा माधव कोंगुणिवर्मा राज्य कर रहे थे।[५] उनके गुरु दिगम्बर जैनाचार्य सिहनन्दि थे। गगवश की स्थापना में उक्त

---

१. SSIJ. pp.32-33

२ श्रुता ,पृ १६-२०।

३. SSIJ p 91

४ मजैस्मा भूमिका, पृ ८-९।

५ रश्रा परिचय पृ १९५

आचार्य का गहरा हाथ था। शिलालेखों से प्रकट है कि इक्ष्वाकु (सूर्यवंश) के राजा धनञ्जय की सन्तति में एक गगदत्त नाम का राजा प्रसिद्ध हुआ और उसी के नाम से इस वंश का नाम 'गंग' वंश पड़ा था। इस गंग वंश में एक पद्मनाभ नामक राजा हुआ, जिसका झगड़ा उज्जैन के राजा महीपाल से होने के कारण वह दक्षिण भारत की ओर चला गया था। उसके दो पुत्र ददिग और माधव भी उसके साथ गये थे। दक्षिण में पेखूर नामक स्थान पर उन दोनों भाइयों की भेंट कणूवगण के आचार्य सिंहनन्दि से हुई, जिन्होंने उन्हें निम्न प्रकार उपदेश दिया था-

"यदि तुम अपनी प्रतिज्ञा भग करोगे, यदि तुम जिन शासन से हटोगे, यदि तुम पर-स्त्री का ग्रहण करोगे, यदि तुम मद्य व माँस खाओगे, यदि तुम अधर्मों का संसर्ग करोगे, यदि तुम आवश्यकता रखने वालों को दान न दोगे और यदि तुम युद्ध में भाग जाओगे तो तुम्हारा वश नष्ट हो जायेगा।[१]

दिगम्बराचार्य के इस साहस बढ़ाने वाले उपदेश को ददिग और माधव ने शिरोधार्य किया और उन आचार्य के सहयोग से वह दक्षिण भारत में अपना राज्य स्थापित करने में सफल हुये थे। तदोपरान्त इस वश के सभी राजाओ ने जैन धर्म का प्रभाव बढ़ाने का उद्योग किया था। दिगम्बर जैनाचार्य की कृपा से राज्य पा लेने की याददाश्त में इन्होने अपनी ध्वजा में "मोरपिच्छिका" का चिन्ह रखा था, जो दिगम्बर मुनियो के उपकरणों में से एक है।

कादम्ब राजागण दिगम्बर मुनियों के रक्षक थे

गंगवंशी अविनीत कोगुणी (सन् ४२५-४७८) ने पुन्नाट १०००० में जैन मुनियों को भूमिदान दिया था। गंगवशी दुर्वनीति के गुरु 'शब्दावतार' के कर्ता दिगम्बराचार्य श्री पूज्यपाद थे।[२] महाराष्ट्र और कोकण देशों की ओर उस समयकादम्ब वंश के राजा लोग उन्नत हो रहे थे। वह वश (१) गोआ और (२) बनवासी नामक दो शाखाओं में बटा हुआ था और इसमें जैन धर्म की मान्यता विशेष थी। दिगम्बर गुरुओ की विनय कादम्ब राजा खूब करते थे। एक विद्वान् लिखते हैं कि-

"Kadamba kings of the middle period Mrigesa to Harivarma were unable to resist the onset of Jainism: as they had to bow to the "Supreme Arhats" and endow lavishly the Jain ascetic groups Numerous sect of Jaina priests, such as the Yapiniyas the, Nirgranthas and the Kurchakas

१. मजैस्मा., पृ.१४६-१४७।
२. मजैस्मा.,पृ.१४९।

are found living at Palasika (IA, VII. 36-37) Again vetpatas and Aharashti are also mentioned (bid VI,31) Banavase and Palasika were thus crowded centres of powerful Jain monks Four Jaina Miss named Jayadhavala, Vijaya Dhavala, Atidhavala and Mahadhavala writen byJains gurus Virasena and Jinasena living at Banavase during the rule of the early Kadambas were recently discovered"

– Q.JMS, XXII,61-62

अर्थात्– "मध्यकाल के मृगेश से हरिवर्मा एक कदम्ब वशी राजागण जैन धर्म के प्रभाव से अपने को बचा न सके। 'महान् अर्हतदेव' को नमस्कार करते और जैन साधु सघो को खूब दान देते थे। जैन साधुओ के अनेक सघ जैसे यापनीय[१] निर्ग्रंथ[२] और कूर्चक[३] कादम्बो की राजधानी पालाशिक मे रह रहे थे। श्वेतपट[४] और अहराष्टि[५] सघों के वहाँ होने का उल्लेख भी मिलता है। इस तरह पालाशिक और बनवासी सबल जैन साधुओ से वेष्टित मुख्य जैन केन्द्रथे। दिगम्बरजैन गुरु वीरसेनऔर जिनसेन ने जिन जयधवल, विजयधवल, अतिधवल और महाधवल नामक ग्रन्थो की रचना बनवासी मे रहकर प्रारभिक कदम्ब राजाओ के समय में की थी, उन चारो ग्रथो की प्रतियाँ हाल ही में उपलब्ध हुई है।"

प्रो. शेषागिरि राउ इन प्रारभिक कदम्बो को भी जैन धर्म का भक्त प्रकट करते हैं। उनके[६] राज्य मे दिगम्बर जैन मुनियो को धर्म प्रचार करने की सुविधाये प्राप्त थीं इस प्रकार कदम्बवशी राजाओ द्वारा दिगम्बर मुनियो का समुचित सम्मान किया गया था।

पल्लव काल मे दिगम्बर मुनि

एक समय पल्लव वश के राजा भी जैन धर्म के रक्षक थे। सातवी शताब्दी मे जब ह्वेनसांग इस देश में पहुचा तो उसने देखा कि यहाँ दिगम्बर जैन साधुओ (निर्ग्रंथो) की सख्या अधिक हैं। पल्लव वश के शिवस्कदवर्मा नामक राजा के गुरु[७] दिगम्बराचार्य कुन्दकुन्द थे। तदोपरान्त इस वश का प्रसिद्ध राजा महेन्द्रवर्मन् पहले जैन था और दिगम्बर साधुओ की विनय करता था।

---

१ यापनीय सघ के मुनिगण दिगम्बर वेष में रहते थे, यद्यपि वे स्त्री–मुक्ति आदि मानते थे। देखो दर्शनसार।

२. निर्ग्रंथ दिगम्बर मुनि।

३. 'कूर्चक' किन जैन साधुओ का द्योतक है, यह प्रगट नहीं है।

४. श्वेतपट–श्वेताम्बर।

५ अहराष्टि सभवत दिगम्बर मुनियों का द्योतक है। शायद 'अहनीक' शब्द से इसका निकास हो।

६. SSIJ Pt II.p 69 & 72

७ PS Hist Intro. p XV

८. E HI p 495

चोल देश मे दिगम्बर मुनि

चोल देश मे भी उस चीनी यात्री ने दिगम्बर धर्म को प्रचलित पाया था।[१] मलकूट (पाण्ड्य देश) मे भी उसने नंगे जैनियो को बहुसंख्या मे पाया था।[2] सातवी शताब्दि के मध्य भाग मे पाण्ड्य देश का राजा कुण या सुन्दर पाण्ड्य दिगम्बर मुनियो का भक्त था। उसके गुरु दिगम्बराचार्य श्री अमलकीर्ति थे[३] और उसका विवाह एक चोल राजकुमारी के साथ हुआ था, जो शैव थी। उसी के ससर्ग से सुन्दर पाण्ड्य भी शैव हो गया था।[४]

दसवीं शताब्दि तक प्रायः सब राजा दिगम्बर जैन धर्म के आश्रयदाता थे

सच बात तो यह है कि दक्षिण भारत में दिगम्बर जैन धर्म की मान्यता ईस्वी दसवी शताब्दि तक खूब रही थी। दिगम्बर मुनिगण सर्वत्र विहार करके धर्म का उद्योग करते थे। उसी का परिणाम है कि दक्षिण भारत में आज भी दिगम्बर मुनियो का सद्भाव है। मि.राइस इस विषय मे लिखते है कि–

"For more than a thousand years after the beginning of the Christian era, Jainism was the religion professed by most of the rulers of the Kanarese people. The Ganga King of Talkad the Rashtrakuta and Kalachurya Kings of Manyakhet and the early Hoysalas were all Jains. The Brahmanical Kadamba and early Chalukya Kings were tolerant of Jainism. The Pandya Kings of Madura were Jaina, and Jainism was dominant in Gujarat and Kathiawar[5]."

भावार्थ– ईस्वी सन् के प्रारम्भ होने से एक हजार से ज्यादा वर्षो तक कन्नड़ देश के अधिकांश राजाओ का मत जैन धर्म था। तलकांड के गग राजागण, मान्यखेट के राष्ट्रकूट और कलाचूर्य शासक और प्रारभिक होयसल नृप सब ही जैनी थे। ब्राह्मण मत को मानने वाल जो कदम्ब राजा थे उन्होने और प्रारभ के चालुक्यो ने जैन धर्म के प्रति उदारता का परिचय दिया था। मदुरा के पाण्ड्य राजा जैन ही थे और गुजरात तथा काठियावाड मे भी जैन धर्म प्रधान था।"

---

१. हुभा.,पृ ५७०.।
२ हुभा.,पृ ५७४ The nude Jainas were present in multitudes"EHI. p. 473
३ ADJB p 46
४. EHI.p.475
५. HKI.p 16.

आन्ध्र और चालुक्य काल मे दिगम्बर मुनि

आन्ध्रवशी राजाओ ने जैन धर्म को आश्रय दिया था, यह पहले लिखा जा चुका है। चोल और चालुक्य अभ्युदय काल में दिगम्बर धर्म प्रचलित रहा था। चालुक्य राजाओ मे पुलकेशी द्वितीय, विनयादित्य, विक्रमादित्य आदि ने दिगम्बर विद्वानो का सम्मान किया था। विक्रमादित्य के समय मे विजय पडित नामक दिगम्बर जैन विद्वान एक प्रतिभाशाली वादी थे। इस राजा ने एक जैन मदिर का जीर्णोद्धार कराया था।[१] चालुक्यराज गोविन्द तृतीय ने दिगम्बर मुनि अर्ककीर्ति का सम्मान किया और दान दिया था। वह मुनि ज्योतिष विद्या मे निपुण थे।[२] वेगिराज चालुक्य विजयादित्य[३] के गुरु दिगम्बराचार्य अर्हन्नन्दि थे। इन आचार्य की शिष्या चामेकाम्बा के कहने पर राजा ने दान दिया था।[४] साराश यह कि चालुक्य राज्य में दिगम्बर मुनियो और विद्वानो ने निरापद हो धर्मोद्योत किया था।

राष्ट्रकूट काल मे दिगम्बर मुनि

राष्ट्रकूट अथवा राठौर राजवश जैन धर्म का महान् आश्रयदाता था। इस वश के कई राजाओ ने अणुव्रतो और महाव्रतो को धारण किया था, जिसके कारण जैन धर्म की विशेष प्रभावना हुई थी। राष्ट्रकूट राज्य मे अनेकानेक दिग्गज विद्वान दिगम्बर मुनि विहार और धर्म प्रचार करते थे। उनके रचे हुए अनूठे ग्रथरत्न आज उपलब्ध हैं। श्री जिनसेनाचार्य का "हरिवश पुराण", श्री गुणभद्राचार्य का "उत्तर पुराण", श्री महावीराचार्य का " गणितसार सग्रह" आदि ग्रथ राष्ट्रकूट राजाओ के समय की रचनाये हैं।[४] इन राजाओ मे अमोघवर्ष प्रथम एक प्रसिद्ध राजा था। उसकी प्रशसा अरब केलेखको ने की है और उसे ससार के श्रेष्ठ राजाओ मे गिना है।[५] वह दिगम्बर जैनाचार्यो का परम भक्त था।

सम्राट अमोघवर्ष दिगम्बर मुनि थे

उसने स्वय राज–पाट त्याग कर दिगम्बर मुनि का व्रत स्वीकार किया था।[६]

उसका रचा हुआ 'रत्नमालिका' एक प्रसिद्ध सुभाषित ग्रथ है। उसके गुरु दिगम्बराचार्य श्री जिनसेन थे; जैसे कि "उत्तर पुराण" के निम्न श्लोक में कहा गया है कि वे श्री जिनसेन के चरणो मे नतमस्तक होते थे–

---

१ SSIJ pt I p 111
२ ADJB p 97 व विको , भा ५,पृ ७६।
३ ADJB p68
४. SSIJ pt I pp 111–112
५ ELLiot Vol I pp 3–24– "The greatest king of India is the Balahara, whose name imports King of Kings" Iba Khurdabh, व भा प्रारा भाग ३,पृ १३–१५।
६ 'रत्नमलिका'में अमोघवर्ष ने इस बात को इन शब्दो में स्वीकार किया है–

"विवेकात्यक्तराज्येन राज्ञेय रत्नमालिका
रचिता ऽमोघवर्षण सुधियाँ सदलड् कृति ।।"

बासवने "लिंगायत" मत स्थापित किया था। किन्तु बिज्जल राजा की दिगम्बर जैन धर्म के प्रति अटूट भक्ति के कारण वासव अपने मत का बहुप्रचार करने मे सफल न हो सका था। आखिर जब बिज्जलाज कोल्हापुर के शिलाहार राजा के विरूद्ध युद्ध करने गये थे, तब इस वासव ने धोखे से उन्हें विष देकर मार डाला था[१] और तब कही लिंगायत मत का प्रचार हो सका था। इस घटना से स्पष्ट है कि बिज्जल दिगम्बर मुनियो के लिये कैसा आश्रय था।

होयसालवंशी राजा और दिगम्बर मुनि

मैसोर के होयसालवश के राजागण भी दिगम्बरमुनियो के आश्रयदाता थे। इस वश की स्थापना के विषय में कहा जाता है कि साल नाम का एक व्यक्ति एक मदिर में एक जैन यति के पास विद्याध्ययन कर रहा था, उस समय एक शेर ने उन साधु पर आक्रमण किया। साल ने शेर को मारकर उनकी रक्षा की और वह 'होयसाल' नाम से प्रसिद्ध हुआ था[२]। तदोपरान्त उन्ही जैन साधु का आशीर्वाद पाकर उसने अपने राज्य की नीव जमाई थी, जो खूबफला-फूला था। इस वश के सब ही राजाओ ने दिगम्बर मुनियो का आदर किया था, क्योंकि वे सब जैन थे[३]। होयसाल राजा विनयदित्य के गुरु दिगम्बर साधु श्री शान्तिदेव मुनि थे[४]। इन राजाओ में विट्टिदेव अथवा विष्णुवर्द्धन राजा प्रसिद्ध था। वह भी जैन धर्म का दृढ़ श्रद्धानी था। उसकी रानी शान्तलदेवी प्रसिद्ध दिगम्बराचार्य श्री प्रभाचन्द्र की शिष्याथी[५]। किन्तु उसकी एक दूसरी रानी वैष्णव धर्म की अनुयायी थी। एक रोज राजा इसी रानी के साथ राजमहल के झरोखे में बैठा हुआ था कि सड़क पर एक दिगम्बर मुनि दिखाई दिये। रानी ने राजा को बहकाने के लिये अवसर अच्छा समझा। उसने राजा से कहा कि "यदि दिगम्बर साधु तुम्हारे गुरु हैं तो भला उन्हें बुलाकर अपने हाथ से भोजन करा दो।" राजा दिगम्बर मुनियो के धार्मिक नियम को भूलकर कहने लगे कि "यह कौन बड़ी बात है"। अपने हीन अग का उसे खयाल न रहा। दिगम्बर मुनि अगहीन रोगी आदि के हाथ से भोजन ग्रहण न करेगे, इसका उसने ध्यान भी न किया और मुनि महाराज को पड़गाह लिया। मुनिराज अतराय हुआ जाकर वापस चले गये। राजा इस पर चिढ़ गया और वह वैष्णव धर्म मे दीक्षित हो गया[६]। किन्तु उसके वैष्णव हो जाने पर भी दिगम्बर मुनियो का बाहुल्य उस राज्य मे बना रहा। उसकी अग्रमहषी शान्तलदेवी अब भी दिगम्बर मुनियो की भक्त थी और उसके सेनापति तथा प्रधानमत्री गगराज भी दिगम्बर मुनियो के परम सेवक थे। उनके ससर्ग से विष्णुवर्द्धन ने

---

१. मजैस्मा., पृ १५५-१५६।
२. SSIJ. Pt I.p.115
३. मजैस्मा,. पृ १५६-१५७।
४ SSIJ Pt I p 115
५. Ibid p 116
६ AR.Vol IX p 266

अन्तिम समय मे भी दिगम्बर मुनियों का सम्मान किया आर जैन मदिरो को दान दिया था।[१] उनके उत्तराधिकारी नरसिंह प्रथम द्वारा भी दिगम्बर मुनियो का सम्मान हुआ था। नरसिह का प्रधानमंत्री हुल्ल दिगम्बर मुनियो का परम भक्त था। उस समय दक्षिण भारत मे चामुण्डराय, गगराज और हुल्ल दिगम्बर धर्म के महान् प्रभावक और स्तभ समझे जाते थे।[२] वल्लालराय होयसाल के गुरु श्री वासपूज्य व्रती थे।[३] राजा पुनिस होयसाल के गुरु अजित मुनि थे[४]।

विजयनगर साम्राज्य मे दिगम्बर मुनि

विजयनगर साम्राज्य की स्थापना आर्य-सभ्यता और सस्कृति की रक्षा के लिये हुई थी। वह हिन्दू संगठन का एक आदर्श था। शैव, वैष्णव, जैन-सब ही कधे से कधा जुटाकर धर्म और देश रक्षा के कार्य में लगे हुए थे। स्वय विजयनगर सम्राटो में हरिहर द्वितीय और राजकुमार उग दिगम्बर जैन धर्म में दीक्षित होकर दिगम्बर मुनियो के महान आश्रयदाता हुये थे[५] दिगम्बर मुनि श्री धर्मभूषण जी राजा देवराय के गुरु थे तथा आचार्य विद्यानन्दि ने देवराज और कृष्णराय नामक राजाओ के दरवार में वाद किया था तथा विलगी और कारकल में दिगम्बर धर्म की रक्षा की थी।[६]

मुस्लिम काल मे दिगम्बर मुनि

मुस्लिम काल में देश त्रसित और दुःखित हो रहा था। आर्य धर्मसकटाकुल था। किन्तु उस पर भी हम देखते है कि प्रसिद्ध मुसलमान शासक हैदर अली ने श्रवणवेलगोल की नग्न देवमूर्ति श्री गोमट्टस्वदेव के लिये कई गाँवो की जागीर भेंट की थी।[७] उस समय श्रवणबेलगोल के जैन मठ मे जैन साधु विद्याध्ययन कराते थे। दिगम्बराचार्य विशालकीर्ति ने सिकन्दर और वीरू पक्षराय के सामने वाद किया था।[८]

मैसोर के राजा और दिगम्बर मुनि

मैसोर के ओडयरवंशी राजाओ ने दिगम्बर जैन धर्म को विशेष आश्रय दिया था और वर्तमान शासक भी जैन धर्म पर सदय है। सत्रहवी शताब्दि में भट्टाकलक देव नामक दिगम्बराचार्य हदुवल्ली जैन मठ के गुरु के शिष्य और महावादी थे। उन्होंने सर्वसाधारण में वाद करके जैन धर्म की रक्षा की थी। वह सस्कृत और कन्नड़ के

---

१ मजैस्मा., प्रस्तावना, पृ १३।
२. Ibid.
३. मजैस्मा.,पृ १६२।
४. ADJB p.31
५ SSIJ Pt.p 118
६ मजैस्मा ,पृ. १६३
७. AR Vol.IX 267 & SIJ. Pt.I p 117.
८. मजैस्मा., पृ १६३।

विद्वान् तथा छह भाषाओ के ज्ञाता थे।[१] जैन रानी भैरवदेवी ने मणिपुर का नाम बदलकर इनकी स्मृति मे 'भट्टाकलकपुर' रखा था– वही आजकल का भटकल है।[२] श्री कृष्णराय और अच्युतराय राजा के सम्मुख श्री दिगम्बर मुनि नेमिचन्द्र ने वाद किया था।[३]

पण्डाईवेडू राजा और दिगम्बर मुनि–

पुण्डी (उत्तर अर्काट) के तीसरे ऋषभदेव मदिर के विषय मे कहा जाता है कि पण्डाईवेडू राजा की लड़की को भूतबाधा सताती थी। उसी समय कुछ शिकारियों के पास एक दिगम्बर मुनि ने श्री ऋषभदेव की मूर्ति देखी। मुनि जी ने वह मूर्ति उनमे ले ली। इन्ही शिकारियो ने राजा से मुनि जी की प्रशसा की। उस पर राजा ने मुनि जी की वन्दना की और उनसे भूतबाधा दूर करने का अनुरोध किया। मुनि जी ने लड़की की भूतबाधा दूर कर दी। राजा बहुत प्रसन्न हुआ और उसने उक्त मदिर बनवाया।[४]

दो सौ वर्ष पहले दिगम्बर मुनि

दक्षिण भारत मे दोसौ वर्ष पहले कई एक दिगम्बर मुनियो का सद्भाव था। उनमें मन्नरगुडी के पर्णकुटिवासी ऋषि प्रसिद्ध हैं। उन्होने कई मूर्तियो और मदिरो की प्रतिष्ठा कराई थी।[५] उनके अतिरिक्त सधि महामुनि और पण्डित महामुनि भी प्रसिद्ध हैं। उन्होने चिताम्बूर नामक ग्राम मे वहाँ के ब्राह्मणो के साथ वाद किया था और जैन धर्म का डका बजाया था। तब से वहाँ पर एक जैन धर्म विद्यापीठ स्थापित है।[६] सचमुच दक्षिण भारत मे अत्यन्त प्राचीनकाल से सिलसिलेवार दिगम्बर मुनियो का सद्भाव रहा है। प्रो ए.एन. उपाध्याय इस विषय मे लिखते हैं कि दक्षिण भारत मे नियमित रूप मे दिगम्बर मुनि होते आये हैं। पिछले सौ वर्षो मे सिद्धय्य आदि अनेक दिगम्बर मुनि इस ओर ही गुजरे हैं, किन्तु खेद है, उनकी जीवन सम्बन्धी वार्ता उपलब्ध नही है।

महाराष्ट्र देश के दिगम्बर जैन मुनि–

दक्षिण भारत की तरह ही महाराष्ट्र देश भी जैन धर्म का केन्द्र था।[७] वहाँ अब तक दिगम्बर जैनो की बाहुल्यता है। कोल्हापुर, बेलगाम आदि स्थान जैनो की मुख्य बस्तियाँ थी। कहते हैं कि एक बार कोल्हापुर में दिगम्बर मुनियो का एक वृहत् सघ आकर ठहरा था। राजा और रानी ने भक्तिपूर्वक उसकी वन्दना की थी। देवयोग से सघ जहाँ पर ठहरा था वहाँ आग लग गई। मुनिगण उसमे भस्म हो गये। राजा को बडा

---

१ HKI. p 83
२ बृजेश ,भा १.पृ १०।
३.मजैस्मा ,पृ १६३।
४. दिजैडा.,पृ.८५७।
५ Ibid.p.864
६ दिजैडा ,पृ ८५९।
७ Jainism was specially popular in the Southern Maratha country – CHI p 444

परिताप हुआ। उसने उनके स्मारक में १०८ दिगम्बर मन्दिर बनवाये। संघ में १०८ ही दिगम्बर मुनि थे।[१] इस घटना से महाराष्ट्र में एक समय दिगम्बर मुनियो की बाहुल्यता का पता चलता है। सचमुच महाराष्ट्र के रट्ट, चालुक्य शिलाहार आदि वंश के राजा दिगम्बर जैन धर्म के पोषक थे और यही कारण है कि वहाँ दिगम्बर मुनियो का बड़ी सख्या में विहार हुआ था। अठारहवी शताब्दि में हुये दो दिगम्बर मुनियो का पता चलता है। एक मराठी कवि जिनदास के गुरु विद्वान दिगम्बराचार्य श्री उज्जतकीर्ति थे। दूसरे महतिसागर जी थे। उन्होने स्वतः क्षुल्लकवत् दीक्षा ली थी। तदोपरान्त देवेन्द्रकीर्ति भट्टारक से विधिपूर्वक दीक्षा ग्रहण की थी। बन्हाड देश में उन्होने खूब धर्म प्रभावना की थी। गूजरो को उन्होने जैनी बनाया था। दही गाँव उनका समाधि स्थान है, जहाँ सदा मेला लगता है। उनके रचे हुए ग्रथ भी मिलते हैं। (मजैइ.पृ.६५–७२)

शाके ११२७ में कोल्हापुर के अजरिका स्थान में त्रिभुवनतिलक चैत्यालय में श्री विशालकीर्ति आचार्य के शिष्य श्री सोमदेवाचार्य ने ग्रंथ रचना की थी।

दक्षिण भारत के प्रसिद्ध दिगम्बर जैनाचार्य

दिगम्बर जैनियो के प्रायः सब ही दिग्गज विद्वान् और आचार्य दक्षिण भारत में ही हुये हैं। उन सबका सक्षिप्त वर्णन उपस्थित करना यहाँ संभव नही है, किन्तु उनमें से प्रख्यात दिगम्बराचार्यों का वर्णन यहाँ पर दे देना इष्ट है। अंग ज्ञान के ज्ञाता दिगम्बराचार्यों के उपरान्त जैन सघ मे श्री कुन्दकुन्दाचार्य का नाम प्रसिद्ध है। दिगम्बर जैनो में उनकी मान्यता विशेष है। वह महातपस्वी और बड़े ज्ञानी थे। दक्षिण भारत के अधिवासी होने पर भी उन्होंने गिरिनार पर्वत पर जाकर श्वेताम्बरो से वाद किया था।[२] तामिल साहित्य का नीतिग्रथ कुर्रल उन्ही की रचना थी।[३] उन और उन्हीं के समान अन्य दिगम्बराचार्यों के विषय मे प्रो. रामास्वामी ऐयंगर लिखते हैं–

"First comes Yatindra Kunda, a great Jain/ Guru 'who in order to show that both within & without he could not be assisted by Rajas, moved about leaving a space of four inches between himself and the earth under his feet. Uma Swami, the compiler of Tattvartha Sutra, Griddhrapinchha, and his disciple Balakapinchha folow. Then comes Samantabhadra, 'ever fortunate', 'whose discourse lights up the place of the three worlds filled with the all meaning Syadvada. This Samantabhadra was the first of a series of celebrated Digambara writers who acquired considerable

१. वंप्राजैस्मा.पृ.७६।

२. दिजैडा., पृ.७६५।

३. SSIJ.pp 40–44 & 89.

predominance, in the early Rashtrakuta period Jain tradition assings him Saka 60 or 138 A.D.. He was a great Jaina missionary who tried to spread far and wide Jaina doctrines and morals and that he met with no opposition from other seets wherever he went Samantabhadra's appearance in south India marks an epoch not only in the annals of Digambara tradition, but also in the history of Sanskrit literature. . After Samantabhadra a large number of Jain Munis took up the work of proselytism The more important of them have contributed much for the uplift of the Jain world in literature and secular affairs. There was, for example. Simhanandi, the Jain sage, who according to tradition founded the state of Gangavadi Other names are those of Pujyapada the author of the imcomparable grammar, Jinendra Vyakarana and of Akalanka, who, in 788 A.D , is believed to have confuted the Buddhists at the court of Himasitala in Kanchi, and thereby procured the expulsion of the Buddhists from South India."

SSIJ. Pt.I.pp.29-31

भावार्थ- "पहले ही महान् जैन गुरु यतीन्द्र कुन्द का नाम मिलता है जो राजाओ के प्रति निस्पृहता दिखाते हुये अधर चलते थे। 'तत्वार्थ सूत्र' के कर्त्ता उमास्वामी गृद्धपिच्छ और उनके शिष्य बलाकपिच्छ उनके बाद आते है। तब समन्तभद्र का नाम दृष्टि में पड़ता है जो सदा भाग्यवान रहे और जिनकी स्याद्वादवाणी तीन लोक को प्रकाशमान करती थी। यह समन्तभद्र प्रारभिक राष्ट्रकूट काल के अनेक प्रसिद्ध दिगम्बर मुनियों में सर्वप्रथम थे। उनका समय जैन मतानुसार सन् १३८ ई. है। यह महान् जैन प्रचारक थे, जिन्होने चहुँओर जैन सिद्धान्त और शिक्षा का प्रचार किया और उन्हें कही भी किसी विधर्मी सप्रदाय के विरोध को सहन न करना पड़ा। उनका प्रादुर्भाव दक्षिण भारत के दिगम्बर जैन इतिहास के लिये ही युग प्रवर्तक नहीं है, बल्कि उससे सस्कृत साहित्य में एक महान् परिवर्तन हुआ था। समन्तभद्र के बाद बहुसख्यक जैन साधुओं ने अजैनो को जैनी बनाने का कार्य किया था। उनमे से प्रसिद्ध जैन साधुओ ने ससार को साहित्य और राष्ट्रीय अपेक्षा उन्नत बनाया था। उदाहरणतः जैनाचार्य सिंहनन्दि ने गगवाडी का राज्य स्थापित कराया था। अन्य आचार्यों में पूज्यपाद, जिनकी रचना अद्वितीय "जिनेन्द्र व्याकरण" है और अकलक देव हैं जिन्होने कांची के हिमशीतल राजा के दरबार मे बौद्धो को वाद में परास्त करके उन्हें दक्षिण भारत से निकलवा दिया था।"

श्री उमास्वामी– श्री कुन्दकुन्दाचार्य के उपरान्त श्री उमास्वामी प्रसिद्ध आचार्य थे, प्रो.सा. का यह प्रकट करना निस्सन्देह ठीक है। उनका समय वि.सं.७६ है। गुजरात प्रान्त के गिरिनगर मे जब यह मुनिराज विहार कर रहे थे और एक द्वैपायक नामक श्रावक के घर पर उसकी अनुपस्थिति मे आहार लेने गये थे, तब वहाँ पर एक अशुद्ध सूत्र देखकर उसे शुद्ध कर आये थे। द्वैपायक ने जब घर आकर यह देखा तो उसने उमास्वामी से "तत्वार्थसूत्र" रचने की प्रार्थना की थी। तदनुसार यह ग्रथ रचा गया था। उमास्वामी दक्षिण भारत के निवासी और आचार्य कुन्दकु के शिष्य थे, ऐसा उनके 'गृद्धपिच्छ' विशेषण से बोध होता है।[१]

श्री समन्तभद्राचार्य– श्री समन्तभद्राचार्य दिगम्बर जैनो में बड़े प्रतिभाशाली नैयायिक और वादी थे। मुनिदशा में उनको भस्मक रोग हो गया, जिसके निवारण के लिये वह काञ्चीपुर के शिवालय मे शैव–सन्यासी के वेष मे जा रहे थे। वही 'स्वयभू स्तोत' रचकर शिवकोटि राजा को आश्चर्यचकित कर दिया था। परिणामतः वह दिगम्बर मुनि हो गया था। समन्तभद्राचार्य ने सारे भारत में विहार करके दिगम्बर जैन धर्म का डका बजाया था। उन्होने प्रायश्चित्त लेकर पुनः मुनिवेष और फिर आचार्य पद धारण किया था। उनकी ग्रथ रचनाये जैन धर्म के लिए बड़े महत्व की हैं।[२]

श्री पूज्यपादाचार्य– कर्नाटक देश के कोलगाल नामक गाँव में एक ब्राह्मण माधवभट्ट विक्रम की चौथी शताब्दि में रहता था। उन्ही के भाग्यवान पुत्र श्री पूज्यपादाचार्य थे। उनका दीक्षा नाम श्री देवनन्दि था। नाना देशो में विहार करके उन्होने धर्मोपदेश दिया था, जिसके प्रभाव से सैकड़ो प्रसिद्ध पुरुष उनके शिष्य हुये थे। गगवशी दुर्विनीत राजा उनका मुख्य शिष्य था। "जैनेन्द्र व्याकरण", "शब्दावतार" आदि उनकी श्रेष्ठ रचनाये हैं।[३]

श्री वादीभसिंह– यतिवर श्री वादीभसिह श्री पुष्पसेन मुनि के शिष्य थे। उनका गृहस्थ दशा का नाम 'ओढ्यदेव' था, जिससे उनका दक्षिण देशवासी होना स्पष्ट है। उन्होने सातवी शती में "क्षत्रचूड़ामणि", "गद्यचिन्तामणि" आदि ग्रन्थो की रचना की थी।[४]

---

१ मजैइ.,पृ ४४।
२. Ibid.p.45 A
३. Ibid.p.46
४. Ibid.p.47.

श्री नेमिचन्द्राचार्य- श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती नन्दिसघ के स्वामी अभयनन्दि के शिष्य थे। वि.स.७३५ में द्रविड़ देश के मदुरा नगर में वह रहते थे। उन्होने जैन धर्म का विशेष प्रचार किया था और उनके शिष्य गगवंश के राजा श्री रायमल्ल और सेनापति चामुण्डराय आदि थे। उनकी रचनाओ मे "गोमट्टसार" ग्रन्थ प्रधान है।[१]

श्री अकलंकाचार्य- श्री अकलकाचार्य देव संघ के साधु थे। बौद्ध मठ में रहकर उन्होने विद्याध्ययन किया था। तदोपरान्त बौद्धों से वाद करके उनका पराभव और जैन धर्म का उत्कर्ष प्रकट किया था। कांची का हिमशीतल राजा उनका मुख्य शिष्य था। उनके रचे हुये ग्रथ में राजवार्तिक, अष्टशती, न्यायविनिश्चयालकार आदि मुख्य हैं।[२]

श्री जिनसेनाचार्य- राजाओ से पूजित श्री वीरसेन स्वामी के शिष्य श्री जिनसेनाचार्य सम्राट् अमोघवर्ष के गुरु थे। उस समय उनके द्वारा जैन धर्म का उत्कर्ष विशेष हुआ था। वह अद्वितीय कवि थे। उनका "पार्श्वाभ्युदयकाव्य" कालिदास के मेघदूत काव्य की समस्यापूर्ति रूप मे रचा गया था। उनकी दूसरी रचना 'महापुराण' भी काव्य दृष्टि से एक श्रेष्ठ ग्रथ है। उनके शिष्य गुणभद्राचार्य ने इस पुराण के शेषांश की पूर्ति की थी।[३]

श्री विद्यानन्दि आचार्य- श्री विद्यानन्दि आचार्य कर्णाटक देशवासी और गृहस्थ दशा में एक वेदानुयायी ब्राह्मण थे। 'देवागम' स्तोत को सुनकर वह जैन धर्म में दीक्षित हो गये थे। दिगम्बर मुनि होकर उन्होंने राज दरबारो मे पहुचकर ब्राह्मणो और बौद्धो से वाद किये थे; जिनमें उन्हें विजयश्री प्राप्त हुई थी। अष्टसहस्री, आप्तपरीक्षा आदि ग्रथ उनकी दिव्य रचनाये है।[४]

श्री वादिराज- श्रीवादिराजसूरि नन्दिसंघ के आचार्य थे। उनकी 'षटतर्कषण्मुख', 'स्याद्वादविद्यापति' और 'जगदेकमल्लवादी उपाधियाँ उनके गौरव और प्रतिभा की सूचक हैं। उनको एक बार कुष्ट रोग हो गया था; किन्तु अपने योग बल से "एकीभाव स्तोत्र" रचते हुए उस रोग से वह मुक्त हुए थे। यशोधर चरित्र, पार्श्वनाथ चरित्र आदि ग्रथ भी उन्होने रचे थे।"[५]

आप चालुक्यवशीय नरेश जयसिंह की सभा के प्रख्यात वादी थे। वे स्वय सिंहपुर के राजा थे। राज्य त्यागकर दिगम्बर मुनि हुए थे। उनके दादा गुरु श्रीपाल भी सिहपुराधीश थे। (जैमि.,वर्ष ३३, अंक ५.,पृ. ७२)

---

१. Ibid. p 47–48
२ Ibid p 49
३. Ibid p 50–51
४ Ibid p 51–52
५ Ibid p. 53.

इसी प्रकार श्री मल्लिपेणाचार्य, श्री सोमदेवसूरि आदि अनेक लब्धप्रतिष्ठित दिगम्बर जैनाचार्य दक्षिण भारत मे हो गुजरे हैं, जिनका वर्णन अन्य ग्रथो से देखना चाहिए।

इन दिगम्बराचार्यो के विपय में उक्त विद्वान आगे लिखते हैं कि "समग्र दक्षिण भारत विद्वान जैन साधुओ के छोटे-छोटे समूहों में अलकृत था, जो धीरे-धीरे जैन धर्म का प्रचार जनता की विविध भाषाओ में ग्रथ रचकर कर रहे थे किन्तु यह समझना गलत है कि यह साधुगण लौकिक कार्यो से विमुख थे।

किसी हद तक यह सच है कि वे जनता से ज्यादा मिलते-जुलते नही थे। किन्तु ई.पू. चौथी शताव्दि मे मेगस्थनीज के कथन से प्रकट है कि "जैन श्रमण, जो जंगलो में रहते थे, उनके पास अपने राजदूतो को भेजकर राजा लोग वस्तुओ के कारण के विषय में उनका अभिप्राय जानते थे। जैन गुरुओं ने ऐसे कई राज्यो की स्थापना की थी, जिन्होने कई शताब्दियो से जैन धर्म को आश्रय दिया था।"[१]

प्रो.डॉ.बी. शेपागिरिराव ने दक्षिण भारत के दिगम्बर मुनियो के सम्बन्ध में लिखा है कि "जैन मुनिगण विद्या और विज्ञान के ज्ञाता थे, आयुर्वेद और मन्त्रशास्त्र के भी वे महान् विद्वान् थे, ज्योतिष ज्ञान उनका अच्छा खासा था, जैन मान्यता में ऐसे सफल एक प्राचीन आचार्य कुन्दकुन्द कहे गए हैं, जिन्होने बेलारी जिले के कोनकुण्डल प्रदेश मे ध्यान और तपस्या की थी"

इस प्रकार दक्षिण भारत मे दिगम्बर मुनियो के अस्तित्व का चमत्कारिक वर्णन है और यह इस वात का प्रमाण है कि दक्षिण भारत एक अत्यन्त प्राचीन काल से दिगम्बर मुनियो का आश्रय स्थान रहा है तथा वह आगे भी रहेगा, इसमें सशय नही।

---

१. "The whole of south India strewn with small groups of learned Jain aceties who were stowly but urely spreaing their morils through the medium of their sacred literature composed in the various vernaculars of the country But it is a mistake to suppose that these asceties were in different towards secular affairs in general To a certain extent it is true that they did not mingle with the world But we know from the account of Megathenes that so late a the 4th cetury BC "The Sarmanes or the Jain Sarmanes who lived in the woods were frequetly consulte by the kings through their messengers regarding the cause of things Jaina Gurus have been founers of States that for centuries together were tolerant towards the Jain faith"

-SSIJ I 10

२. SSIJ.Pt 11.pp 9-10.

[२२] तमिल साहित्य में दिगम्बर मुनि

"Among the systems controverted in the Manimekhalai, the Jain system also figures as one and the words Samanas and Amana are of frequent occurrance; as also refrences to their Viharas, So that from the earliest times reachable with our present means, Jainism apparently flourished in the Tamil Country."[1]

तमिल साहित्य के मुख्य और प्राचीन लेखक दिगम्बर जैन विद्वान् रहे हैं और उसका सर्वप्राचीन व्याकरण-ग्रथ "तोल्काप्पियम्" (Tolkappiyam) एक जैनाचार्य की ही रचना है।[२] किन्तु हम यहाँ पर तमिल साहित्य के जैनो द्वारा रचे हुये अग को नहीं छूयेंगे। हमें तो जैनेतर तमिल साहित्य मे दिगम्बर मुनियों के वर्णन को प्रकट करना इष्ट है।

अच्छा तो, तमिल साहित्य का सर्वप्राचीन समय "सगम-काल" अर्थात् ईस्वी पूर्व दूसरी शताब्दि से ईस्वी पॉचवी शताब्दि तक का समय है। इस काल की रचनाओ में बौद्ध विद्वान् द्वारा रचित काव्य "मणिमेखलै" प्रसिद्ध है। "माणिमेखलै" में दिगम्बर मुनियों और उनके सिद्धान्तो तथा मठो का अच्छा खासा वर्णन है। जैन दर्शन को इस काव्य मे दो भागो में विभक्त किया गया है- (१) आजीविक और (२) निर्ग्रथ।[३] आजीविक भगवान् महावीर के समय मे एक स्वतत्र सप्रदाय था; किन्तु उपरान्त काल में वह दिगम्बर जैन सप्रदाय में समाविष्ट हो गया था। निर्ग्रंथ प्रदाय को 'अरुहन' (अर्हत्) का अनुयायी लिखा है, जो जैनों का द्योतक है। इस के पात्रों में सेठ कोवलन् की पत्नी कण्णकि के पिता मानाइकन् के विषय मे लिखा है कि "जब उसने अपने दामाद के मारे जाने के समाचार सुने तो उसे अत्यन्त दुःख और खेद हुआ और वह जैन सघ में नगा मुनि हो गया।"[४] इस काव्य से यह भी प्रकट है कि चोल और पाण्ड्य राजाओ ने जैन धर्म को अपनाया था।[५]

"मणिमेखलै" के वर्णन से प्रकट है कि "निर्ग्रंथगण ग्रामो के बाहर शीतल मठों में रहते थे। इन मठो की दीवारें बहुत उँची और लाल रंग से रंगी हुई होती थी। प्रत्येक मठ के साथ एक छोटा सा बगीचा भी होता था। उनके मदिर तिराहो और चौराहो पर

---

१. Se , p 32 भावार्थ-तमिल काव्य 'मणिमेखलै' में जैन संप्रदाय और शब्द-"अमण" तथा उनके विहारों का उल्लेख विशेष है; जिससे तमिल देश में अतीव प्राचीनकाल से जैन धर्म का अस्तित्व सिद्ध है।"

२ SSIJ, pt I..p. 89

३ BS p 15.

४. Ibid p 681.

५. SSIJ pt.I p 47

अवस्थित थे। जैनो ने अपने प्लेटफार्म भी बना रखे थे, जिन पर से निर्ग्रंथाचार्य अपने सिद्धान्तो का प्रचार करते थे। जैन साधुओ के मठो के साथ-साथ जैन साध्वियो के आराम भी होते थे। जैन साध्वियो का प्रभाव तमिल महिला समाज पर विशेष था।

कावेरीप्पूमपट्टिनम् जो चोल राजाओं की राजधानी थी, वहाँ और कावेरी तट पर स्थित उदैपुर में जैनो के मठ थे। मदुरा जैन धर्म का मुख्य केन्द्र था। सेठ कोवलन् और उनकी पत्नि कण्णकि जब मथुरा को जा रहे थे तो रास्ते में एक जैन आर्यिका ने उन्हें किसी जीव को पीड़ा न पहुचाने के लिये सावधान किया था, क्योंकि मदुरा में निर्ग्रंथों द्वारा यह एक महान् पाप करार दिया गया था। यह निर्ग्रंथगण तीन छत्रयुक्त और अशोक वृक्ष के तले बैठाये गये। ये अर्हत् भगवान की दैदीप्यमान मूर्ति की विनय करते थे। यह सब जैन दिगम्बर थे, यह उक्त काव्य के वर्णन से स्पष्ट है। पुहर में जब इन्द्रोत्सव मनाया गया तब वहाँ के राजा ने सब धर्मों के आचार्यों को वाद और धर्मोपदेश करने के लिये बुलाया था। दिगम्बर मुनि इस अवसर पर बड़ी संख्या में पहुंचे थे और उनके धर्मपदेश से अनेकानेक तमिल स्त्री-पुरुष जैन धर्म में दीक्षित हुये थे।"[१]

"मणिमेखलै" काव्य में उसकी मुख्य पात्री मणिमेखला एक निर्ग्रंथ साधु से जैन धर्म के सिद्धान्तों के विषय मे जिज्ञासा करती भी बताई गई है।[२] तथा इस काव्य के अन्य वर्णन से स्पष्ट है कि ईस्वी की प्रारम्भिक शताब्दियों में तमिल देश में दिगम्बर मुनियो की एक बड़ी संख्या मौजूद थी और तमिल लोग देश में विशेष मान्य तथा प्रभावशाली थे।

शैव और वैष्णव सम्प्रदायो के तमिल साहित्य में भी दिगम्बर मुनियों का वर्णन मिलता है। शैवो के 'पेरियपुण्णम्' नामक ग्रथ में मूर्ति नायनार के वर्णन में लिखा है कि कलभ्रवश के क्षत्री जैसे ही दक्षिण भारत में पहुचे वैसे ही उन्होंने दिगम्बर जैन धर्म को अपना लिया। उस समय दिगम्बर जैनों की संख्या वहाँ अत्यधिक थी और उनके आचार्यो का प्रभाव कलभ्रों पर विशेष था।[३] इस कारण शैव धर्म उन्नत नहीं हो पाया था। किन्तु कलभ्रो के बाद शैव धर्म को उन्नति करने का अवसर मिला था। उस समय बौद्ध प्रायः निष्प्रभ हो गये थे, किन्तु जैन अब भी प्रधानता लिये हुये थे।[४]

---

१. *Ibid* pp 47-48 "*That these Jains were the Digambaras is clearly seen from their description* The Jains took every advantage of the opportunty and large was the number of those that embraced this faith"

२ Manimekalai asked the Nirgrantha to state who was his God an what he was taught in his sacred books etc"

३ Ibid p 55

४. "It would appear from a general study of the litrature of the period that Buddhism had desclined as an active religion but Jainism had still its stroughold The chiief opponents of these saints were the Samans or the Jains"

—BS p 689

शैवाचार्यो का वादशाला में मुकाबला लेने के लिए दिगम्बराचार्य जैन श्रमण ही अवशेष थे। शैवो में सम्बन्दर और अप्पर नामक आचार्य जैन धर्म के कट्टर विरोधी थे। इनके प्रचार से साम्प्रदायिक विद्वेष की आग तमिल देश में भड़क उठी थी,[१] जिसके परिणामस्वरूप उपरान्त के शैव ग्रथो मे ऐसा उपदेश दिया हुआ मिलता है कि बौद्धो और समणो (दिगम्बर मुनियो) के न तो दर्शन करो न उनके धर्मोपदेश सुनो, बल्कि शिव से यह प्रार्थना की गई है कि वह शक्ति प्रदान करें जिससे बौद्धो और समणो (दिगम्बरा मुनियो) के सिर फोड़ डाले जायें; जिनके धर्मोपदेश को सुनते-सुनते उन लोगो के कान भर गये हैं।[२] इस विद्वेष का भी कोई ठिकाना है ! किन्तु इससे स्पष्ट है कि उस समय भी दिगम्बर मुनियो का प्रभाव दक्षिण भारत में काफी था।

वैष्णव तमिल साहित्य में भी दिगम्बर मुनियो का विवरण मिलता है। उनके 'तेवाराम(Tevaram) नामक ग्रथ से ईसवी सातवी-आठवी शताब्दि के जैनो का हाल मालूम होता है। उक्त ग्रथ से प्रकट है कि "इस समय भी जैनो का मुख्य केन्द्र मदुरा में था। मदुरा के चहुँ ओर स्थित अनैमलै, पसुमलै आदि आठ पर्वतो पर दिगम्बर मुनिगण रहते थे और वे ही जैन सघ का सचालन करते थे। वे प्रायः जनता से अलग रहते थे – उससे अत्यधिक सम्पर्कनही रखते थे। स्त्रियो से तो वे बिल्कुल दूर-दूर रहते थे। नासिका स्वर से वे प्राकृत व अन्य मत्र बोलते थे। ब्राह्मणो और उनके वेदो का वे हमेशा खुला विरोध करते थे। कड़ी धूप मे वे एक स्थान से दूसरे स्थान पर वेदो के विरुद्ध प्रचार करते हुए विचरते थे। उनके हाथ मे पीछी, चटाई और एक छत्री होती थी। इन दिगम्बर मुनियो को सम्बन्दर द्वेषवश बन्दरो की उपमा देता है, किन्तु वे सैद्धान्तिक वाद करने के लिये बड़े लालायित थे और उन्हें विपक्षी को परास्त करने मे आनन्द आता था। केशलोच ये मुनिगण करते थे और स्त्रियो के सम्मुख नग्न उपस्थित होने में उन्हें लज्जा नही आती थी। भोजन लेने के पहले वे अपने शरीर की शुद्धि नही करते थे (अर्थात् स्नान नही करते थे)।" मत्रशास्त्र को वे खूब जानते थे और उसकी खूब तारीफ करते थे।"[३]

त्रिज्ञानसम्बन्दर और अप्पर ने जो उपर्युक्त प्रमाण दिगम्वर मुनियो का वर्णन किया है, यद्यपि वह द्वेष को लिये हुये है, परंतु तो भी उससे उस काल में दिगम्वर मुनियो के बाहुल्य रूप में सर्वत्र विहार करने, विकट तपस्वी और उत्कट वादी होने का समर्थन होता है।

दक्षिण भारत की 'नन्दयाल कैफियत' (Nandyala kaiphiyat) मे लिखा है[४] कि "जैनमुनि अपने सिरो पर बाल नही रखते थे कि शायद कही जू न पड़ जाय

---

१. SSIJ I pp 60-66

२ तिरुमलै – Bs p 692

३ SSIJ pt I pp 68-70

और वे हिंसा के भागी हो। जब वे चलते थे तो मोरपिच्छी से रास्ता साफ कर लेते थे कि कहीं सूक्ष्म जीवों की विराधना न हो जाय। वे दिगम्बर वेष धारण किये थे, क्योकि उन्हे भय था कि कही उनके कपड़े और शरीर के ससर्ग से सूक्ष्म जीवो को पीड़ा न पहुचे। वे सूर्यास्त के उपरान्त भोजन नही करते थे, क्योकि पवन के साथ उड़ते हुए जीव-जन्तु कही उनके भोजन में गिर कर मर न जाय। इस वर्णन से भी दक्षिण भारत मे दिगम्बर मुनियो का बाहुल्य और निर्बाध धर्म प्रचार करना प्रमाणित है।

"सिद्धवत्तम् कैफियत" (Siddhavattam Kaiphiyat) से प्रकट है[१]-कि वरगल के जैन राजा उदार प्रकृति थे। वे दिगम्बरो के साथ-साथ अन्य धर्मों को भी आश्रय देते थे। "वरगल कैफ़ियत" से प्रकट है[२] कि वहाँ वृषभाचार्य नामक दिगम्बर मुनि विशेष प्रभावशाली थे।

दक्षिण भारत के ग्राम्य-कथा-साहित्य मे एक कहानी है, उससे प्रकट है कि "वरगल के काकतीयवशी एक राजा के पास ऐसी खड़ाऊँ थी, जिनको पहनकर वह उड़ सकता था और रोज बनारस मे जाकर गगा स्नान कर आता था। किसी को भी इसका पता न चलता था। एक रोज उसकी रानी ने देखा कि राजा नही है। वह जैनधर्मपरायण थी। उसने अपने गुरुओं से राजा के संबध में पूछा। जैन गुरु ज्योतिष के विद्वान् विशेष थे; उन्होने राजा का सब पता बता दिया। राजा जब लौटा तो रानी ने उसको बताया कि वह कहाँ गया और प्रार्थना की कि वह उसे भी बनारस ले जाया करे। राजा ने स्वीकार कर लिया। वह रानी भी बनारस जाने लगी। एक रोज मार्ग मे वह मासिक धर्म से हो गई। फलतः खड़ऊ की वह विशेषता नष्ट हो गई। राजा को उस पर बड़ा दुःख हुआ और उसने जैनो को कष्ट देना प्रारम्भ कर दिया।"[३] इस कहानी से विधर्मी राजाओ के राज्य में भी दिगम्बर मुनियों का प्रतिभाशाली होना प्रकट है।

अरुलनन्दि शैवाचार्य कृत "शिवज्ञानसिद्धियार" में परपक्ष संप्रदायों मे दिगम्बर जैनो के "श्रमणरूप" का उल्लेख है[४] तथा "हालास्यमाहात्म्य" में मदुरा के शैवो और दिगम्बर मुनियो के वाद का वर्णन मिलता है।[५]

इस प्रकार तमिल साहित्य के उपर्युक्त वर्णन से भी दक्षिण भारत मे दिगम्बर मुनियो का प्रतिभाशाली होना प्रमाणित है। वे वहाँ अत्यन्त प्राचीन काल से धर्म प्रचार कर रहे थे।

---

१. Ibid p 17.
२ Ibid. p 18
३. SSIJ. pt II pp. 27-28
४. SC.p 243
५. IHQ. Vol IV.564

[२३] भारतीय पुरातत्व और दिगम्बर मुनि

"Chalcolithic civilisation of the Indus Valley was something quite different from the Vedic civilisation" "On the eve of the Aryan immigration the Indus Valley was in possession of a civilized and warlike people"

–R.R.Ramprasad Chand.

मोहन–जोदड़ो का पुरात्व और दिगम्बरत्व– भारतीय पुरातत्व में सिंधु देश के मोहन–जोदड़ो और पजाब के हड़प्पा नामक ग्रामों से प्राप्त पुरातत्व अति प्राचीन हैं। वह ईस्वी सन् से तीन–चार हजार वर्ष पहले का अनुमान किया गया है। जिन विद्वानो ने उसका अध्ययन किया है, वह इस परिणाम पर पहचे हैं कि सिन्धु देश में उस समय एक अतीव सभ्य और क्षत्रिय प्रकृति के मनुष्य रहते थे, जिनका धर्म और सभ्यता वैदिक धर्म और सभ्यता से नितान्त भिन्न थी। एक विद्वान ने उन्हें "व्रात्य" सिद्ध किया है,[२] और मनु के अनुसार "व्रात्य" वह वेद–विरोधी संप्रदाय था "जिसके लोग द्विजो द्वारा उनकी सजातीय पत्नियो से उत्पन्न हुए थे, किन्तु जो (वैदिक) धार्मिक नियमो का पालन न कर सकने के कारण सावित्रि से पृथक कर दिये गये थे।" (मनु १०। १२) वह मुख्यतः क्षत्री थे। मनु एक व्रात्य क्षत्री से ही झल्ल, मल्ल, लिच्छवि, नात, करण, खस और द्राविड़ वशो की उत्पत्ति बतलाते हैं। (मनु १० ।२०) यह पहले भी लिखा जा चुका है। सिन्धु देश के उपर्युक्त मनुष्य इसी प्रकार के क्षत्री थे और वे ध्यान तथा योग का स्वय अभ्यास करते थे और योगियों की मूर्तियो की पूजा करते थे। मोहन–जोदडो से जो कतिपय मूर्तियाँ मिली हैं उनकी दृष्टि जैन मूर्तियो के सदृश 'नासाग्रदृष्टि' है। कितु ऐसी जैन मूर्तियाँ प्रायः ईस्वी पहली शताब्दि तक की ही मिलती विद्वान प्रकट करते है[३], यद्यपि जैनो की मान्यता के अनुसार उनके मदिरो मे बहुप्राचीन काल की मूर्तियाँ मौजूद हैं। उस पर, हाथीगुफा के शिलालेख से कुमारी पर्वत पर नन्दकाल की मूतियों का होना प्रमाणित है[४] तथा मथुरा के 'देवो द्वारा निर्मित जैनस्तूप' से भगवान् पार्श्वनाथ के समय में भी ध्यानदृष्टिमय मूर्तियो का होना सिद्ध है।[५] इसके अतिरिक्त प्राचीन जैन साहित्य

---

१ SPCIV p I & 25

२ Ibid pp .25–34

३ Ibid pp 25–26

४ JBORS.

५ वीर, वर्ष ४, पृ २९९।

तथा बौद्धो के उल्लेख से भगवान् पार्श्वनाथ और भगवान् महावीर के पहले के जैनो मे भी ध्यान और योगाभ्यास के नियमो का होना प्रमाणित है। 'संयुत्तनिकाय' में जैनो के अवितर्क और अविचार श्रेणी के ध्यान का उल्लेख है[१] और "दीर्घनिकाय" के 'ब्रह्मजालसुत्त' से प्रकट है कि गौतम बुद्ध से पहले ऐसे साधु थे जो ध्यान और विचार द्वारा मनुष्य के पूर्व भवो को बतलाया करते थे[२]। जैन शास्त्रो में ऋषभादि प्रत्येक तीर्थकर के शिष्य समुदाय मे ठीक ऐसे साधुओ का वर्णन मिलता है, तथापि उपनिषदो में जैनो के 'शुक्लध्यान' का उल्लेख मिलता है, यह पहले ही लिखा जा चुका है। अतः यह स्पष्ट है कि जैन साधु एक अतीव प्राचीन काल से ध्यान और योग का अभ्यास करते आये हैं तथा झल्ल, मल्ल, लिच्छवि, ज्ञातृ आदि व्रात्य क्षत्रिय प्रायः जैन थे। अन्यत्र यह सिद्ध किया जा चुका है कि "व्रात्य" क्षत्रिय बहुत करके जैन थे और उनमे के ज्येष्ठ व्रात्य सिवाय 'दिगम्बर मुनि के' और कोई न थे।[३] इस अवस्था में सिन्धु देश के उपर्युक्त कालवर्ती मनुष्यो का प्राचीन जैन ऋषियो का भक्त होना बहुत कुछ सभव है। किन्तु मोहन-जोदड़ो से जो मूर्तियाँ मिली हैं वह वस्त्रसयुक्त हैं और उन्हे विद्वान लोग 'पुजारी'(*Priest*) व्रात्यो की मूर्तियाँ अनुमान करते हैं। हमारे विचार से वे हीन-व्रात्य (अणुव्रती श्रावको) की मूर्तियाँ हैं। व्रात्य-साधु की मूर्ति वह हो नही सकती, क्योकि उसे शास्त्रो में नग्न प्रगट किया गया है। वहाँ 'ज्येष्ठ व्रात्य' का एक विशेषण 'समनिचमेद्र' अर्थात् 'पुरुषलिंग से रहित' दिया हुआ है जो नग्नता का द्योतक है। हीन व्रात्यो की पोशाक के वर्णन मे कहा गया है कि वे एक पगड़ी (निर्यन्नद्ध) एक लाल कपड़ा और चांदी का आभूषण 'निश्क'नामक पहनते थे। उक्त मूर्ति की पोशाक भी इसी ढग की है। माथे पर एक पट्ट रूप पगड़ी, जिसके बीच मे एक आभूपण जड़ा है, वह पहने हुये प्रकट है और बगल से निकला हुआ एक छीटदार कपड़ा वह ओढ़े हुये है।[४] इस अवस्था मे इन मूर्तियो को हीन व्रात्यो की मूर्तियाँ मानना ही ठीक है और इस तरह यह सिद्ध है कि व्रात्य क्षत्रिय एक अतीव प्राचीन काल में अवश्य ही एक वेद-विरोधी सप्रदाय था, जिसमें ज्येष्ठव्रात्य दिगम्बर मुनि के अनुरूप थे। अतः प्रकारान्तर से भारत का सिंधुदेशवर्ती सर्वप्राचीन पुरातत्व भी दिगम्बर मुनि और उनकी योगमुद्रा का पोषक है।[५]

---

१. PIS IV. 287
२. भमबु.पृ. २१९-२२०।
३ भपा., प्रस्तावना पृ. ४४-४५।
४. SPCIV Plate I.Fig b.
५. 'SPCIV'pp 25-33 में मोहन्-जोदडो की मूर्तियों को जिन मूर्तियों के समान और उनका पूर्ववर्ती प्रकट किया गया है।

अशोक के शासन लेख में निर्ग्रंथ- सिंधु देश के पुरातत्व के उपरान्त सम्राट् अशोक द्वारा निर्मित पुरातत्व ही सर्वप्राचीन है। वह पुरातत्व भी दिगम्बर मुनियो के अस्तित्व का द्योतक है। सम्राट् अशोक ने अपने एक शासन लेख मे आजीविक साधुओं के साथ निर्ग्रंथ साधुओ का भी उल्लेख किया है।[१]

खंडगिरि-उदयगिरि के पुरातत्व में दिगम्बर मुनि- अशोक के पश्चात् खण्डगिरि-उदयगिरि का पुरातत्व दिगम्बर धर्म का पोषक है। जैन सम्राट् खारवेल के हाथीगुफा वाले शिलालेख में दिगम्बर मुनियो के "तापस" (तपस्वी) रूप का उल्लेख है।[२] उन्होने सारे भारत के दिगम्बर मुनियो का सम्मेलन किया था, यह पहले लिखा जा चुका है। खारवेल की पटरानी ने भी दिगम्बर मुनियो-कलिंग श्रमणों के लिये गुफा निर्मित कराकर उनका उल्लेख अपने शिलालेख मे निम्न प्रकार किया है-

"अरहन्तपसादायम् कलिगानम् समनान लेन कारितम् राज्ञो लालकसहथीसा - हसपपोतस् धुतुनाकलिंगचक्रवर्तिनो श्री खारवेलस अगमहिसिना कारितम्।"

भावार्थ - "अर्हत के प्रासाद या मन्दिर रूप यह गुफा कलिंग देश के श्रमणो (दिगम्बर मुनियों) के लिये कलिग चक्रवर्ती राजा खारवेल की मुख्य पटरानी ने निर्मित कराई, जो हथीसहस के पौत्र लालकस की पुत्री थी।[३]

खण्डगिरि की 'तत्व गुफा' पर जो लेख है वह बालमुनि का लिखा हुआ है[४] 'अनन्त गुफा' मे लेख है कि दोहद के दिगम्बर मुनियो-श्रमणो की गुफा" (दोहद समनानम् लेनम्)।[५]

इस प्रकार खण्डगिरि-उदयगिरि के शिलालेखो से ईस्वी पूर्व दूसरी शताब्दि मे दिगम्बर मुनियो के कल्याणकारी अस्तित्व का पता चलता है।

खण्डगिरि-उदयगिरि पर जो मूर्तियाँ हैं, वे प्राचीन और नग्न हैं और उनसे दिगम्बरत्व तथा दिगम्बर मुनियो के अस्तित्व का पोषण होता है। वह अब भी दिगम्बर मुनियो का मान्य तीर्थ है।

मथुरा का पुरातत्व और दिगम्बर मुनि- मथुरा का पुरातत्व ईस्वी पूर्व प्रथम शताब्दि तक का है और उससे भी दिगम्बर मुनियो का जनता में बहुमान्य और

---

१. स्तम्भ लेख न. ७
२. सवदिसानं तापसान, पंक्ति १५, JBORS
३ बबिओ जैस्मा., पृ. ९१।
४. Ibid p 94
५ Ibid.p 97.
६. जैसिभा , वर्ष १, किरण ४, पृ १२३।

कल्याणकारी होना प्रकट है। वहाँ की प्रायः सब ही प्राचीन मूर्तियाँ नग्न-दिगम्बर हैं। एक स्तूप के चित्र में जैन मुनि नग्न, पिच्छी व कमण्डल लिये दिखाये गये हैं[1]

उन पर के लेख दिगम्बर मुनियों के द्योतक हैं; यथा-

"नमो अर्हतो वर्धमानम आराये गणिकाये लोण शोभिकाये धितु समण साविकाये नादाये गणिकाये वसु (ये) आर्हतो देविकुल आयाग-सभा प्रपाशिल (T) पटो पतिस्ठापितो निगन्थानम् अर्हता यतनेसहामातरे भगिनिये धितरे पुत्रेण सर्वेन च परिजनेन अर्हन पुजाये।"

अर्थात् - "अर्हत् वर्द्धमान् को नमस्कार। श्रमणों की श्राविका आरायगणिका लोणशोभिका की पुत्री नादाय गणिका वसु ने अपनी माता, पुत्री, पुत्र और अपने सर्व कुटुम्ब सहित अर्हत् का एक मन्दिर एक आयाग-सभा, ताल और एक शिला निर्ग्रंथ अर्हतों के पवित्र स्थान पर बनवाये।[1]

इसमें दानशीला श्राविकाओं-श्रमणों-दिगम्बर मुनियों का भक्त तथा निर्ग्रंथ दिगम्बर मुनियों के लिए एक शिला बनाया जाना प्रकट किया गया है। एक आयागपट पर के लेख में भी श्रमण-दिगम्बर मुनियों का उल्लेख है।[2] प्लेट नं. २८ के लेख में भी ऐसा ही उल्लेख है[3] तथा एक दिगम्बर मूर्ति पर निम्न प्रकार लेख है-

....."सं. १५, ग्रि ३, दि १ अस्या पूर्व्वाय..... हिक तो आर्य जयभूतिस्य शिशिनिनं अर्य्य सगामिक शिषिन आर्य्य वसुलये (निर्वर्तन) नं. .... लस्य धितु.....३..... हुवेणि श्रेष्टिस्य धर्मपत्निये भट्टिसेनस्य..... (माता) कुमरमितये दनं. भगवतो (प्र) मा सब्व तो भद्रिका।"

अर्थात् - "(सिद्ध !) सं. १५ ग्रीष्म के तीसरे महीने में पहले दिन को, भगवत् की एक चतुर्मुखी प्रतिमा कुमरमित्रा के दानरूप, जो... की पुत्री, की बहू, श्रेष्टि वेणि की प्रथम पत्नी, भट्टिसेन की माता थी, मेहिक कुल के आर्य जयभूति की शिष्या अर्य सगमिका की शिष्या वसुला की इच्छानुसार (अर्पित हुई थी)।[4]

इसमें दिगम्बर मुनि जयभूति का उल्लेख 'आर्य' विशेषण से हुआ है। ऐसे ही अन्य उल्लेखों से वहाँ का पुरातत्व तत्कालीन दिगम्बर मुनियों के सम्माननीय व्यक्तित्व का परिचायक है।

अहिच्छत्र (बरेली) के पुरातत्व में दिगम्बर मुनि - अहिच्छत्र (बरेली) पर एक समय नागवंशी राजाओं का राज्य था और वे दिगम्बर जैन धर्मानुयायी थे।

१. होली दरवाजा से मिला आयागपट-वीर, वर्ष ४, पृ. ३०३।

२. आर्यवती का आयाग पट्ट, वीर, वर्ष ४, पृ. ३०४

३. JOAM-plate No. 28

४. वीर, वर्ष ४, पृ. ३१०।

वहाँ के कटारी खेड़ा की खुदाई में डॉ. फुहरर सा. ने एक समूचा सभा मन्दिर खुदवा निकलवाया था। यह मन्दिर ईस्वी पूर्व प्रथम शताब्दि का अनुमान किया गया है और यह श्री पार्श्वनाथ जी का मन्दिर था। इसमें से मिली हुई मूर्तियाँ सन् ९६ से १५२ तक की हैं; जो नग्न हैं। यहाँ एक ईटो का बना हुआ प्राचीन स्तूप भी मिला था, जिसके एक स्तम्भ पर निम्न प्रकार लेख था–

"महाचार्य इन्द्रनन्दि शिष्य पार्श्वयतिस्स कोट्टारी।"

आचार्य इन्द्रनन्दि उस समय के प्रख्यात दिगम्बर मुनि थे।[१]

कौशाम्बी के पुरातत्व मे दिगम्बर संघ– कौशाम्बी का पुरातत्व भी दिगम्बर मुनियो के अस्तित्व का पोषक है। वहाँ से कुषाण काल का मथुरा जैसा आयागपट्ट मिला है; जिसे राजा शिवमित्र के राज्य में आर्य शिवनन्दि की शिष्या बड़ी स्थविरा बलदासा के कहने से शिवपालित ने अर्हत् की पूजा के लिये स्थापित किया था।[२] इस उल्लेख से उस समय कौशाम्बी में एक वृहत् दिगम्बर जैन संघ रहने का पता चलता है।

कुहाऊंका गुप्तकालीन लेख दिगम्बर मुनियों का द्योतक है – कुहाऊ (गोरखपुर) से प्राप्त पुरातत्व गुप्त काल मे दिगम्बर धर्म की प्रधानता का द्योतक है। वहाँ के पाषाण–स्तम्भ में, नीचे की ओर जैन तीर्थंकर और साधुओं की नग्न मूर्तियाँ हैं और उस पर निम्नलिखित शिलालेख है[३]

"यस्योपस्थानभूमिर्नृपति–शत शिरः पात–वातावधूता। गुप्तानां वशजस्य प्रविसृतयशसस्तस्य सर्वोत्तमर्द्धेः। राज्ये शक्रोपमस्य क्षितिप–शत–पतेः स्कन्दगुप्तस्य शान्तेः। वर्षे त्रिंशद्दशैकोत्तरक–शत–तमे ज्येष्ठ मासे प्रपन्ने–ख्यातेऽस्मिन् ग्राम–रत्ने ककुभ इति जनैस्साधु–ससर्गपूते पुत्रो यस्सोमिलस्य प्रचुर–गुण निधेर्भट्टिसोमो महार्थः तत्सूनू रुद्रसोमः पृथुलमतियशा व्याघ्ररत्यन्य सज्ञो मद्रस्तस्यात्मजो–भूद्द्विज–गुरुयतिषु प्रायशः प्रीतिमान्यः इत्यादि।"

भाव यही है कि सवत् १४१ में प्रसिद्ध तथा साधुओ के ससर्ग से पवित्र ककुभ ग्राम मे ब्राह्मण–गुरु और यतियों को प्रिय मद्र नामक विप्र रहते थे, जिन्होंने पाँच अर्हत्–बिम्ब निर्मित कराये थे। इससे स्पष्ट है कि उस समय ककुभ ग्राम में दिगम्बर मुनियो का एक वृहत् सघ रहता था।

---

१. सप्रजैस्मा पृ ८१–८२ (General Cunningham) found a number of fragmentary naked Jain statues Some inscribed with dates ranging from 96 to 152 A.D.

२. संप्राजैस्मा , पृ २७।

३. पूर्व , पृ ३–४।

राजगृह (बिहार) के पुरातत्व में दिगम्बर मुनियों की साक्षी- राजगृह (बिहार) का पुरातत्व भी गुप्तकाल में वहाँ दिगम्बर मुनियो के बाहुल्य का परिचायक है। वहाँ पर गुप्त काल की निर्मित अनेक दिगम्बर जैन मूर्तियाँ मिलती हैं[१] और निम्न शिलालेख वहाँ पर दिगम्बर जैन संघ का अस्तित्व प्रमाणित करता है-

"निर्वाणलाभाय तपस्वि योग्ये शुभेगुहेऽर्हत्प्रतिमा प्रतिष्ठे।

- आचार्यरत्नम् मुनि वैरदेवः विमुक्तये कारय दीर्घतेजः।"

अर्थात्- "निर्वाण की प्राप्ति के लिये तपस्वियों के योग्य और श्री अर्हत की प्रतिमा से प्रतिष्ठित शुभगुफा में मुनि वैरदेव को मुक्ति के लिये परम तेजस्वी आचार्य पद रूपी रत्न प्राप्त हुआ यानि मुनि वैरदेव को मुनि सघ ने आचार्य स्थापित किया।" इस शिलालेख के निकट ही एक नग्न जैन मूर्ति का निम्न भाग उकेरा हुआ है जिससे इसका सम्बन्ध दिगम्बर मुनियो से स्पष्ट है।[१]

बंगाल के पुरातत्व में दिगम्बर मुनि- गुप्तकाल और उसके बाद कई शताब्दियो तक बगाल, आसाम और ओड़ीसा प्रान्तों में दिगम्बर जैन धर्म बहुप्रचलित था। नग्न जैन मूर्तियाँ वहाँ के कई जिलो में बिखरी हुई मिलती हैं। पहाड़पुर (राजशाही) गुप्तकाल मे एक जैन केन्द्र था[३]। वहाँ से प्राप्त एक ताम्रलेख दिगम्बर मुनियो के सघ का द्योतक है। उसमें अंकित है कि "गुप्त स. १५९ (सन् ४७९ ई.) में एक ब्राह्मण दम्पति ने निर्ग्रंथ विहार की पूजा के लिये वटगोहली ग्राम मे भूमि दान दी। निर्ग्रंथ सघ आचार्य गुहनन्दि और उनके शिष्यो द्वारा शासित था।"[४]

कादम्ब राजाओं के ताम्रपत्रों मे दिगम्बर मुनि- देवगिरि (धारवाड़) से प्राप्त कादम्बवंशी राजाओ के ताम्रपत्र ईस्वी पाँचवी शताब्दि में दिगम्बर मुनियों के वैभव को प्रकट करते हैं। एक लेख मे है कि महाराजा कादम्ब श्री कृष्णवर्मा केराजकुमार पुत्र देववर्मा ने जैन मन्दिर के लिये यापनीय सघ के दिगम्बर मुनियों को एक खेत दान दिया था। दूसरे लेख से प्रकट है कि "काकुष्ठवंशी श्री शान्तिवर्मा के पुत्र कादम्ब महाराज मृगेश्वरवर्मा ने अपने राज्य के तीसरे वर्ष में परलूरा के आचार्यों को दान दिया था।" तीसरे लेख मे कहा गया है कि "इसी मृगेश्वरवर्मा ने जैन मन्दिरों

१. SPCIV. Plate 11 (b)
२. बविओजैस्मा., पृ. १६।
३. IHQ.Vol. VII.p. 441.
४. Modern Review. August 1931, p. 150.
५. IA. VII 33-34. बप्राजैस्मा , पृ. १२६।

और निर्ग्रंथ (दिगम्बर) तथा श्वतेपट (श्वेताम्बर) सघो के साधुओ के व्यवहार के लिये एक कालवग नामक ग्राम अर्पण किया था।[५]

उदयगिरि (भेलसा/ विदिशा) मे पॉचवी शताब्दि की बनी हुई गुफाये हैं, जिनमें जैन साधु ध्यान किया करते थे। उनमे लेख भी हैं।[१]

अजन्ता की गुफाओं मे दिगम्बर मुनियों का अस्तित्व- अजन्ता (खानदेश) की प्रसिद्ध गुफाओ के पुरातत्व से ईस्वी सातवी शताब्दि में दिगम्बर जैन मुनियो का अस्तित्व प्रमाणित है। वहॉ की गुफा न. १३ में दिगम्बर मुनियो का सघ चित्रित है। नं. ३३ की गुफा में भी दिगम्बर मूर्तियॉ हैं।[२]

बादामी की गुफा- बादामी (बाजीपुरा) में सन् ६५० ई. की जैन गुफा उस जमाने में दिगम्बर मुनियो के अस्तित्व की द्योतक है। उसमें मुनियो के ध्यान करने योग्य स्थान हैं और नग्न मूर्तियॉ अकित हैं।

चालुक्य राजा विक्रमादित्य के लेख मे दिगम्बर मुनि- लक्ष्मेश्वर (धारवाड़) की सखवस्ती के शिलालेख से प्रगट है कि सखतीर्थ का उद्धार पश्चिमीय चालुक्यवशी राजा विक्रमादित्य द्वितीय (शाका ६५६) ने कराया था और जिनपूजा के लिये श्री देवेन्द्र भट्टारक के शिष्य मुनि एकदेव के शिष्य जयदेव पडित को भूमि दान दी थी। इससे विक्रमादित्य का दिगम्बर मुनियो का भक्त होना प्रकट है। वही के एक अन्य लेख से मूलसघ के श्री रामचन्द्राचार्य और श्री विजय देव पडिताचार्य का पता चलता है।[४] सारांशतः वहॉ उस समय एक उन्नत दिगम्बर जैन सघ विद्यमान था।

एलोरा की गुफाओं मे दिगम्बर मुनि- ईस्वी आठवी शताब्दि की निर्मित एलोरा की जैन गुफाये भी उस समय दिगम्बर मुनियो के विहार और धर्म प्रचार को प्रकट करती हैं। वहॉ की इन्द्रसभा नामक गुफा मे जैन मुनियो के ध्यान करने और उपदेश देने योग्य कई स्थान हैं और उनमे अनेक नग्न मूर्तियॉ अकित हैं। श्री बाहुबलि गोमट्टस्वामी की भी खड्गासन मूर्ति है। "जगन्नाथ सभा", "छोटा कैलाश" आदि गुफाये भी इसी ढग की हैं और उनसे तत्कालीन दिगम्बरत्व की प्रधानता का परिचय मिलता है।[५]

---

१. मप्राजैस्मा , पृ. ७० ।
२ बम्राजैस्मा., पृ.५५-५६
३ Ibid p. 103
४ Ibid pp. 124-125
५ Ibid.pp. 163-171

राष्ट्रराजा आदि के शिलालेखों मे दिगम्बर मुनि- सौंदत्ति (वेलगाम) के पुरातत्व में दिगम्बर मुनियों की मर्तियो और उनका वर्णन मिलता है।[1] वहाँ एक आठवी शताब्दि का शिलालेख है, जिसमे प्रकट है कि "मैलेय तीर्थ की कारेय शाखा में आचार्य श्री मूल भट्टारक थे, जिनके शिष्य विद्वान् गुणकीर्ति थे और उनके शिष्य इच्छा को जीतने वाले श्रीमुनि इन्द्रकीर्ति स्वामी थे। उनका शिष्य मेरड़ का वड़ा पुत्र राजा पृथ्वीवर्मा था, जिसने एक जैन मंदिर वनवाया था और उसके लिये भूमि का दान दिया था।" एक दूसरे सन् ९९८१ के लेख से विदित है कि कुन्दुर जैन शाखा के गुरु अति प्रसिद्ध थे, उनको चौथे राष्ट्रराजा शांत ने १५० मत्तर भूमि उस जैन मन्दिर के लिये दी जो उन्होंने सौंदत्ति में वनवाया था और उतनी ही भूमि उस मन्दिर को उनकी स्त्री निजिकव्वे ने दी थी। उन दिगम्वराचार्य का नाम श्री वाहुवलि जी था और वे व्याकरणाचार्य थे। उस समय श्री रविचन्द्र स्वामी, अर्हनन्दि, शुभचन्द्र, भट्टारक देव, मौनीदेव, प्रभाचन्द्रदेव मुनिगण विद्यमान थे। राजा कत्तम् की स्त्री पद्मलादेवी जैन धर्म के ज्ञान व श्रद्वान में इन्द्राणी के समान थी। वह दिगम्वर मुनियों की भक्ति में दृढ़ थी

चालुक्य राजा विक्रम के लेख में दिगम्वर मुनियों का उल्लेख- एक अन्य लेख वहीं पर चालुक्य राजा विक्रम के १२ वें राज्य-वर्ष का लिखा हुआ है, जिसमें निम्नलिखित दिगम्वराचार्यों के नाम दिये हुए हैं-

"वलात्कारगण मुनि गुणचन्द, शिष्य नयनदि, शिष्य श्रीधराचार्य, शिष्य चन्द्रकीर्ति, शिष्य श्रीधरदेव, शिष्य नेमिचन्द्र और वासुपूज्य त्रैविधदेव, वासुपूज्य के लघुभ्राता मुनि विद्वान मलपाल थे। वासुपूज्य के शिष्य सर्वोत्तम साधु पद्मप्रभ थे। सेरिंगका वश का अधिकारी गुरु वासुपूज्य का सेवक था।"

इस प्रकार उपर्युक्त लेखो से सौंदत्ति और उसके आस-पास में दिगम्वर मुनियों का वाहुल्य और उनका प्रभावशाली तथा राजमान्य होना प्रकट है।

राठौर राजाओं द्वारा मान्य दिगम्वर मुनियों के शिलालेख- गोविन्दराय तृतीय राठौर मान्यखेट के सन् ८१३ के ताम्रपत्र से प्रकट है कि गगवंशी चाकिराज की प्रार्थना पर उन्होंने विजयकीर्ति कुलाचार्य के शिष्य मुनि अर्क कीर्ति को दान दिया था। अमोघवर्ष प्रथम ने सन् ८६० में मान्यखेट में देवेन्द्र मुनि को भूमिदान किया था।[2] इनसे दिगम्वर मुनियों का राठौर राजाओं द्वारा मान्य होना प्रमाणित है।

मूलगुंड के पुरातत्व में दिगम्वर संघ- मूलगुंड (धारवाड़) को ९ वीं १० वीं शताब्दि का पुरातत्व भी वहाँ पर दिगम्वर मुनियों के प्रभुत्व का द्योतक है। वहाँ के एक शिलालेख में वर्णन है कि "चीकारि, जिसने जैन मन्दिर वनवाया था, उस के पुत्र नागार्य के छोटे भ्राता आसार्य ने दान दिया। यह आसार्य नीति और धर्म शास्त्र में

---

१. बंप्राजैस्मा., पृ. ८३-८६।

२. भाप्रारा., ३८-४१।

बड़ा-विद्वान था। इसने नगर के व्यापारियो की सम्मति से १००० पान के वृक्षो के खेत को सेनवश के आचार्य कनकसेन की सेवा मे जैन मन्दिर के लिये अर्पण किया था। कनकसेनाचार्य के गुरु श्री वीर सेन स्वामी थे, जो पूज्यपाद कुमार सेनाचार्य के दिगम्बर मुनियो के सघ के गुरु थे। चन्द्रनाथ मन्दिर के शिलालेख से मूलगुंड के राजा मदरसा की स्त्री भामती की मृत्यु का वर्णन प्रकट है।[1] गर्ज यह है कि मूलगूंड से दिगम्बर मुनियो को एक समय प्रधान पद मिला हुआ था-वहाँ का शासक भी उनका भक्त था।

सुन्दी के शिलालेखो मे राजमान्य दिगम्बर मुनि - सुन्दी (धारवाड़) के जैन मन्दिर विषयक शिलालेख (१० वी श.) मे पश्चिमीय गंगवशीय राजकुमार बुटुग का वर्णन है, जिसने उस जैन मन्दिर के लिये दिगम्बर गुरु को दान दिया था जिसको उसकी स्त्री दिवलम्बा ने सुन्दी मे स्थापित किया था। राजा बुटुग गंगमण्डल पर राज्य करता था और श्री नागदेव का शिष्य था। रानी दिवलम्बा दिगम्बर मुनियो और आर्यिकाओ की परम भक्त थी। उसने छह आर्यिकाओ को समाधिमरण कराया था।[2] इससे सुन्दी मे दिगम्बर मुनियो का राजमान्य होना प्रकट है।

कुम्भोज बाहुबलि पहाड (कोल्हापुर) श्री दिगम्बर मुनि बाहुबलि के कारण प्रसिद्ध है, जो वहाँ हो गये हैं और जिनकी चरण पादुका वहाँ मौजूद है।[3]

कोल्हापुर के पुरातत्व मे दिगम्बर मुनि और शिलाहार राजा - कोल्हापुर का पुरातत्व दिगम्बर मुनियो के उत्कर्ष का द्योतक है। वहाँ के इरविन म्यूजियम मे एक शिलालेख शाका दसवी शताब्दी का है, जिससे प्रकट है कि दण्डनायक दासीमरस ने राजा जगदेकमल्ल के दूसरे वर्ष के राज्य में एक ग्राम धर्मार्थ दिया था। उस समय यापनीय सघ पुन्नागवृक्षमूलगण राद्धान्तादि के ज्ञाता परम विद्वान मुनि कुमार कीर्तिदेव विराजित थे।[4] तदोपरान्त कोल्हापुर के शिलाहार वशी राजा भी दिगम्बर मुनियो के परम भक्त थे। वहाँ के एक शिलालेख से प्रकट है कि "शिलाहारवशीय महामण्डलेश्वर विजयादित्व ने माघ सुदी १५ शाका १०६५ को एक खेत और एक मकान श्री पार्श्वनाथ जी के मन्दिर में अष्टद्रव्य पूजा के लिये दिया। इस मन्दिर को मूलसघ देशीयगण पुस्तक गच्छ के अधिपति श्री माघनन्दि सिद्धान्तदेव (दिगम्बराचार्य) के शिष्य सामन्त कामदेव के अधीनस्थ वासुदेव ने बनवाया था। दान के समय राजा ने श्री माघनन्दि सिद्धान्तदेव के शिष्य माणिक्यनन्दि प के चरण धोये थे। "बमनी ग्राम से प्राप्त शाका १०७३ के लेख से प्रकट है कि "शिलाहार राजा विजयादित्य ने जैन मन्दिर के लिये श्री

---

१ बप्राजैस्मा, पृ. १२०-१२१।
२ बंप्राजैस्मा , पृ. १२७।
३. बप्राजैस्मा , पृ १५३।
४ जैनमित्र, वर्ष ३३, पृ. ७१।

कुन्दकुन्दान्वयी श्री कुलचन्द्र मुनि के शिष्य श्री माघनदि सिद्धान्तदेव के शिष्य श्री अर्हनन्दि सिद्धान्त देव के चरण धोकर भूमिदान किया था।"[१] इनसे उस समय दिगम्बर मुनियो का प्रभुत्व स्पष्ट है।

आरटाल शिलालेख में चालुक्यराज पूजित दिगम्बर मुनि - आरटाल (धारवाड़) मे एक शिलालेख शाका १०४५ का चालुक्यराज भुवनेकमल्ल के राज्य कालका मिलता है। उसमें एक जैन मदिर बनने का उल्लेख है तथा दिगम्बर मुनि श्री कनकचन्द्र जी के विषय में निम्न प्रकार वर्णन है[२] -

"स्वस्ति यम-नियम स्वाध्याय ध्यान मौनानुष्ठान समाधिशील गुण सपन्नरप्प कनकचन्द्र सिद्धान्त देवः।"

इससे उस समय के दिगम्बर मुनियों की चरित्रनिष्ठा का पता चलता है।

ग्वालियर और दूबकुंड के पुरातत्व मे दिगम्बर मुनि - ग्वालियर का पुरातत्व ईस्वी ग्यारहवी से सोलहवी शताब्दि तक वहाँ पर दिगम्बर मुनियो के अभ्युदय को प्रकट करता है। ग्वालियर किले में इस काल की बनी हुई अनेक दिगम्बर मूर्तियाँ हैं। जो बावर के विध्वसक हाथ से बच गई हैं। उन पर कई लेख भी हैं, जिनमें दिगम्बर गुरुओ का वर्णन मिलता है।[३] ग्वालियर के दूबकुड नामक स्थान से मिला हुआ एक शिलालेख सन् १०८८ मे दिगम्बर मुनियो के सघ का परिचायक है। यह लेख महाराज विक्रमसिंह कछवाहा का लिखाया हुआ है जिसने श्रावक ऋषि को श्रेष्ठी पद प्रदान किया था और जो अपने भुजविक्रम के लिये प्रसिद्ध था। इस राजा ने दूबकुंड के जैन मदिर के लिये दान दिया था और दिगम्बर मुनियो का सम्मान किया था। ये दिगम्बर मुनिगण श्री लाटवागटगण के थे और इनके नाम क्रमशः (१) देवसेन (२) कुलभूषण (३) श्री दुर्लभसेन (४) शांतिसेन और (५) विजयकीर्ति थे। इनमे श्री देवसेनाचार्य ग्रथ रचना के लिये प्रसिद्ध थे और श्री शांतिसेन अपनी वादकला से विपक्षियो का मद चूर्ण करते थे।[४]

खजुराहा के लेखों मे दिगम्बर मुनि - खजुराहा के जैन मदिर में एक लेख सवत् १०११ का है। उससे दिगम्बर मुनि श्री वासवचन्द्र (महाराज गुरु श्री वासवचन्द्र) का पता चलता है। वह धांगराजा द्वारा मान्य सरदार पाहिल के गुरु थे।[५]

---

१ बंप्राजैस्मा., पृ. १५३-१५४।

२. दिजैडा, पृ ७४१।

३ मप्राजैस्मा., पृ. ६५-६६।

४. मप्राजैस्मा, पृ. ७३-८४ -"श्री लाटवागटगणोन्नतरोहणाद्रि माणिक्यभूतचरितोगुरु देवसेन। सिद्धातोद्विविधोप्यवाधितधिया येन प्रमाण ध्वनि। ग्रथेषु प्रभव श्रियामवगतो हस्तस्थ मुक्तोपम। आस्थानाधिपतौ बुधादविगुणे श्री भोजदेवे नृपे सभ्येष्ववरसेन पण्डित शिरोरत्नादिपूद्यन्मदान्। योनेकान्शतसो अजेष्ट पटुताभीष्टोद्यमो वादिन. शास्त्राभोनधिपारगी भवदन्त' श्री शातिसेनो गुरु'।"

५ मप्रजैस्मा., पृ ११७।

झालरापाटन में दिगम्बर मुनियो की निषिधिकायें – झालरापाटन शहर के निकट एक पहाड़ी पर दिगम्बर मुनियो के कई समाधि स्थान हैं। उन पर के लेखो से प्रकट है कि स. १०६६ मे श्री नेमिदेवाचार्य और श्री बलदेवाचार्य ने समाधिमरण किया था।[१]

अलवर राज्य के लेखों मे दिगम्बर मुनि – अलवर राज्य के नौगमा ग्राम में स्थित दिगम्बर जैन मन्दिर मे श्री अनन्तनाथ जी की एक कायोत्सर्ग मूर्ति है, जिसके आसन पर लिखा है कि स. ११७५ में आचार्य विजयकीर्ति के शिष्य नरेन्द्रकीर्ति ने उसकी प्रतिष्ठा की थी।[२]

देवगढ़ (झांसी) के पुरातत्व मे दिगम्बर मुनि – देवगढ़ (झांसी) का पुरातत्व वहाँ तेरहवी शताब्दि तक दिगम्बर मुनियो के उत्कर्ष का द्योतक है। नग्न मूर्तियो से सारा पहाड़ ओतप्रोत है। उन पर के लेखो से प्रकट है कि ११वी शताब्दि मे वहाँ एक शुभदेवनाथ नामक प्रसिद्ध मुनि थे। स. १२०९ के लेख मे दिगम्बर गुरुओ की भक्त आर्यिका धर्मश्री का उल्लेख है। स. १२२४ का शिलालेख पण्डित मुनि का वर्णन करता है। सं. १२०७ में वहाँ आचार्य जयकीर्ति प्रसिद्ध थे। उनके शिष्यो में भावनन्दि मुनि तथा कई आर्यिकायें थी। धर्मनन्दि, कमलदेवाचार्य, नागसेनाचार्य व्याख्याता माघनन्दि, लोकनन्दि और गुणनन्दि नामक दिगम्बर मुनियो का भी उल्लेख मिलता है। न. २२२ की मूर्ति मुनि–आर्यिका, श्रावक श्राविका इस प्रकार चतुर्विधसघ के लिये बनी थी।[३] गर्ज यह कि देवगढ़ में लगातार कई शताब्दियो तक दिगम्बर मुनियो का दौरदौरा रहा था।

बिजौलिया (मेवाड़) मे दिगम्बर साधुओं की मूर्तियाँ – बिजोलिया (पार्श्वनाथ–मेवाड़) का पुरातत्व भी वहाँ पर दिगम्बर मुनियो के उत्कर्ष को प्रकट करता है। वहाँ पर कई एक दिगम्बर मुनियो की नग्न प्रतिमायें बनी हुई हैं। एक मानस्तम्भ पर तीर्थकरो की मूर्तियो के साथ दिगम्बर मुनिगण के प्रतिबिम्ब व चरणचिन्ह अंकित हैं। दो मुनिराज शास्त्रस्वाध्याय करते प्रकट किये गये हैं। उनके पास कमडल, पिच्छी रखे हुए हैं। वे अजमेर के चौहान राजाओ द्वारा मान्य थे।[४] शिलालेखो से प्रकट है कि वहाँ पर श्री मूलसघ के दिगम्बराचार्य श्री बसन्तकीर्तिदेव, विशालकीर्तिदेव, मदनकीर्तिदेव, धर्मचन्द्रदेव, रत्नकीर्तिदेव, प्रभाचन्द्रदेव, पद्मनन्दिदेव और शुभचन्द्रदेव विद्यमान थे।[५] इनको चौहान राजा

१ Ibid p 191.
२ Ibid p 195.
३ देजै, पृ १३–२५।
४ दिजैडा, पृ. ५०१।
५ मप्राजैस्मा, पृ ११३।

पृथ्वीराज और सोमेश्वर ने जैन मन्दिर के लिये ग्राम भेंट किये थे।[1] सारांशतः विजोलिया में एक समय दिगम्बर मुनि प्रभावशाली हो गये थे।

अंजनेरी की गुफाओं में दिगम्बर मुनि – अजनेरी और अकई (नासिक जिला) की जैन गुफायें वहाँ पर १२ वी १३ वीं शताब्दि में दिगम्बर मुनियों के अस्तित्व को प्रकट करती हैं। पाँडु लेना गुफाओं का पुरातत्व भी इसी बात का समर्थक है।[1]

बेलगाम के पुरातत्व और राजमान्य दिगम्बर मुनि – बेलगाम का पुरातत्व वहाँ पर १२वी १३वीं शताब्दि में दिगम्बर मुनियों के महत्व को प्रकट करते हैं, जो राज मान्य थे। यहाँ के राट्ट राजाओ ने जैन मुनियों का सम्मान किया था, यह उनके लेखों से प्रकट है।

सन् १२०५ के लेख में वर्णन है कि बेलगाम में जब राट्टराजा कीर्त्तिवर्मा और मल्लिकार्जुन राज्य कर रहे थे तब श्री शुभचन्द्र भट्टारक की सेवा में राजा बीचा के बनाये गये राट्टों के जैन मंदिर के लिये भूमिदान किया गया था। एक दूसरा लेख भी इन्ही राजाओं द्वारा शुभचन्द्र जी को अन्य भूमि अर्पण किये जाने का उल्लेख करता है। इसमें कार्तवीर्य की रानी का नाम पद्मावती लिखा है।[2] सचमुच उस समय वहाँ पर दिगम्बर मुनियों का काफी प्रभुत्व था।

बेलगामान्तर्गत कोन्नूर स्थान से भी राट्टराजा का एक शिलालेख शाका १००९ का मिला है, जिसका भाव है कि "चालुक्यराजा जयकर्ण के आधीन राट्टराज मण्डलेश्वर सेन कोन्नूर आदि प्रदेशो पर राज्य करता था, तब बलात्कारगण के वंशधरों को इन नगरों का अधिपति उसने बना दिया था।" यहाँ के जैन मन्दिरों को चालुक्य राजा कोन्न व जयकर्ण द्वारा दान दिये जाने का उल्लेख मिलता है।[3] इनसे दिगम्बर मुनियों का महत्व स्पष्ट है।

बेलगाम जिले के कलहोले ग्राम में एक प्राचीन जैन मन्दिर है, जिसमें एक शिलालेख राट्टराजा कार्तवीर्य चतुर्थ और मल्लिकार्जुन का लिखाया हुआ मौजूद है। उसमें श्री शांतिनाथ जी के मन्दिर को भूमिदान देने का उल्लेख है। मन्दिर के गुरु श्री मूलसघ कुन्दकुन्दाचार्य की शाखा हणसांगी वंश के थे। इस वंश के तीन गुरु मलधारी

१. राइ., पृ. ३६३।
२. बंप्राजैस्मा., पृ. ५७–५९।
३. बंप्राजैस्मा.., पृ. ७४–७५।
४. Ibid. pp. 80–81.

थे, जिनके एक शिष्य सैद्धान्तिक नेमिचन्द्र थे। श्री नेमिचन्द्र के शिष्य शुभचन्द्र थे, जिन्होने दिगम्बर धर्म की उन्नति की थी। उनके शिष्य श्री ललितकीर्ति थे।[1]

बेलगाम जिले में स्थित गयबाग ग्राम में भी एक जैन शिलालेख राट्टराजा कार्तवीर्य का है। उससे विदित है कि कार्तवीर्य ने भगवान शुभचन्द्र जी को शाका ११२४ में राट्टो के उन जैन मन्दिरो के लिये दान दिया था।[2] इससे चन्द्रिकादेवी का दिगम्बर मुनियो और तीर्थकरों का भक्त होना प्रकट है।

बीजापुर किले की मूर्तियाँ दिगम्बर मुनियों की द्योतक – बीजापुर के किले की दिगम्बर मूर्तियाँ स १००१ मे श्री विजयसूरी द्वारा प्रतिष्ठित हैं।[3] उनसे प्रकट है कि बीजापुर मे उस समय दिगम्बर मुनियो की प्रधानता थी।

तेवरी की दिगम्बर मूर्ति – तेवरी (जबलपुर) के तालाब में स्थित दिगम्बर जैन मन्दिर की मूर्ति पर बारहवी शताब्दि का लेख है कि "मानादित्य की स्त्री रोज नमन करती हैं।"[4] इससे वहाँ पर जैन मुनियो का राजमान्य होना प्रकट है।

दिल्ली के लेखो मे दिगम्बर मुनि – दिल्ली नया मन्दिर कटघर की मूर्तियो पर के लेख १५ वी शताब्दि मे वहाँ दिगम्बर मुनियो का अस्तित्व प्रकट करते हैं। श्री आदिनाथ की मूर्ति पर लेख है कि "स.१४२८ ज्येष्ठ सुदी १२ सोमवासरे काष्ठासघे माथुरान्वये भ. श्रीदेवसेनदेवास्तत्पट्टे त्रयोदशविधचारित्रेनालकृताः सकल विमल मुनिमडली शिष्यः शिखामणयः प्रतिष्ठाचार्यवर्य श्री विमलसेन देवास्तेषामुपदेशेन जाइसवालान्वये सा. पुइपति। इत्यादि।" इन्ही मुनि विमलसेन की शिष्या आर्यिका गुणश्री विमल श्री थी, यह बात उसी मन्दिर की एक अन्य मूर्ति पर के लेख से प्रकट है।

लखनऊ के मूर्ति-लेख मे निर्ग्रथाचार्य – लखनऊ चौक के जैन मन्दिर में विराजमान श्री आदिनाथ की मूर्ति पर के लेख से विदित है कि स. १५०३ में श्री भगवान सकलकीर्ति जी के शिष्य श्री निर्ग्रथाचार्य विमलकीर्ति थे, जिनका उपदेश और विहार चहु ओर होता था।

चावलपट्टी (बगाल) के जैन मन्दिर मे विराजमान दशधर्म यंत्रलेख से प्रकट है कि स. १५८६ में आचार्य श्री रत्नकीर्ति के शिष्य मुनि ललितकीर्ति विद्यमान थे जिनकी भक्ति भ्रमरीबाई करती थी।[5]

---

१ pp 82-83
२ Ibid. p 87.
३ Ibid p 108
४ दिजैडा, पृ २८७।
५ जैप्रयलें स , पृ २५।

कलकत्ता की मूर्तियाँ और दिगम्बर मुनि – यही के एक अन्य सम्यक ज्ञान यत्र के लेख से विदित होता है कि स. १६३४ मे विहार में भगवान धर्मचन्द्र जी के शिष्य मुनि श्री बाहुनन्दि का विहार और धर्मप्रचार होता था।[1]

एटा, इटावा और मैनपुरी के पुरातत्व मे दिगम्बर मुनि– कुरावली (मैनपुरी) के जैन मन्दिर मे विराजमान सम्यग्दर्शन यंत्र पर के लेख से प्रकट है कि स. १५७८ में मुनि विशालकीर्ति विद्यमान थे। उनका विहार सयुक्त प्रान्त में होता था।[2] अलीगंज (एटा) के लेखो से मुनि माघनदि और मुनि धर्मचन्द्र जी का पता चलता है।[3] इटावा नशियाँजी पर कतिपय जैन स्तूप हैं और उन पर के लेख से यहाँ अठारहवी शताब्दी में मुनि विजयसागर जी का होना प्रमाणित होता है।[4] उधर पटना के श्री हरकचद वाले जैन मन्दिर में स. १९६४ की बनी हुई दिगम्बर मुनि की काष्ठमूर्ति विद्यमान है।[5]

सारांशतः उत्तर भारत और महाराष्ट्र मे प्राचीनकाल से बराबर दिगम्बर मुनि होते आये हैं, यह बात उक्त पुरातत्व विषयक साक्षी से प्रमाणित है। अब यह आवश्यक नही है कि और भी अनगिनत शिलालेखादि का उल्लेख करके इस व्याख्या को पुष्ट किया जाय। यदि सब ही जैन शिलालेख यहाँ लिखे जायें तो इस ग्रथ का आकार–प्रकार तिगुना–चौगुना बढ़ जायेगा, जो पाठको के लिये अरुचिकर होगा।

दक्षिण भारत का पुरातत्व और दिगम्बर मुनि– अच्छा तो अब दक्षिण भारत के शिलालेखादि पुरातत्व पर एक नजर डाल लीजिये। दक्षिण भारत की पाण्डवमलय आदि गुफाओ का पुरातत्व एक अति प्राचीन काल मे वहाँ पर दिगम्बर मुनियो का अस्तित्व प्रमाणित करता है। अनुमनामलें (ट्रावनकोर) की गुफाओ में दिगम्बर मुनियो का प्राचीन आश्रम था। वहाँ पर दीर्घकाय दिगम्बर मुर्तियाँ अंकित हैं। दक्षिण देश के शिलालेखो में मदूरा और रामनद जिलो से प्राप्त प्रसिद्ध ब्राह्मीलिपि के शिलालेख अति प्राचीन हैं। वह अशोक की लिपि में लिख हुये हैं। इसलिये इनको ईस्वी पूर्व तीसरी शताब्दि का समझना चाहिये। यह जैन मन्दिरो के पास बिखरे हुये मिले हैं और इनके निकट ही तीर्थकरो की नग्न मूर्तियाँ भी थी। अतः इनका सम्बन्ध जैन धर्म से होना बहुत कुछ सभव हैं। इनसे स्पष्ट हैं कि ईस्वी पूर्व तीसरी शताब्दि से ही जैन मुनि दक्षिण भारत में प्रचार करने लगे थे।[6] इन शिलालेखो के अतिरिक्त दक्षिण भारत में दिगम्बर मुनियो से सम्बन्ध रखने वाले सैंकड़ो शिलालेख हैं। उन सबको यहाँ उपस्थित करना असम्भव हैं। हाँ, उनमे कुछ

---

१. जैयप्रयलें सं , पृ २६।

२ प्राजैलेस, पृ. ४६।

३. Ibid p.७०

४ Ibid pp 90 & 91.

५. Mr Ajitaprasada Advaocate Lucknow reports "Patna Jain temple renovated in 1964 V S by daughter in-law of Harakchand On the entrance door is the life-size image in wood of a muni with a Kamandal in the right hand & the broken end of what must have been a Pichi in the left "

६ SSIJ Pt I. pp 35.

एक का परिचय हम यहाँ पर अंकित करना उचित समझते हैं। अकेले श्रवणबेलगोल में ही इतने अधिक शिलालेख हैं कि उनका सम्पादन एक बड़ी पुस्तक मे किया गया है। अस्तु

श्रवणबेलगोल के शिलालेखो मे प्रसिद्ध दिगम्बर साधुगण– पहले श्रवण बेलगोल के शिलालेखो से ही दिगम्बर मुनियो का महत्व प्रमाणित करना श्रेष्ठ हैं। शक स. ५२२ के शिलालेखो से वहाँ पर श्रुतकेवली भद्रबाहु और मौर्य सम्राट् चन्द्रगुप्त का परिचय मिलता है। इन दोनों महानुभावो ने दिगम्बर–वेष में श्रवण–बेलगोल को पवित्र किया था।[१] शक सं. ६२२ के लेख मे मौनिगुरु की शिष्या नागमति को तीन मास का व्रत धारण करके समाधिमरण करते लिखा है। इसी समय के एक अन्य लेख में चरितश्री नामक मुनि का उल्लेख है।[२] धर्मसेन, बलदेव, पट्टिनिगुरु, उग्रसेन गुरु, गुणसेन, पेरुमालु, उल्लिकल, तीर्थद, कुलापक आदि दिगम्बर मुनियो का अस्तित्व भी इसी समय प्रमाणित हैं।[३] शक स. ८९६ के लेख से प्रकट है कि गगराजा मारसिंह ने अनेक लड़ाइयाँ लडकर अपना भुजविक्रम प्रकट किया था और अत मे अजितसेनाचार्य के निकट बकापुर मे समाधिमरण किया था।[४]

तार्किकचक्रवर्ती श्री देवकीर्ति–शक सवत् १०८५ के लेख से तार्किकचक्रवर्ती श्री देवकीर्ति मुनि का तथा उनके शिष्य लक्खनन्दि, माघवेन्दु और त्रिभुवनमल्ल का पता चलता है। उनके विषय में कहा गया है–

"कुर्व्वेनमः कपिल–वादिवनोग्र–वन्हये।

चार्व्वाक–वादि–मकराकर–वाडवाग्नये।

बौद्धप्रवादितिमिरप्रविभेदभानवे.

श्री देवकीर्त्तिमुनये कविवादिवाग्मिने।।"

*   *   *

"चतुर्म्मुख चतुर्व्वक्तृ निर्ग्गमागमदुस्सहा।

देवकीर्तिमुखाम्भोजे नृत्यतीति सरस्वती।।"

सचमुच मुनि देवकीर्ति जी अपने समय के अद्वितीय कवि, तार्किक और वक्ता थे। वे महामण्डलाचार्य और विद्वान थे और उनके समक्ष सांख्यिक, चार्वाक, नैयायिक, वेदान्ती, बौद्ध आदि सभी दार्शनिक हार मानते थे।"[५]

---

१ जैशिस. पृ १–२।
२ Ibid p-3
३. Ibid pp 1–18
४. Ibid P20
५ जैशिस , पृ २३–२४।

महाकवि मुनि श्री श्रुतकीर्ति – उक्त समय के एक अन्य शिलालेख में मुनि देवकीर्ति की गुरु परम्परा रही है, जिससे प्रकट है कि मुनि कनकनन्दि और देवचद्र की भ्राता श्रुतकीर्ति त्रैविद्य मुनि ने देवेन्द्र सदृश विपक्षवादियो को पराजित किया था और एक चमत्कारी काव्य राघव–पांडवीय की रचना की थी, जो आदि से अन्त को व अन्त से आदि को दोनो ओर पढ़ा जा सके। इससे प्रकट है कि उपर्युक्त मुनि देवकीर्ति के शिष्य यादव–नरेश नारसिंह प्रथम के प्रसिद्ध सेनापति और मंत्री हुल्लप थे।[१]

श्री शुभचन्द्र और रानी जवक्कणव्वे – शक स. १०९९ के लेख में मत्री नागदेव के गुरु श्री नयकीर्ति योगीन्द्र व उनकी गुरु परपरा का उल्लेख है।[२] शक स. १०४५ लेख से प्रकट है कि होयसाल महाराज गग नरेश विष्णुवर्द्धन ने अपने गुरु शुभचंद्रदेव की निपद्या निर्माण कराई थी। इनकी भावज जवक्कणव्वे की जैन धर्म में दृढ़ श्रद्धा थी और वह दिगम्वर मुनियो को दानादि देकर सत्कार किया करती थी।[३] उनके विषय में निम्न प्रकार का उल्लेख किया है –

"दोरेये जक्कणिकव्वेगी भुवनदोल् चारित्रदोल् शीलदोल्
परमश्रीजिनपूजेयौल् सकलदानाश्चर्यदोल् सत्यदोल्।
गुरुपादाम्वुजभक्तियोल् विनयदोल भव्यर्क्कलकन्ददा
दरिंद मुन्निसुतिर्प्प पेम्पिनेडेयोल् मत्तन्यकान्ताजनम् ।।"

श्री गोल्लाचार्य प्रभृत अन्य दिगम्बराचार्य – शक सं. १०३७ के लेख में है कि मुनि त्रैकाल्य योगी के तप के प्रभाव से एक व्रह्मराक्षस उनका शिष्य हो गया था। उनके स्मरण मात्र से वड़े–वड़े भूत भागते थे। उनके प्रताप से करंज का तेल धृत में परिवर्तित हो गया था। गोल्लाचार्य मुनि होने के पहले गोल्ल देश के नरेश थे। नूत्न चन्दिल नरेश के वंश के चूड़ामणि थे। सकलचन्द्रमुनि के शिष्य मेघचद्र त्रैविद्य थे। जो सिद्धान्त में वीरसेन तर्क में अकलक और व्याकरण में पूज्यपाद के समान विद्वान थे।[४] शक स. १०४४ के लेख मे दण्डनायक गगराज की धर्मपत्नी लक्ष्मीमति के गुण, शील और दान की प्रशंसा है। वह दिगम्वराचार्य श्री शुभचन्द्र जी की शिष्या थी। इन्ही आचार्य की एक अन्य धर्मात्मा शिष्या राजसम्मानित चामुण्ड की स्त्री देवमति थी।[५] शक स. १०६८ के लेख में अन्य दिगम्वर मुनियों के साथ श्री शुभकीर्ति आचार्य का उल्लेख है, जिनके सम्मुख वाद में वौद्ध मीमांसकादि कोई भी नहीं ठहर सकता था। इसी में प्रभाचन्द्र जी की शिष्या, विष्णुवर्द्धन नरेश की पटरानी शांतलदेवी की धर्मपरायणता का भी उल्लेख है।[६]

---

१. Ibid pp 24–30.
२. Ibid pp 33–42
३ Ibid pp 43–49.
४. Ibid pp 56–66.
५. Ibid pp. 67–70
६. Ibid. pp 80–81.

शक स. १०५० के लेख मे श्री महावीर स्वामी के बाद दिगम्बर मुनियो की शिष्य परम्परा का बखान है जिसमें श्रुतकेवली भद्रबाहु और सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य का भी उल्लेख है। कुन्दकुन्दाचार्य के चारित्र गुणादि का परिचय भी एक श्लोक द्वारा कराया गया है।

श्री कुन्दकुन्द और समन्तभद्र आचार्य - इन आचार्यों को एक अन्य शिलालेख मे मूलसघ का अग्रणी लिखा है। उन्होने चारित्र की श्रेष्ठता से चारणऋद्धि प्राप्त की थी, जिसके बल से वह पृथ्वी से चार अगुल ऊपर चलते थे।[१] श्री समन्तभद्राचार्य जी के विषय मे कहा गया है -

"पूर्व्व पाटलिपुत्र-मध्य-नगरे भेरी मया ताड़िता
पश्चान्मालव-सिन्धु-ठक्क-विषये कांचीपुरे वैदिशे।
प्राप्तोऽहकरहाटक बहु-भट विद्योत्कट सकटम्
वदात्थीं विचराम्यहन्नरपते शार्दूलविक्रीडितम् ।।७।।
अवदु तटमटतिझटिति स्फुट पटु वाचाट धूर्ज्जटेरपि जिह्वा
वादिनि समन्तभद्रे स्थितवतितवसदसि भूपकास्थान्येषां।।८।।"

भाव यही है कि समन्तभद्रस्वामी ने पहले पाटलिपुत्र नगर मे वादभेरी बजाई थी। तदोपरान्त वह मालव,सिंधु पजाब कांचीपुर विदिशा आदि में वाद करते हुये करहाटक नगर (कराड़) पहुचे थे और वहाँ की राजसभा में वाद गर्जना की थी। कहते है कि वादी समन्तभद्र की उपस्थिति में चतुराई के साथ स्पष्ट शीघ्र और बहुत बोलने वाले धूर्जटि की जिह्वा ही जब शीघ्र अपने बिल मे घुस जाती है , उसे कुछ बोल नही आता तो फिर दूसरे विद्वानो की कथा ही क्या है? उनका अस्तित्व तो समन्तभद्र के सामने कुछ भी महत्व नही रखता। सचमुच समन्तभद्राचार्य जैन धर्म के अनुपम रत्न थे। उनका वर्णन अनेक शिलालेखो मे गौरवरूप से किया गया है। तिरुमकूडलु नरसीपुर ताल्लुके के शिलालेख न. १०५ के निम्न पद्य मे उनके विषय मे ठीक ही कहा गया है कि -

समन्तभद्रस्सस्तुत्यः कस्य न स्यान्मुतिश्वर.।
वाराणसीश्वरस्याग्रे निर्जिता येन विद्विषः।।

अर्थात् - वे समन्तभद्र मुनीश्वर जिन्होने वाराणसी (बनारस) के राजा के सामने शत्रुओ को, मिथ्यैकान्तवादियो को परास्त किया है, किसके स्तुतिपात्र नही है? वे सभी के द्वारा स्तुति किये जाने के योग्य हैं।"

शिवकोटि नामक राजा ने श्री समन्तभद्र जी के उपदेश से ही जैनेन्द्रिय दीक्षा ग्रहण की थी।

---

१ Ibid Intro p 140

श्री वक्रग्रीव आदि दिगम्बराचार्य – दिगम्बराचार्य श्री वक्रग्रीव के वि मे उपर्युक्त श्रवणवेलगोलीय शिलालेख वताता है कि वे छः मास तक "अथ" शब्द अर्थ करने वाले थे। श्री पात्रकेसरी के गुरु त्रिलक्षण सिद्धान्त के खण्डनकर्ता थे। वर्द्धदेव चूड़ामणि काव्य के कर्ता कवि दण्डी द्वारा स्तुत्य थे। स्वामी महेश्व ब्रह्मराक्षसों द्वारा पूजित थे। अकलंक स्वामी बौद्धो के विजेता थे। उन्होंने साहस तु नरेश के सन्मुख हिमशीतल नरेश की सभा में उन्हें परास्त किया था। विमलचन्द्र मुनि ने शैव पाशुपतादिवादियो के लिये "शत्रभयकर के भवनद्वार पर नोटिस लगा दिया था, पर वादिमल्ल ने कृष्णराज के समक्ष वाद किया था। मुनि वादिराज ने चालुक्यचक्रेश्वर जयसिंह के कटक में कीर्ति प्राप्त की थी। आचार्य शान्तिदेव होयसाल नरेश विनयादित्य द्वारा पूज्य थे। चतुर्म्मुखदेव मुनिराज ने पाण्डय नरेश से "स्वामी" की उपाधि प्राप्त की थी, और आहवमल्लनरेश ने उन्हें "चतुर्मुखदेव" रूपी सम्मानित नाम दिया था। गर्ज यह कि यह शिलालेख दिगम्बर मुनियो के गौरव गाथा से समन्वित है।[१]

दिगम्बराचार्य श्री गोपनन्दि – शक सं. १०२२ (न. ५५) के शिलालेख से जाना जाता है कि मूलसघ देशीयगण आचार्य गोपनन्दि वहुप्रसिद्ध हुये थे। वह वड़े भारी कवि और तर्क प्रवीण थे। उन्होने जैन धर्म की वैसी ही उन्नति की थी जैसी गगनरेशो के समय हुई थी। उन्होने धूर्जटिकी जिह्वा को भी स्थगित कर दिया था। देश देशान्तर में विहार करके उन्होने सांख्य, वौद्ध, चार्वाक, जैमिनि, लोकायत आदि विपक्षी मतो को हीनप्रभ बना दिया था। वह परमतप के निधान प्राणीमात्र के हितैपी और जैन शासन के सकल कलापूर्ण चन्द्रमा थे।[२] होयसल नरेश एरेयग उनके शिष्य थे, जिन्होने कई ग्राम उन्हें भेंट किये थे।[३]

धारानरेश पूजित प्रभाचन्द्र – इसी शिलालेख में मुनि प्रभाचन्द्र जी के विपय मे लिखा है कि वे एक सफल वादी थे और धारानरेश भोज ने अपना शीश उनके पवित्र चरणो में रखा था।[४]

श्री दामनन्दि – श्री दामनन्दि मुनि को भी इस शिलालेख में एक महावादी प्रकट किया गया है जिन्होंने वौद्ध, नैयायिक और वैष्णवो को शास्त्रार्थ में परास्त किया था। वादी, महावादी "विष्णु भट्ट" को परास्त करने के कारण वे "महावादि विष्णुभट्टघरट्ट" कहे गये हैं।[५]

---

१. जैशिस , पृ. १०१–११४।

२. जैशिस., पृ. ११७ "परमतपों निघानै, वसुधैककुटुम्वजैन शासनाम्वर परिपूर्णचन्द्र सकलागम तत्व पदार्थ शास्त्र विस्तर वचनाभिरामगुण रत्न विभूपण गोपणन्दि.।"

३. जैशिस., पृ. ३९५।

४. जैशिसं., पृ. ११८।

५. जैशिसं., पृ. ११८।

श्री जिनचन्द्र – श्री जिनचन्द्र मुनि को यह शिलालेख व्याकरण मे पूज्यपाद, तर्कमे भट्टाकलक और साहित्य मे भारवि बतलाता है।[१]

चालुक्य नरेश पूजित श्री वासवचन्द्र – श्री वासवचन्द्र मुनि ने चालुक्य नरेश के कटक में "बाल सरस्वती" की उपाधि प्राप्त की थी, यह भी इस शिलालेख से प्रकट है। स्याद्वाद और तर्कशास्त्र में यह प्रवीण थे।[२]

सिंहल नरेश द्वारा सम्मानित यश कीर्तिमुनि – श्री यशःकीर्तिमुनि को उक्त शिलालेख सार्थक नाम बताता है। वे विशाल कीर्ति को लिये हुये स्याद्वाद सूर्य ही थे। बौद्धावादियो को उन्होने परास्त किया था तथा सिंहल नरेश ने उनके पूज्यपादो का पूजन किया था।[३]

श्री कल्याणकीर्ति – श्री कल्याणकीर्ति मुनि को उक्त शिलालेख जीवों के लिये कल्याणकारक प्रकट करता है। वह शाकनी आदि बाधाओ को दूर करने में प्रवीण थे।[४]

श्री त्रिमुष्टि मुनीन्द्र बडे सैद्धान्तिक बताये गये हैं। वे तीन मुट्ठी अन्न का ही आहार करते थे। सारांश यह कि उक्त शिलालेख दिगम्बर मुनियों की गौरव गाथा को जानने के लिये एक अच्छा साधन है।[५]

वादीन्द्र अभयदेव – शक स. १३२० (न. १०५) के शिलालेख मे भी अनेक दिगम्बराचार्यों की कीर्तिगाथा का बखान है। वादीन्द्र अभयदेवसूरि ने बौद्धादि परवादियो को प्रतिभाहीन बना दिया था। यही बात आचार्य चारुकीर्ति के विषय मे कही गई है।[६]

होयसाल वंश केराजगुरु दिगम्बर मुनि– शक स. १२०५ (न.१२९) में होयसाल वश के राजगुरु महामण्डलाचार्य माघनन्दि का उल्लेख है, जिनके शिष्य बेल्गोल केजौहरी थे।[७]

---

१. जैनेन्द्र पूज्य (पाद) सकलसमयतक्के च भट्टाकलक ।
साहित्ये भारविस्स्यात्कवि गमक–महावाद–वाग्मित्व–रून्द्र
गीते वाद्ये च नृत्ये दिशि विदिश च सवर्ति सत्कीर्ति मूर्ति·।
स्थेयाश्छीयोगिवृन्दार्चितपद जिनचन्द्रो वितन्द्रोमुनीन्द्र ।। – Ibid p 253.

२ जैशिस , पृ ११९–"चालुक्य-कटक-मध्ये बाल सरस्वतिरिति प्रसिद्धि प्राप्त ।"

३. "श्रीमान्यश कीर्ति–विशालकीर्ति स्याद्वाद्व तर्काब्ज–विबोधनार्क्क।
बौद्धादि–वादि–द्विप–कुम्भ भेदी श्री सिंहलाधीश कृतार्घ्य पाद्य।। २६।।"

४. कल्याणकीर्त्ति नामाभूतभव्य कल्याण कारक ।
शाकिन्ययादि ग्रहाणाच निर्द्धाटनदुर्द्धुरः। –जैशिस., पृ. १२१

५ "मुष्टि–त्रय–प्रमिताशन–तुष्ट शिष्ट प्रियस्त्रिमुष्टिमुनीन्द्र.।"

६ जैशिस , पृ १९८–२०७

७ Ibid p 253/

योगी दिवाकरनन्दि – नं. १३९ के शिलालेख में योगी दिवाकरनन्दि तथा उनके शिष्यो का वर्णन है। एक गन्ती नामक भद्र महिला ने उनसे दीक्षा लेकर समाधिमरण किया था।[१]

एक सौ आठ वर्ष तप करने वाले दिगम्बर मुनि – न. १५९ शिलालेख प्रकट करता है कि कालन्तूर के एक मुनिराज ने कटवप्र पर्वत पर एक सौ आठ वर्ष तक तप करके समाधिमरण किया था।[२]

गर्ज़ यह कि श्रवणवेलगोल के प्रायः सव ही शिलालेख दिगम्बर मुनियों की कीर्ति और यशः को प्रकट करते हैं। राजा और रंक सव ही का उन्होंने उपकार किया था। रणक्षेत्र में पहुंचकर उन्होंने वीरो को सन्मार्ग सुझाया था। राजा रानी, स्त्री–पुरुष सव ही उनके भक्त थे।

दक्षिण भारत के अन्य शिलालेखों मे दिगम्बर मुनि – श्रवणवेलगोल के अतिरिक्त दक्षिणभारत के अन्य स्थानो से भी अनेक शिलालेख मिले हैं, जिनसे दिगम्बर मुनियो का गौरव प्रकट होता है। उनमें से कुछ का संग्रह प्रो. शेषगिरिराव ने प्रकट किया है जिससे विदित होता है कि दिगम्बर मुनि इन शिलालेखों में यम–नियम–स्वाध्याय–ध्यान धारण–मौनानुष्ठान–जप–समाधि–शीलगुण–सम्पन्न लिखे गये हैं।[३] उनका यह विशेषण उन्हें एक सिद्ध योगी प्रकट करता है। प्रो. सा. उनके विषय में लिखते हैं कि –

"From these epigraphs we learn some details about the great ascetics and acharyas who spread the gospel of Jainism in the Andhra–Karnata desa. They were not only the leader of lay and ascetic disciples but of royal dynasties of warrior clans that held the destinies of the peoples of these lands in their hands"[४]

भावार्थ – " उक्त शिलालेख सग्रह से उन महान दिगम्बर मुनियों और आचार्यों का परिचय मिलता है जिन्होने आन्ध्र कर्णाट देश मे जैन धर्म का संदेश विस्तृत किया था। वे मात्र श्रावक और साधु शिष्यो के ही नेता नही थे वल्कि उन क्षत्रिय कुलों के राजवंशों के भी नेता थे जिनके हाथो में उन देश की प्रजा के भाग्य की वागडोरथी।"

---

१. Ibid. p. 289.
२. Ibid p 308.
३. SSIJ. Pt.II p.6.
४. Ibid. p. 68.

दिगम्बराचार्यो का महत्वपूर्ण कार्य – सचमुच दिगम्वर मुनियो ने वडे–बडे राज्यो की स्थापना और उनके सचालन मे गहरा भांग लिया था। पुलल (मद्रास) के पुरातत्व मे प्रकट है कि उनके एक दिगम्वराचार्य ने असभ्य कुटुम्बो को जैन धर्म मे दीक्षित करके सभ्य शामक बना दिया था। वे जैन धर्म के महान् रक्षक थे और उन्होने धर्म लगन से प्रेरित होकर वडी–बडी लडाइयाँ लड़ी थी।[१] उन्होने ही क्या वल्कि दिगम्वराचार्यो के अनेक राजवशी शिष्यो ने धर्म सग्राम मे अपना भुज विक्रम प्रकट किया था। जैन शिलालेख उनकी रण–गाथाओ से ओतप्रोत है। उदाहरणत• गगसेनापति क्षत्रचूडामणि श्री चामुण्डराय को ही लीजिये, वह जैन धर्म के दृढ श्रद्धानी ही नही बल्कि उसके तत्व के ज्ञाता थे। उन्होने जैन धर्म पर कई श्रेष्ठ ग्रथ लिखे हैं और वह श्रावक के धर्माचार का भी पालन करते थे, किन्तु उस पर भी उन्होने एक नही अनेक सफल सग्रामो मे अपनी तलवार का जौहर जाहिर किया था।[२] सचमुच जैन धर्म मनुप्य को पूर्ण स्वाधीनता का सन्देश सुनाता है। जैनाचार्य नि शक और स्वाधीन होकर वही धर्मोपदेश जनता को देते हैं जो जनकल्याणकारी हो। इसलिये वह "वसुधैवकुटुम्बक" कहे गये हैं। भीरुता और अन्याय तो जैन मुनियो के निकट फटक भी नही सकता है।

प्रो सा के उक्त सग्रह मे विशेष उल्लेखनीय दिगम्बराचार्य श्री भावसेन त्रैवेद्य चक्रवर्ती जो वादियो के लिये महाभयानक (Terror to disputant) थे वह और बवराज के गुरु (Preceptor of Bava King) श्री भावनन्दि मुनि हैं।[३] अन्य श्रोत से प्रकट है कि –

बाद के शिलालेखो मे दिगम्बर मुनि – सन् १४७८ ई मे जिञ्जी प्रदेश मे दिगम्वराचार्य श्री वीरसेन बहुत प्रसिद्ध हुए थे। उन्होने लिंगायत–प्रचारको के समक्ष वाद मे विजय पाकर धर्मोद्योत किया था और लोगो को पुन जैन धर्म में दीक्षित किया था।[४] कारकल मे राजा वीरपाड्य ने दिगम्वराचार्यो को आश्रय दिया था और उनके द्वारा सन् १४३२ मे श्री गोम्मट मूर्ति की प्रतिष्ठा कराई थी जिसे उन्होने स्थापित कराया था। एक ऐसी ही दिगम्वर मूर्ति की स्थापना वेणूर मे सन् १६०४ मे श्री तिम्मराज द्वारा की गई थी। उस समय भी दिगम्वराचार्यो ने धर्मोद्योत

---

१ OII, p 236

२ वीर, वर्ष ७, पृ २–११।

३ SSII Pt VI pp 61–62

४ वीर वर्ष ५ पृ २४९।

किया था। सन् १५३० के एक शिलालेख से प्रकट है कि श्रीरग नगर का शासक विधर्मी हो गया था उसे जैन साधु विद्यानन्दि ने पुन. जैन धर्म मे दीक्षित किया था।[1]

दिगम्बर मुनि श्री विद्यानन्दि – इसी शिलालेख से यह भी प्रकट है कि "इन मुनिराज ने नारायण पट्टन के राजा नददेव की सभा मे नदनमल्ल भट्ट को जीता, सातवेन्द्र राज केशरीवर्मा की सभा मे वाद मे विजय पाकर "वादी" विरुद्ध पाया, सालुवदेव राजा की सभा मे महान विजय पाई, विलिगे के राजा नरसिंह की सभा मे जैन धर्म का महात्म्य प्रकट किया कारकल नगर के शासक भैरव राजा की सभा मे जैन धर्म का प्रभाव विस्तारा, राजा कृष्णराय की राजसभा मे विजयी हुए, कोपन व अन्य तीर्थो पर महान उत्सव कराये, श्रवणबेलगोल के श्री गोम्मटस्वामी के चरणो के निकट आपने अमृत की वर्षा के समान योगाभ्यास का सिद्धान्त मुनियो को प्रकट किया, जिरसप्पा मे प्रसिद्ध हुये। उनकी आज्ञानुसार श्रीवरदेव राजा ने कल्याण पूजा कराई और वह सगी राजा और पद्मपुत्र कृष्णदेव से पूज्य थे।"[2] वह एक प्रतिभाशाली साधु थे और उनके अनेक शिष्य दिगम्बर मुनिगण थे।

सारांशत दक्षिण भारत के पुरातत्व से वहाँ दिगम्बर मुनियो का प्रभावशाली अस्तित्व एक प्राचीन काल से बराबर सिद्ध होता है। इस प्रकार भारत भर का पुरातत्व दिगम्बर जैन मुनियो के महान उत्कर्ष का द्योतक है।

---

१ जैध, पृ ७० व DG

२ मजैस्मा, पृ ३२०–३२१।

[२४]	विदेशों में दिगम्बर मुनियों का विहार

'India had pre-eminently been the cradle of culture and it was from this country that other nations had understood even the rudiments of culture For example, they were told, the Buddhistic missionaries and Jaina monks wentforth to Greece and Rome and to places as far as Norwary and had spread their culture '[1]

—Prof M.S.Ramaswamy Iyengar

जैन पुराणो के कथन से स्पष्ट है कि तीर्थंकरो और श्रमणो का विहार समस्त आर्यखड मे हुआ था। वर्तमान की जानी हुई दुनिया का समावेश आर्यखड में हो जाता है।[२] इसलिये यह मानना ठीक है कि अमेरिका, यूरोप, एशिया आदि देशो में एक समय दिगम्बर धर्म प्रचलित था और वहाँ दिगम्बर मुनियो का विहार होता था। आधुनिक विद्वान् भी इस बात को प्रकट करते हैं कि बौद्ध और जैन भिक्षुगण यूनान, रोम और नारवे तक धर्म प्रचार करते हुये पहुचे थे।

किन्तु जैनपुराणो के वर्णन पर विशेष ध्यान न देकर यदि ऐतिहासिक प्रमाणो पर ध्यान दिया जाय, तो भी यह प्रकट होता है कि दिगम्बर मुनि विदेशो में अपने धर्म का प्रचार करने को पहुचे थे। भगवान् महावीर के विहार के विषय में कहा गया है कि वे आकनीय, वृकार्थप, वाल्हीक, यवनश्रुति, गाँधार क्वाथतोय, ताण और कार्ण देशो मे भी धर्म प्रचार करते हुये पहुँचे थे।[३] ये देश भारतवर्ष के बाहर ही प्रकट होते हैं। आकनीय सभवतः आकसीनिया (Oxiania) है। यवनश्रुति यूनान अथवा पारस्य का द्योतक है। वाल्हीक बल्ख (Balkh) है। गाँधार कधार है। क्वाथतोय रेड-सी (Red Sea) के निकट के देश हो सकते है। तार्ण-कार्ण तूरान आदि प्रतीत होते है।[४] इस दशा मे कधार यूनान, मिश्र आदि देशो मे भगवान् का विहार हुआ मानना ठीक है।[५]

सिकन्दर महान् के साथ दिगम्बर मुनि कल्याण यूनान के लिये यहाँ से प्रस्थानित हो गये थे और एक अन्य दिगम्बराचार्य यूनान धर्म प्रचारार्थ गये थे, यह पहले लिखा जा चुका है। यूनानी लेखको के कथन से बैक्ट्रिया (Bactria)[1] और

---

१ The "Hindu" of 25th July 1919 & JG XV27
२. भपा , १५६-१५७।
३ हरिवशपुराण, सर्ग ३, श्लो ३"७।
४ वीर, वर्ष ९ अक ७।
५ सजैइ , भा २, पृ १०२-१०३।

इथ्यूपिया (Ethiopia)[२] नामक देशो में श्रमणो के विहार का पता चलता है। ये श्रमणगण दिगम्बर जैन ही थे, क्योकि बौद्ध श्रमण तो सम्राट् अशोक के उपरान्त विदेशो में पहुँचे थे।

अफ्रीका के मिश्र और अबीसिनिया देशो मे भी एक समय दिगम्बर मुनियो का विहार हुआ प्रकट होता है, क्योकि वहाँ की प्राचीन मान्यता मे दिगम्बरत्व को विशेष आदर मिला प्रमाणित है। मिश्र मे नग्न मूर्तियाँ भी बनी थी और वहाँ की कुमारी सेंटमेरी (St. Mary) दिगम्बर साधु के वेष में रही थी। मालूम होता है कि रावण की लका अफ्रीका के निकट ही थी और जैनपुराणो से यह प्रकट ही है कि वहाँ अनेक जैन मन्दिर और दिगम्बर मुनि थे।[३]

यूनान मे दिगम्बर मुनियो के प्रचार का प्रभाव काफी हुआ प्रकट होता है। वहाँ के लोगो मे जैन मान्यताओं का आदर हो गया था। यहाँ तक कि डायजिनेस (Diogenes) और सभवतः पैर्रहो (Pyrrho of Elis) नामक यूनानी तत्ववेत्ता दिगम्बर वेष मे रहे थे। पैर्रहो ने दिगम्बर मुनियो के निकट शिक्षा ग्रहण की थी। यूनानियो ने नग्न मूर्तियाँ भी बनाई थी, जैसे कि लिखा जा चुका है।

जब यूनान और नारवे जैसे दूर के देशो मे दिगम्बर मुनिगण पहुंचे थे, तो भला मध्य–एशिया के अरब ईरान और अफगानिस्तान आदि देशो मे वे क्यो न पहुँचते।? सचमुच दिगम्बर मुनियो का विहार इन देशो मे एक समय मे हुआ था। मौर्य सम्राट सम्प्रति ने इन देशो मे जैन श्रमणो का विहार कराया था, यह पहले ही लिखा जा चुका है। मालूम होता है कि दिगम्बर मुनि अपने इस प्रयास मे सफल हुये थे, क्योकि यह पता चलता है कि इस्लाम मज़हब की स्थापना के समय अधिकांश जैनी अरब छोड़कर दक्षिण भारत में आ बसे थे[५] तथा ह्वेनसांग के कथन से स्पष्ट है कि ईस्वी सातवी तक दिगम्बर मुनिगण अफगानिस्तान मे अपने धर्म का प्रचार करते रहेथे।[६]

दिगम्बर मुनियो के धर्मोपदेश का प्रभाव इस्लाम–मज़हब पर बहुत–कुछ पड़ा प्रतीत होता है। दिगम्बरत्व के सिद्धान्त का इस्लाम–मज़हब मे मान्य होना इस बात का साबूत है। अरबी कवि और तत्ववेत्ता अबु–लू–अला (Abu–L–Ala;

---

१. Al p 104

२. AR.111 p.6 व जैन होस्टल मैगजीन, भाग ११, पृ ६।

३. भपा ,पृ १६०–२०२।

४ N.J.Intro , p 2 & "Diogenes Lacrtius (IX 61 & 63) refers to the Gymnosophists and asserts that Pyrrho of Elis, the founder of pure Scepticism came under their influence and on his return to Elis imitated their habits of life."

–E.B.XII.753

५. AR. I X 284

६ हुभा , पृ ३७

ई. ९७३-१०५८) की रचनाओ में जैनत्व की काफी झलक मिलती है। अबु-लू-अला शाकभोजी तो थे ही, परन्तु वह महात्मा गॉधी की तरह यह भी मानते थे कि एक अहिंसक को दूध नही पीना चाहिये। मधु का भी उन्होने जैनो की तरह निषेध किया था। अहिंसा धर्म को पालने के लिये अबु-लू-अला ने चमड़े के जूतो का पहनना भी बुरा समझा था और नग्न रहना वह बहुत अच्छा समझते थे। भारतीय साधुओ को अन्त समय अग्निचिता पर बैठकर शरीर को भस्म करते देखकर वह बड़े आश्चर्य मे पड़ गये थे। इन सब बातो से यह स्पष्ट है कि अबु-लू-अला पर दिगम्बर जैन धर्म का काफी प्रभाव पड़ा था और उन्होने दिगम्बर मुनियो को सल्लेखना व्रत का पालन करते हुये देखा था।[१] वह अवश्य ही दिगम्बर मुनियों के ससर्ग में आये प्रतीत होते है। उनका अधिक समय बगदाद में व्यतीत हुआ था।

लका (Ceylon) मे जैन धर्म की गति प्राचीन काल से है। ईस्वी पूर्व चौथी शताब्दि में सिंहलनरेश पाण्डुकाभय ने वहॉ के राजनगर अनुरुद्धपुर मे एक जैन मन्दिर और जैन मठ बनवाया था। निर्ग्रंथ साधु वहॉ पर निर्बाध धर्म प्रचार करते थे। इक्कीस राजाओ के राज्य तक वह जैन विहार और मठ वहॉ मौजूद रहे थे, किन्तु ई.पू.३८ में राजा वट्टगामिनी ने उनको नष्ट कराकर उनके स्थान पर बौद्ध विहार बनवाया था।[२] उस पर भी, दिगम्बर मुनियो ने जैन धर्म के प्राचीन केन्द्र लका या सिंहलद्वीप को बिल्कुल ही नही छोड़ दिया था। मध्यकाल मे मुनि यशः कीर्ति इतने प्रभावशाली हुये थे कि तत्कालीन सिंहल नरेश ने उनके पाद-पद्मो की अर्चना की थी।

सारांशतः यह प्रकट है कि दिगम्बर मुनियो का विहार विदेशो में भी हुआ था। भारतेतर जनता का भी उन्होने कल्याण किया था।

---

१ जैध पृ ४६६।

२ महावश , AISJP ३७।

[२५] मुसलमानी बादशाहत में दिगम्बर मुनि

"O son, the kingdom of India is full of different religions ...It is incumbent on to the wipe all religions prejudices off the tablet of the heart, administer justice according to the ways of every religions.'[1]

—Babar

मुसलमान और हिन्दुओं का पारस्परिक सम्बन्ध- ई.८वी-१०वी शताब्दि से अरब के मुसलमानो ने भारतवर्ष पर आक्रमण करना प्रारम्भ कर दिया था, किन्तु कई शताब्दियो तक उनके पैर यहाँ पर नही जमे थे। वह लूटमार करके जो मिला उसे लेकर अपने देश को लौट जाते थे। इन प्रारभिक आक्रमणो मे भारत के स्त्री-पुरुषों की एक बड़ी सख्या में हत्या हुई थी और उनके धर्म मन्दिर ओर मूर्तियाँ भी खूब तोड़ी गई थी। तैमूरलंग ने जिस रोज दिल्ली फतह की उस रोज उसने एक लाख भारतीय कैदियो को तोपदम करवा दिया।[२] सचमुच प्रारम्भ मे मुसलमान आक्रमणकारियो ने हिन्दुस्तान को वेतरह तबाह किया, किन्तु जब उनके यहाँ पर पैर जम गये और वे यहाँ रहने लगे तो उन्होने हिन्दुस्तान का होकर रहना ठीक समझा यहाँ की प्रजा को सतोषित रखना उन्होने अपना मुख्य कर्त्तव्य माना। बावर ने अपने पुत्र हुमायूं को यही शिक्षा दी कि "भारत में अनेक मत-मतान्तर है, इसलिये अपने हृदय को धार्मिक पक्षपात से साफ रख और प्रत्येक धर्म के रिवाजों के मुताबिक इन्साफ कर।" इसका परिणाम यह हुआ कि हिन्दुओ और मुसलमानो मे परस्पर विश्वास और प्रेम का बीज पड़ गया। जैनो के विषय मे डा.हेल्मुथ वॉन ग्लाजेनाप कहते हैं कि "मुसलमानो और जैनो के मध्य हमेशा वैर भरा सम्वन्ध नही था (बल्कि) मुसलमानो और जैनो के बीच मित्रता का भी सम्बन्ध रहा है।[३]" इसी मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध का ही यह परिणाम था कि दिगम्बर मुनि मुसलमान बादशाहो के राज्य मे भी अपने धर्म का पालन कर सके थे।

ईसवी दसवी शताब्दि में जब अरब का सौदागर सुलेमान यहाँ आया तो उसे दिगम्बर साधु बहुत सख्या मे मिले थे, यह पहले लिखा जा चुका है। गर्ज यह है कि मुसलमानो ने आते ही यहाँ पर नगे दरवेशो को देखा। महमूद गजनी (१००१)

१.QJMS. Vol XVIII.p.116

२ Elliot 111 p 436 "100000 in fidels, impious idolators were on that day slain"

—Mulfuzat-i-Timuri

३.DJ.,p 66 & जैध., पृ.६८।

और मुहम्मद गौरी (११७५)ने अनेक बार भारत पर आक्रमण किये किन्तु वह यहाँ ठहरे नही। ठहरे तो यहाँ पर "गुलाम खानदान" के सुल्तान और उन्ही से भारत पर मुसलमानी बादशाहत की शुरूआत हुई ममझना चाहिए। उन्होन मन् १२०६ से १२९० ई. तक राज्य किया और उनके वाद खिलजी,तुगलक और लोदी वशो के बादशाहो ने सन् १२९० से १५२६ ई तक यहाँ शासन किया।[१]

मुहम्म्द गौरी और दिगम्बर मुनि – इन बादशाहो के जमाने में दिगम्बर मुनिगण निर्बाध धर्मप्रचार करते रहे थे, यह बात जैन एव अन्य श्रोतो से स्प्ष्ट है। गुलाम बादशाहो के पहले ही दिगम्बर मुनि, सुल्तान महमूद का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट कर चुके थे।[२] सुल्तान मुहम्मद गौरी के सम्बन्ध मे तो यह कहा जाता है कि उसकी बेगम ने दिगम्बर आचार्य के दर्शन किये थे।[३] इससे स्पष्ट है कि उस समय दिगम्बर मुनि इतने प्रभावशाली थे कि वे विदेशी आक्रमणकारियो का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करने मे समर्थ थे।

गुलाम बादशाहत मे दिगम्बर मुनि – गुलाम बादशाहत के जमाने में भी दिगम्बर मुनियो का अस्तित्व मिलता है। मूल सघ सेनगण मे उस समय श्री दुर्लभसेनाचार्य,श्री धरसेनाचार्य, श्रीपेण, श्री लक्ष्मीसेन, श्री सोमसेन, प्रभृत मुनिपु गव शोभा को पा रहे थे। श्री दुर्लभसेनाचार्य ने अग, कलिग, कश्मीर, नेपाल, द्रविड, गौड, केरल , तैलग, उड्र, आदि देशो मे विहार करके विधर्मी आचार्यो को हतप्रभ किया था।[४]इसी समय मे श्रीकाष्ठासघ में मुनिश्रेष्ठ विजयचन्द्र तथा मुनि यशःकीर्ति, अभय कीर्ति, महासेन कुन्दकीर्ति, त्रिभुवनचन्द्र, राममेन आदि हुये प्रतीत होते हैं।[५]ग्वालियर मे श्री अकलकचद्र जी दिगम्बरवेप में स १२५७ तक रहे थे।[६]

---

१ Oxford pp 129-130

२ "अलकेश्वरपुरादभरवरच्छनगरे राजाधिराजपरमेश्वर यवन रायशिरोमणिमुहम्मद बादशाह सुरत्राण समस्यापूर्णादखिल दृष्टिपातेनाप्टादश वर्पप्रायप्राप्तदेवलोकश्रीश्रुतवीरस्वामिनाम।"

अर्थात् –"अलकेश्वरपुर के भरोचनगर में राजेश्वर स्वामी यवन राजाओ में श्रेष्ठ मुहम्म्द बादशाह के त्राण समस्या की पूर्ति से तथा दृष्ट होने से १८ वर्ष की अवस्था में स्वर्ग गये हुए श्री श्रुतवीर स्वामी हुए। –जैसिभा, १ कि २–३पृ. ३५

३ IA Vol XXI p 361 Wife of Muhammad Ghori desired to see the chief of the Digambaras

४ जैसिभा , भा १, कि २–३, पृ ३४।

५ Ibid किरण ४, पृ. १०।

६ वृजेश पृ १०।

खिलजी, तुगलक और लोदी बादशाहों के राज्य और दिगम्बर मुनि- खिलजी तुगलक और लोदी बादशाहो के राज्यकाल में भी अनेक दिगम्बर मुनि हुये थे। काष्ठासघ मे श्री कुमारसेन, प्रतापसेन, महातपस्वी महावसेन आदि मुनिगण प्रसिद्ध थे। महातपस्वी श्री माहवसेन अथवा महासेन के विषय में कहा जाता है कि उन्होने खिलजी बादशाह अलाउद्दीन से सम्मान पाया था।[१] इतिहास से प्रकट है कि अलाउद्दीन धर्म की परवाह कुछ नही करता था।उस पर राघों और चेतक नामक ब्रह्मणो ने उसको और भी बरगला रखा था। एक बार उन्ही दोनो ने बादशाह को दिगम्बर मुनियो के विरूद्ध कहा -सुना और उनकी बात मानकर बादशाह ने जैनियो से अपने गुरु को राजदरवार में उपस्थित करने के लिये कहा। जैनियो ने नियत काल में आचार्य माहवसेन को दिल्ली मे उपस्थित पाया। उनका विहार दक्षिण की ओर से वहाँ हुआ था।

सुल्तान अलाउद्दीन और दिगम्बराचार्य - आचार्य महावसेन दिल्ली के बाहर श्मशान में ध्यानारुढ़ थे कि वहाँ एक सर्पदश से अचेत सेठ पुत्र दाह कर्म के लिये लाया गया। आचार्य महाराज ने उपकार भाव से उसका विष-प्रभाव अपने योग-वल से दूर कर दिया। इस पर उनकी प्रसिद्धि सारे शहर मे हो गयी। बादशाह अलाउद्दीन ने भी यह सुना और उसने उन दिगम्वराचार्य के दर्शन किये। बादशाह के राजदरवार मे उनका शास्त्रार्थ भी षट्दर्शनवादियो से हुआ जिसमें उनकी विजय रही। उस दिन महासेन स्वामी ने पुनः एक बार स्याद्वाद की अखण्ड ध्वजा भारतवर्ष की राजधानी दिल्ली मे आरोपित कर दी थी।[२]

इन्ही दिगम्बराचार्य की शिष्य परम्परा मे विजयसेन, नयसेन, श्रेयॉससेन, अनन्तकीर्ति, कमलकीर्ति, क्षेमकीर्ति, श्रीहेमकीर्ति, कुमारसेन, हेमचद्र, पद्मनन्दि, यशःकीर्ति, त्रिभुवनकीर्ति, सहस्रकीर्ति, महीचन्द्र आदि दिगम्वर मुनि हुये थे। इनमे कमलकीर्ति जी विशेष प्रख्यात थे।[३]

सुल्तान अलाउद्दीन का अपरनाम मुहम्मदशाह था।[४] सन् १५३० ई. के एक शिलालेख मे मुनि विद्यानन्दि के गुरूपरम्परीण श्री आचार्य सिंहनन्दि का उल्लेख है। वह बड़े नैयायिक थे और उन्होने दिल्ली के बादशाह महमूद सूरित्राण की सभा

---

१ (the Jain) Acharyas by their character attainments and scholarship commanded the respect of even Muhammadan Sovereigns like Allauddin and Auranga Padusha (Aurangazeb)

२. जैसि , भा १ प्र. १०९

३. Ibid

४. Oxford p. 130

में बौद्ध व अन्यो को बाद मे हराया था। यह बात उक्त शिलालेख में है। यह उल्लेख बादशाह अलाउद्दीन के सम्बन्ध मे हुआ प्रतिभाषित होता है।[१]

सारांशतः यह कहा जा सकता है कि बादशाह अलाउद्दीन के निकट दिगम्बर मुनियों को विशेष सम्मान प्राप्त हुआ था। अलाउद्दीन दिल्ली के श्री पूर्णचन्द्र दिगम्बर जैन श्रावक की भी इज्जत करता था[२] और उसने श्वेताम्बराचार्य श्री रामचन्द्रसूरि को कई भेटें अपर्ण की थी।[३] सच बात तो यह है कि अलाउद्दीन के निकट धर्म का महत्व न कुछ था। उसे अपने राज्य का ही एकमात्र ध्यान था – उसके सामने वह "शरीअत" को भी कुछ न समझता था। एक बार उसने नव मुस्लिमो को भी तोपदम कर दिया।[४] हिन्दुओ के प्रति वह ज्यादा उदार नही था और जैन लेखको ने उसे "खूनी" लिखा है। किन्तु अलाउद्दीन में "मनुष्यत्व" था। उसी के बल पर "वह अपनी प्रजा को प्रसन्न रख सका था और विद्वानो का सम्मान करने में सफल हुआ था।[५]

तत्कालीन अन्य दिगम्बर मुनिगण – स. १४६२ मे ग्वालियर में महामुनि श्री गुणकीर्ति जी प्रसिद्ध थे।[६] मेदपाद देश में स.१५३६ में मुनि श्री रामसेन जी के प्रशिष्य मुनि सोमकीर्ति जी विद्यमान थे। और उन्होने "यशोधर चरित" की रचना की थी।[७] श्री "भद्रबाहु चरित" के कर्ता मुनि रत्नन्दि भी इसी समय हुये थे। वस्तुतः उस समय अनेक मुनिजन अपने दिगम्बर वेष में इस देश में विचर रहे थे।

---

१ मजैस्मा , पृ. ३२२ – "सुल्तान– शब्द को जैनाचार्यों ने सूरित्राण लिखकर बादशाहों को मुनिरक्षक प्रकट किया है।

२ जैहि , भा १५, पृ १३२।

३. जैध., पृ. ६८।

४. He (Allauddin) was by nature cruel and implacable and his only care was the welfare of his kingdom No consideration for religion (Islam) . . ever troubled him He disregarded the provisions of the Law He now gave commands that the race of "New–Muslims". Should be destroyed .

– Tarikh–i–Firozshahi – Elliot III p 25

5. सुल्तान अलाउद्दीन ने शराब की बिक्री रुकवा दी थी। नाज, कपड़ा आदि वेहद सस्ते थे। उसके राज में राजभक्ति की बाहुल्यता थी। विद्वान काफी हुए थे।

(Without the partonange of the Sultan many learned and great men flourished). – Elliot III 206

६ जैहि., भा. १५ पृ. २२५

७. "नदीतटाख्यगच्छे वशे श्रीरामसेनदेवस्य जातो गुणार्णवैक श्रीमाँश्च भीमसेवेति। निर्मितं तस्य शिष्येण श्रीयशोधर सज्ञिक श्री सोमकीर्ति मुनिनानिशोदयाधीपताबुधावर्षे षट् विशशख्येतिथिपरिगणनायुक्तं सवत्सरे ति पचम्या पौंपकृष्णदिनकर दिवसे चोत्तरास्पट्ट चद्रे इत्यादि।"

लोदी सिकन्दर निजाम खाँ और दिगम्बराचार्य विशालकीर्ति - लोदी खानदान में सिकन्दर (निजाम खाँ) बादशाह सन् १४८९ में राजसिंहासन पर बैठा था।[१] हूमसमठ के गुरु श्री विशालकीर्ति भी लगभग इसी समय हुये थे। उनके विषय में एक शिलालेख में पाया जाता है कि उन्होंने सिकन्दर बादशाह के समक्ष वाद किया था।[२] वह वाद लोदी सिकन्दर के दरबार में हुआ प्रतीत होता है। अतः यह स्पष्ट है कि दिगम्बर मुनि तब भी इतने प्रभावशाली थे कि वे बादशाहों के दरबार में भी पहुंच जाते थे।

तत्कालीन विदेशी यात्रियों ने दिगम्बर साधुओं को देखा था - जैन साहित्य के उपर्युक्त उल्लेखों की पुष्टि अजैन श्रोत से भी होती है। विदेशी यात्रियों के कथन से यह स्पष्ट है कि गुलाम से लोदी राज्यकाल तक दिगम्बर जैन मुनि इस देश में विहार और धर्म प्रचार करते रहे थे। देखिये, तेरहवीं शताब्दी में यूरोपीय यात्री मार्को पोलो (Morco Polo) जब भारत में आया तो उसे ये दिगम्बर साधु मिले। उनके विषय में वह लिखता है कि[३] -

"कतिपय योगी मादरजात नंगे घूमते थे, क्योंकि जैसे उन्होंने कहा, वे इस दुनिया में नंगे आये हैं और उन्हें इस दुनिया की कोई चीज नहीं चाहिये। खासकर उन्होंने यह कहा कि हमें शरीर सम्बन्धी किसी भी पाप का भान नहीं है और इसलिये हमें अपनी नग्न दशा पर शर्म नहीं आती है, उसी तरह जिस तरह तुम अपना मुंह और हाथ नंगे रखने में नहीं शरमाते हो, जिन्हें शरीर के पापों का भान हो। वह अच्छा करते हो कि शर्म के मारे अपनी नग्नता ढक लेते हो।"

इस प्रकार की मान्यता दिगम्बर मुनियों की है। मार्को पोलो का समागम उन्हीं से हुआ प्रतीत होता है। वह उनके सम्पर्क में आये हुये लोगों में अहिंसा धर्म की बाहुल्यता प्रकट करता है। यहाँ तक कि वह साग-सब्जी तक ग्रहण नहीं करते थे। सूखे पत्तों पर रखकर भोजन करते थे। वे इन सब में जीव-तत्व का होना मानते थे। टैवल सा. गुजरात के जैनों में इन मान्यताओं का होना प्रकट करते हैं।[४] किन्तु वस्तुतः गुजरात ही

---

१. Oxford. p. 130

२. मजैस्मा., पृ. १६३ व ३२२।

३. 'Some Yogis went stark naked because, as they sand, they hed come naked into the world and desired nothing that was of this world. Moreover they declared."We have no sin of the flesh to be conscious of and therefore, we are not ashamed of our nakedness any more than you are to show your hand or face. You who are conscious of the sins of the flesh do well to have shame and to cover your nakedness."
— Yule's Morco Polo II. 366 & HARI_P. 364

४. Morco Polo also noticed the customs which the orthodox Jaina community of Gujarat maintains to the present day. They do not kill an animal on any account not even a fly or flea or a louse or anything in fact that has life : for they say, these have all souls and it would be sin to do so.
— Yule's Morco Polo. II 366 & HARI. p. 365

क्या प्रत्येक देश का जैनी इन मान्यताओ का अनुयायी मिलेगा। अत: इसमे सन्देह नही कि मार्को पोलो को जो नगे-साधु मिले थे, वह जैन साधु ही थे।

अलबेरुनी के आधार पर रशीदुद्दीन नामक मुसलमान लेखक ने लिखा है कि "मालाबार के निवासी सब ही श्रमण हैं और मूर्तियो की पूजा करते हैं। समुद्र किनारे के सिन्दबूर, फकनूर, मञ्जरूर, हिली, सदर्स, जगलि और कुलम नामक नगरो और देशो के निवासी भी "श्रमण" है।[1] यह लिखा ही जा चुका है कि दिगम्बर मुनि श्रमण के नाम से भी विख्यात हैं। अतः कहना होगा कि रशीदुद्दीन के अनुसार मालाबार आदि देशो के निवासी दिगम्बर जैन ही थे और तब उनमे दिगम्बर मुनियो का होना स्वाभाविक है।

मुगल साम्राज्य मे दिगम्बर मुनि – तदोपरान्त सन् १५२६ से १७६१ ई. तक भारत पर मुगल और सूरवशो के राजाओ ने राज्य किया था।[2] उनके समय में भी दिगम्बर मुनियो का बाहुल्य था।

पाटोदी (जयपुर) के मन्दिर के वि.स. १५७५ की ग्रथ प्रशस्ति से प्रकट है कि उस समय श्रीचन्द्र नामक मुनि विद्यमान थे।[3] लखनऊ चौक के जैन मन्दिर मे विराजमान एक प्राचीन गुटका के पत्र १६३ पर दी हुई प्रशस्ति से निर्ग्रथाचार्य श्री माणिक्यचन्द्रदेव का अस्तित्व स. १६११ मे प्रमाणित है।[4] "भावत्रिभगी" की प्रशस्ति से स १६०५ में मुनि क्षेमकीर्ति का होना सिद्ध है।[5] सचमुच बादशाह बाबर, हुमायू और शेरशाह के समय मे दिगम्बर मुनियो का विहार सारे देश मे होता था। मालूम होता है कि उन्ही का प्रभाव मुसलमान दरवेशो पर पड़ा था; जिसके फलस्वरूप वे नग्न रहने लगे थे। मुगल बादशाह शाहजहाँ के समय मे वे एक बड़ी सख्या मे मौजूद थे।[6] शेरशाह के समय मे दिगम्बर मुनियो का निर्बाध विहार होता था, यह बात शेरशाह के अफसर मलिक मुहम्मद जायसी के प्रसिद्ध हिन्दी काव्य "पद्मावत" (२।६०) के निम्नलिखित पद्य से स्पष्ट है –

"कोई ब्रह्मचारज पन्थ लागे।
कोई सुदिगबर आछा लागे।"

---

१ Rashiuddin from Al-Biruni writes "The whole country (of Malabar) produces the pan The people are all samanis and worship idols of the cities of the shore the first is Sindabur the Faknur then the country of Sadarsa then Jangli then Kulam The men of all these countries are Samanis" – Elliot Vol I p 68

इलियट सा ने इन श्रमणों को बौद्ध लिखा है, किन्तु उस समय दक्षिण भारत में बौद्धों का होना असम्भव है। श्रमण शब्द बौद्धभिक्षु के अतिरिक्त दिगम्बर साधुओ के लिये भी व्यवहृत होता है।

२ Oxfod p 151.

३ "श्री सघाचार्यसत्कवि शिष्येण श्रीचन्द्रमुनि।" – जैमि , वर्ष २२, अंक ४५, पृ ६९८

४. स १६११ चैत्र सु. २ मूलसघे भ विद्यानदितत्पट्टे श्री कल्याणकीर्ति तत्पट्टे नैर्ग्रथाचार्य तपोबललब्धातिशय श्री माणिकचन्द्रदेवा।" – जैमि., वर्ष २२, अक ४८, पृ ७४०

५ "स १६०५ वर्षे तत्शिष्य सर्वगुणविराजमान मडलाचार्य मुनि श्री क्षेमकीर्तिदेवा।"

६ Bernier pp 315-318

दिगम्बर मुनियो ने प्रभावित कर लिया था, यहाँ तक कि औरगजेब ने भी उनका सम्मान किया था।[1] उस समय के किन्ही मुनि महाराजो का उल्लेख इस प्रकार है –

तत्कालीन दिगम्बर मुनि – दिगम्बर मुनि श्री सकलचन्द्र जी स. १६६७ में विद्यमान थे। उनके एक शिष्य ने "भक्तॉमर कथा" की रचना की थी।[2] सं. १६८० का लिखा हुआ एक गुटका दिगम्बर जैन पंचायती बड़ा मन्दिर (मैनपुरी) के शास्त्र भण्डार मे विराजमान है। उसमें श्री दिगम्बर मुनि महेन्द्रसागर का उल्लेख उस समय मे मिलता है।[3] सवत १७१९ में अकबराबाद मे मुनि श्री वैराग्यसेन ने "आठकर्म की १४८ प्रकृतियो का विचार" चर्चा ग्रथ लिखा था।[4] स. १७८३ में गुरु देवेन्द्रकीर्ति का अस्तित्व ढू ढारिदेश में मिलता है। वहाँ पर दिगम्बर मुनियो का प्राचीन आवास था।[5] स. १७५७ में कुण्डलपुर में मुनि श्री गुणसागर और यश कीर्ति थे। उनके शिष्य ने महाराजा छत्रसाल की विशेष सहायता की थी।[6] कवि लालमणि ने औरगजेब के राज्य में "अजितपुराण" की रचना की थी। उससे काष्ठासघ मे श्री धर्मसेन, भावसेन, सहस्रकीर्ति, गुणकीर्ति, यशःकीर्ति, जिनचन्द्र, श्रुतकीर्ति आदि दिगम्बर मुनियो का पता चलता है।[7] स. १७९९ में कवि खुशालदास जी ने एक मुनि महेन्द्रकीर्ति जी का उल्लेख किया है।[8] मुनि धर्मचन्द्र, मुनि विश्वसेन, मुनि

---

१ SSIJ Pt. II p 132 जैन कवियों ने औरगजेब की प्रशसा ही की है –
"औरगसाह वलीको राज, पायो कविजन परम समाज।
चक्रवर्तिसम जगमें भयो, फेरत आदि उदधि लौं गयौं।।
जा के राज परम सुख पाय, करी कथा हम जिन गुन गाय।"

– कवि विनोदीलाल

२ जैप्र , पृ १४३।

३ "गुरु मुनि माहिदसेनि नमिजी, भनत भगवतीदासु।" – वीर जिनेन्द्र गीत.
"मुनि माहेरन्द्रसेनि गुरु तिंह जुग चरन पसाइ।" – ढमालु राजमती –नेमिसुर
"सुणि माहेन्द्रसेन इह निसि प्रणामा तासो।
थानि कपस्थलि नी कर भनत भगौती दासो।।" – स्ज्ञानी ढाल

४. "सवत् १७१९ वर्षे फाल्गुण सुदि १३ सोमे लिखित मुनि श्री वैरागयसागरेण।"

५ देसढूं ढाहडजाणूं सार मूलसङू भविजान सुर्ग सिवकार वयान्यूम्।
आगे भये रिपीस गुणाकर तिनि इह ठान्यूम्।।
कुन्दकुन्द मुनिराइ जिहा धर्म जामौहि, कतेकिलकाल वितीत भए मुनिवत अधिकाहीं।
देवेन्द्रकीर्ति आव। चिंतधारि ताही विषै। लक्ष्मीसुदास पण्डित तहाँ विनुसुगुरु अति सैरबै।।
सतरासै तियासिये पोस सुकुल तिथिजानि।" – पद्मपुराण भाषा

६. "तस्यान्वये सजातो ज्ञानवाल गुणसागर ।
भवस्वी सघ सपूज्यों यश कीर्तिर्महानुमनि ।।"

– दिजैडा., पृ २५९

७ जैहिं., १२–१९४ "श्रीमच्छीकाष्ठासघे मुणिगणगणनात् दिगवस्त्रयुप्टे।।"

८ "भट्टारक पद सोभै जास मुनि महेन्द्रकीर्ति पट तास।" – उत्तरपुराण भाषा.

श्री भूषण का भी इसी समय पता चलता है।[1] सारांशतः यदि जैन साहित्य और मूर्ति लेखों का और भी परिशीलन और अध्ययन किया जाय तो अन्य अनेक मुनिगण का परिचय उस समय में मिलेगा।

आगरा में तब दिगम्बर मुनि – कविवर बनारसीदास जी बादशाह शाहजहाँ के कृपापात्रों में से थे। उनके सम्बन्ध में कहा जाता है कि एक बार जब कविवर आगरा में थे, तब वहाँ पर दो नग्न मुनियों का आगमन हुआ। सब ही लोग उनके दर्शन–वन्दन के लिये आते–जाते थे। कविवर परीक्षा प्रधानी थे। उन्होंने उन मुनियों की परीक्षा की थी।[2] इस उल्लेख से उस समय आगरा में दिगम्बर मुनियों का निर्बाध विहार हुआ प्रकट है।

फ्रेंच यात्री. डा. बर्नियर और दिगम्बर साधु – विदेशी विद्वानों की साक्षी भी उक्त वक्तव्य की पोषक है। बादशाह शाहजहाँ और औरंगजेब के शासनकाल में फ्रांस से एक यात्री डा. बर्नियर (Dr. Bernier) नामक आया था। वह सारे भारत में घूमा था और उसका समागम दिगम्बर मुनियों से भी हुआ था। उनके विषय में वह लिखता है कि[3] –

"मुझे अक्सर साधारणतः किसी राजा के राज्य में इन नंगे फकीरों के समूह मिले थे, जो देखने में भयानक थे। उसी दशा में मैंने उन्हें मादरजात नंगा बड़े–बड़े शहरों में चलते–फिरते देखा था। मर्द, औरत और लड़कियाँ उनकी ओर वैसे ही देखते थे जैसे कि कोई साधु जब हमारे देश की गलियों में होकर निकलता है, तब हम लोग देखते हैं। औरतें अक्सर उनके लिये बड़ी विनय से भिक्षा लाती थीं। उनका विश्वास था कि वे पवित्र पुरुष हैं और साधारण मनुष्यों से अधिक शीलवान और धर्मात्मा हैं।"

टावरनियर आदि अन्य विदेशियों ने भी उन दिगम्बर मुनियों को इसी रूप में देखा था। इस प्रकार इन उदाहरणों से यह स्पष्ट है कि मुसलमान बादशाहों ने भारत की इस प्राचीन प्रथा, कि साधु नंगे रहें और नंगे ही सर्वत्र विहार करें, को सम्माननीय दृष्टि से देखा था। यहाँ तक कि कतिपय दिगम्बर जैनाचार्यों का उन्होंने खूब

---

१. श्रीमूलसंघेय भारतीये गच्छे बलात्कारगणेतिरम्ये। आसीन्सुदेवेन्द्रयशोमुनीन्द्रः सधर्मधारी मुनि धर्मचन्द्र।" – श्री जिनसहस्रनाम.

श्री काष्ठासंघे जिनराजसेनस्यदन्वये श्री मुनि विश्वसेन।
विद्याविभूषे मुनिराट् बभूव श्री भूषणो वादिगजेन्द्र सिंह॥ – पञ्चकल्याणकपाठ.

२. बवि., चरित्र, पृ. ९७–१०२।

३. "I have often met generally in the territory of some Raja bands of these *naked fakirs hideous to behold*. In this trim I have seen toem shamelessly walk stark naked, through a large town men women and girls looking at them without any more emotion than may be created when a hermit passes through our streets. Females would often bring them alms with much devotion, doubtless believing that they were holy personages. more chaste and discreet than other men Bernier – p.317

आदर–सत्कार किया था। तत्कालीन हिन्दू कवि सुन्दरदास जी भी अपने "सर्वांगयोग" नामक ग्रथ में इन मुनियो का उल्लेख निम्न शब्दो मे करते हैं [१] –

"केचित् कर्मस्थापहि जैना, केश लु चाइ करहि अति फैना।"

केशलुचन क्रिया दिगम्बर मुनियो का एक खास मूलगुण है, यह लिखा ही जा चुका है। इससे तथा स १८७० में हुये कवि लालजीत जी के निम्न उल्लख मे तत्कालीन दिगम्बर मुनियो का अपने मूलगुणो को पालन करने मे पूर्णत· दत्तचित्त रहना प्रकट है –

"धारैं दिगम्बर रूप भूप सब पद को परसैं;
हिये परम वैराग्य मोक्षमारग को दरसैं।
जे भवि सेवे चरन तिन्हें सम्यक् दरसावैं;
करै आप कल्याण सुबारहभावन भावैं।।
पच महाव्रत धरें वरे शिवसुन्दर नारी,
निज अनुभौ रसलीन परम-पद के सुविचारी।
दशलक्षण निजधर्म गहैं रत्नत्रयधारी।।
ऐसे श्री मुनिराज चरन पर जग–बलिहारी।।"

---

१ फाह्यान भूमिका।

[२६] ब्रिटिश शासनकाल में दिगम्बर मुनि

"All shall alike enjoy the equal and impartial protection of the Law, and we do strictly charge and enjoin all those who may be in authority under us that they abstain from all interferance with the religious belief or worship of any of our subjects on pain of our highest displeasure"

– Queen Victoria[1]

महारानी विक्टोरिया ने अपनी १ नवम्बर सन् १८५८ की घोषणा में यह बात स्पष्ट कर दी है कि ब्रिटिश–शासन की छत्रछाया मे प्रत्येक जाति और धर्म के अनुयायी को अपनी परम्परागत धार्मिक और सामाजिक मान्यताओ को पालन करने मे पूर्ण स्वाधीनता होगी और कोई भी सरकारी कर्मचारी किसी के धर्म मे हस्तक्षेप न करेगा। इस अवस्था में ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत दिगम्बर मुनियो को अपना धर्मपालन करना सुगम–साध्य होना चाहिये और वह प्रायः सुगम रहा है।

गत ब्रिटिश शासनकाल मे हमें कई एक दिगम्बर मुनियो के होने का पता चलता है। स. १८७० मे ढाका शहर में श्री नरसिंह नामक मुनि के अस्तित्व का पता चलता है।[२] इटावा के आस–पास इसी समय मुनि विनयसागर व उनके शिष्यगण धर्म प्रचार कर रहे थे। लगभग पचास वर्ष पहले लेखक के पूर्वजों ने एक दिगम्बर मुनि महाराज के दर्शन जयपुर रियासत के फागी नामक स्थान पर किये थे। वह मुनिराज वहाँ पर दक्षिण की ओर से विहार करते हुये आये थे।

दक्षिण भारत की गिरि–गुफाओ मे अनेक दिगम्बर मुनि इस समय में ज्ञान–ध्यानरत रहे हैं। उन सबका ठीक–ठीक पता पा लेना कठिन है। उनमें से कतिपय जो प्रसिद्धि मे आ गये उन्ही के नाम आदि प्रकट हैं। उनमे श्री चन्द्रकीर्ति जी महाराज का नाम उल्लेखनीय है। वह सभवत. गुरमंड्या के निवासी थे और जैनबद्री मे तपस्या करते थे। वह एक महान् तपस्वी कहे गये हैं। उनके विषय में विशेष परिचय ज्ञात नही है।[३]

किन्तु उत्तर भारत के लोगों मे साम्प्रत दिगम्बर मुनि श्री चन्द्रसागर जी का ही नाम पहले–पहल मिलता है। वह फलटन (सतारा) निवासी हूमड़जातीय पद्मसी नामक श्रावक थे। सं. १९६९ में उन्होंने कुरुन्दवाड़ग्राम (शोलापुर) में दिगम्बर मुनि

---

१. Royal Proclamation of Ist Nov. 1858

२. "संवत् अष्टादश शतक व सतर बरस प्रमाण
ढाका सहर सुहामणा, देश बग के माँहि।
जैन धर्मधारक जिहाँ श्रावक अधिक सुहाहि।
तासु शिष्य विनयी विबुध हर्षचंद गुणवंत।
मुनि नरसिंह विनय विधि पुस्तक एह लिखंत।।"
– मैनपुरी दि. जैन बड़ा मंदिर का एक गुटका।

३. दिजै , वर्ष ९, अक १, पृ. २३।

श्री जिनप्पास्वामी के समीप क्षुल्लक के व्रत धारण किये थे। सं. १९६९ में झालरापाटन के महोत्सव के समय उन्होने दिगम्बर मुनि के महाव्रतो को धारण करके नग्न मुद्रा में सर्वत्र विहार करना प्रारम्भ कर दिया। उनका विहार उत्तर भारत में आगरा तक हुआ प्रतीत होता है।[१]

सन् १९२१ में एक अन्य दिगम्बर मुनि श्री आनन्द सागर जी का अस्तित्व उदयपुर (राजपुताना) में मिलता है। श्री ऋषभदेव केशरियाजी के दर्शन करने के लिये वह गये थे; किन्तु कर्मचारियो ने उन्हें जाने नही दिया था। उस पर उपसर्ग आया जानकर वह ध्यान माढ़कर वही बैठ गये थे। इस सत्याग्रह के परिणामस्वरूप राज्य की ओर से उनको दर्शन करने देने की व्यवस्था हुई थी।[२]

किन्तु इनके पहले दक्षिण भारत की ओर से श्री अनन्तकीर्ति जी महाराज का विहार उत्तर भारत को हुआ था। वह आगरा, बनारस आदि शहरो मे होते हुए शिखरजी की वदना को गये थे। आखिर ग्वालियर राज्यान्तर्गत मोरेना स्थान में उनका असामयिक स्वर्गवास माघ शुक्ला पचमी स. १९७४ को हुआ था। जव वह ध्यानलीन थे तव किसी भक्त ने उनके पास आग की अंगीठी रख दी थी। उस आग से वह स्थान ही आगमयी हो गया और उसमे उन ध्यानारूढ़ मुनि जी का शरीर दग्ध हो गया। इस उपसर्ग को उन धीर-वीर मुनि जी ने समभावो से सहन किया था। उनका जन्म स. १९४० के लगभग निल्लीकार (कारकल) में हुआ था। वह मोरेना मे संस्कृत और सिद्धान्त का अध्ययन करने की नियत से ठहरे थे; किन्तु अभाग्यवश वह अकाल काल-कवलित हो गये।

श्री अनन्तकीर्ति जी के अतिरिक्त उस समय दक्षिण भारत मे श्री चन्द्रसागर जी मुनि मणिहल्ली, श्री सनत्कुमार जी मुनि और श्री सिद्धसागर जी मुनि तेरवाल के होने का भी पता चलता है।[३] किन्तु पिछले पॉच-छ. वर्ष मे दिगम्वर मुनिमार्ग की विशेष वृद्धि हुई है और इस समय निम्नलिखित संघ विद्यमान है, जिनके मुनिगण का परिचय इस प्रकार है -

(१) श्री शान्तिसागर जी का संघ - यह सघ इस समय उत्तर भारत में बहुत प्रसिद्ध है। इसका कारण यह है कि उत्तर भाग्त के कतिपय पण्डितगण इस सघ के साथ होकर सारे भारतवर्ष में घूमे हैं। इस सघ ने गत चातुर्मास भारत की राजधानी दिल्ली में व्यतीत किया था। उस समय इस सघ में दिगम्बर मुद्रा को धारण किये हुये सात मुनिगण और कई क्षुल्लक-ब्रह्मचारी थे। दिगम्वर साधुओ मे श्री शान्तिसागर ही मुख्य हैं। स १९२८ मे उनका जन्म वेलगाम जिले के ऐनापुर-भोज

---

१ Ibid. p. 18-20

२ दिजै , वर्ष १४, अक ५-६, पृ ७।

३. दिजै , विशेपाक वीर, नि स २४४३।

नामक ग्राम मे हुआ था। शान्तिसागर जी को तब लोग सात गोडा पाटील कहते थे। उनकी नौ वर्ष की आयु मे एक पॉच वर्ष की कन्या के साथ उनका ब्याह हुआ था और इम घटना के ७ महीने बाद ही वहबाल पत्नी मरण कर गई थी। तब से वह बराबर ब्रह्मचर्य का अभ्यास करते रहे। उनका मन वैराग्य भाव मे मग्न रहने लगा। जब वह अठारह वर्ष के थे, तब एक मुनिराज के निकट से ब्रह्मचारी पद को उन्होंने ग्रहण किया था। स. १९६९ में उत्तरग्राम मे विराजमान दिगम्बर मुनि श्री देवेन्द्रकीर्ति जी के निकट उन्होने क्षुल्लक का व्रत ग्रहण किया था। इस घटना के चार वर्ष बाद सवत् १९७३ मे कुभोज के निकट बाहुबलि नामक पहाड़ी पर स्थित श्री दिगम्बर मुनि अकलीक स्वामी के निकट उन्होने ऐलक पद धारण किया था। स. १९७६ मे येरनाल मे पचकल्याणक महोत्सव हुआ था। उसमें वह भी गये थे। जिस समय दीक्षा कल्याणक महोत्सव सम्पन्न हो रहा था, उस समय उन्होने भोसगी के निर्ग्रथ मुनि महाराज के निकट मुनि दीक्षा ग्रहण की थी।[१] तब से वह बराबर एकान्त मे ध्यान और तप का अभ्यास करते रहे थे। उस समय वह एक खासे तपस्वी थे। उनकी शान्त मनोवृत्ति और योगनिष्ठा ने उत्तर भारत के विद्वानो का ध्यान उनकी ओर आकृष्ट किया। कई पडित उनकी सगति मे रहने लगे। आखिर उनके शिष्य कई उदासीन श्रावक हो गये; जिनमे से कतिपय दिगम्बर मुनि और ऐलक-क्षुल्लक के व्रतो का पालन करने लगे। इस प्रकार शिष्य-समूह से वेष्टित होने पर उन्हे "आचार्य" पद से सुशोभित किया गया और फिर बम्बई के प्रसिद्ध सेठ घासीराम पूर्णचन्द्र जौहरी ने एक यात्रा सघ सारे भारत के तीर्थो की वन्दना के लिये निकालने का विचार किया। तदनुसार आचार्य शान्तिसागर की अध्यक्षता मे वह सघ तीर्थयात्रा के लिये निकल पडा। महाराष्ट्र के सांगली - मिरज आदि रियासतो में जब यह सघ पहुचा था तब वहाँ के राजाओ ने उसका अच्छा स्वागत किया था। निजाम सरकार ने भी एक खास हुक्म निकालकर इस सघ को अपने राज्य मे कुशलपूर्वक विहार कर जाने दिया था।[२] भोपाल राज्य से होकर वह सघ मध्य प्रान्त होता हुआ श्री शिखरजी फरवरी, सन् १९२७ मे पहुँचा था। वहाँ पर वडा भारी जैन सम्मेलन हुआ था। शिखरजी से वह सघ कटनी, जबलपुर, लखनऊ, कानपुर, झांसी, आगरा, धौलपुर, मथुरा, फिरोजाबाद, एटा, हाथरस, अलीगढ, हस्तनापुर, मुजफ्फरनगर आदि शहरो से होता हुआ दिल्ली पहुँचा था। दिल्ली मे वर्षा-योग पूरा करके अब यह सघ अलवर की ओर विहार कर रहा है और उसमें ये साधुगण मौजूद हैं -

---

१ दिजै , वर्ष १६, अक १-२, पृ ९।

२ हुकुम न ९२८ (शीरो इतजामी) १३३७ फसली।

(१) श्री शान्तिसागर जी आचार्य, (२) मुनि चद्रसागर, (३) मुनि श्रुतसागर, (४) मुनि वीरसागर, (५) मुनि नमिसागर, (६) मुनि ज्ञानसागर।

(२) श्री सूर्य सागर जी का सघ – दूसरा सघ श्री सूर्यसागर जी महाराज का है, जो अपनी सादगी और धार्मिकता के लिये प्रसिद्ध है। खुरई में इस सघ का पिछला चातुर्मास व्यतीत हुआ था। उस समय इस सघ मे मुनि सूर्यसागर जी के अतिरिक्त मुनि अजितसागर जी, मुनि धर्मसागर जी और ब्रह्मचारी भगवानदास जी थे। खुरई से अब इस सघ का बिहार उसी ओर हो रहा है। मुनि सूर्यसागर जी गृहस्थ दशा मे श्री हजारीलाल के नाम से प्रसिद्ध थे। वह पोरवाड़ जाति के झालरापाटन निवासी श्रावक थे। मुनि शान्तिसागर जी छाणी के उपदेश से निर्ग्रंथ साधु हुये थे।

(३) श्री शान्तिसागर जी का संघ – तीसरा सघ मुनि शान्तिसागर जी छाणी का है, जिसका गत चातुर्मास ईडर मे हुआ था। तब इस सघ मे मुनि मल्लिसागर जी, ब्र. फतहसागर जी और ब्र लक्ष्मीचद जी थे। मुनि शान्तिसागर जी एकान्त में ध्यान करने के कारण प्रसिद्ध हैं। वह छाणी (उदैपुर) निवासी दशा–हुमड जाति के रत्न हैं। भादव शुक्ल १४ स १९७९ को उन्होने दिगम्बर वेष धारण किया था। उन्होंने भुखिया (बाँसवाडा) के ठाकुर क्रूरसिह जी साहब को जैन धर्म मे दीक्षित करके एक आदर्श कार्य किया है।

(४) श्री आदि सागर जी का संघ – मुनि आदिसागर जी के चौथे सघ ने उदगॉव मे पिछली वर्षा पूर्ण की थी। उस समय इनके साथ मुनि मल्लिसागर जी व क्षुल्लक सूरीसिह जी थे।

(५) श्री मुनीन्द्र सागर जी का संघ – गत चातुर्मास मे श्री मुनीन्द्रसागर जी का पाँचवाँ सघ मॉडवी (सूरत) मे मौजूद रहा था। उनके साथ श्री देवेन्द्रसागर जी तथा विजयसागर जी थे। मुनीन्द्रसागर जी ललितपुर निवासी और परवार जाति के हैं। उनकी आयु अधिक नही है। वह श्री शिखरजी आदि तीर्थो की वन्दना कर चुके हैं।

(६) श्री मुनि पायसागर जी का संघ – छठा सघ श्री मुनि पायसागर जी का है, जो दक्षिण–भारत की ओर ही रहा है।

इनके अतिरिक्त मुनि ज्ञानसगार जी (खैरावाद), मुनि आनन्दसागर जी आदि दिगम्बर साधुगण एकान्त में ज्ञान–ध्यान का अभ्यास करते हैं। दक्षिण–भारत मे उनकी सख्या अधिक है। ये सब ही दिगम्बर मुनि अपने प्राकृत वेश मे सारे देश मे विहार करके धर्म प्रचार करते हैं। ब्रिटिश भारत और रियासतो में ये बेरोक–टोक घूमे हैं; किन्तु गतवर्ष काठियावाड़ के कमिश्नर ने अज्ञानता से मुनीन्द्रसागर जी के सघ पर कुछ आदमियो के घेरे मे चलने की पावन्दी लगा दी थी; जिसका विरोध अखिल भारतीय जैन समाज ने किया था और जिसको रद्द कराने के लिये एक कमेटी भी बनी थी।

सच बात तो यह है कि ब्रिटिश राज की नीति के अनुसार किसी भी सरकारी कर्मचारी को किसी के धार्मिक मामले में हस्तक्षेप करने का अधिकार नही है और भारतीय कानून की ओर से भी प्रत्येक सम्प्रदाय के मनुष्यो को यह अधिकार है कि वह किसी अन्य सम्प्रदाय या राज्य के हस्तक्षेप बिना अपने धार्मिक रीति–रिवाजो का पालन–निर्विघ्न रूप से करे।

दिगम्बर जैन मुनियो का नग्न वेष कोई नई बात नही हैं। प्राचीन काल से जैन धर्म में उसकी मान्यता चली आई है और भारत के मुख्य धर्मो तथा राज्यों ने उसका सम्मान किया है, यह बात पूर्व पृष्ठों के अवलोकन से स्पष्ट है। इस अवस्था में दुनिया की कोई भी सरकार या व्यवस्था इस प्राचीन धार्मिक रिवाज को रोक नही सकती। जैन साधुओ का यह अधिकार है कि वह सारे वस्त्रों का त्याग करे और गृहस्थो का यह हक है कि वे इस नियम को अपने साधुओ द्वारा निर्विघ्न पाले जाने के लिये व्यवस्था करें; जिसके बिना मोक्ष सुख मिलना दुर्लभ है।

इस विषय में यदि कानूनी नजीरो पर विचार किया जाय तो प्रकट होता है कि प्रिवी–कौन्सिल (Privy-council) ने सब ही सम्प्रदायो के मनुष्यो के लिये अपने धर्म सम्बन्धी जुलूसों को आम सड़को पर निकालना जायज करार दिया है। निम्न उदाहरण इस बात के प्रमाण है। प्रिवी कौन्सिल ने मंजूर हसन बनाम मुहम्मद जमन के मुकदमें मे तय किया है कि –

"Persons of all sects are entitled to conduct religious processions through public streets, so that they do not interfere with the ordinary use of such streets by the public and subject to such directions the Magistrate may lawfully give to prevent obstructions of the thorough fare or breaches of the public peace and the worshippers in a mosque or temple which abutted on a highroad could not compel processionists to intermit their worship while passing the mosque or temple on the ground that there was a continuous worship there." (Munzur Hasan Vs Mohammad Zaman. 23 All Law Journal, 179)

भावार्थ – प्रत्येक सम्प्रदाय के मनुष्य अपने धार्मिक जुलूसो को आम रास्तो से ले जाने के अधिकारी हैं, बशर्ते कि उससे साधारण जनता को रास्ते के उपयोग करने मे दिक्कत न हो और मजिस्ट्रेट की उन सूचनाओ की पावन्दी भी हो गई हो जो उसने रास्ते की रुकावट और अशान्ति न होने के लिये उपस्थित की हो और किसी मस्जिद या मन्दिर, मन्दिर या मस्जिद के पास से निकलें, मात्र इस कारण कि उस

समय वहाँ पूजा हो रही है उनकी जुलूसी पूजा को बन्द करने पर मजबूर नही कर सकते।

इस सम्बन्ध में "पार्थसादी आयंगर बनाम चित्रकृष्ण आयगार" की नजीर भी दृष्टव्य है। Indian Law Report, Madras, Vol. V.p. 309) शूद्रम चेट्टी बनाम महाराणी के मुकदमे मे यही उसूल साफ शब्दों मे इससे पहले भी स्वीकार किया जा चुका है। (I.L.R. VI, p. 203) इस मुकदमे के फैसले मे पृष्ठ २०९ पर कहा गया है कि जुलूसों के सम्बन्ध मे यह देखना चाहिये कि अगर वह धार्मिक हैं और धार्मिक अशो का ख्याल किया जाना जरूरी है, तो एक सम्प्रदाय के जुलूस को दूसरे सम्प्रदाय के पूजा-स्थल के पास से न निकलने देना उसी तरह की सख्ती है जैसे की जुलूस के निकलने के वक्त उपासना-मन्दिर मे पूजा बन्द कर देना।

मुकदमा सदागोपाचार्य बनाम रामाराव {I.L B VI P २७६) में यही राय ज़ाहिर की गई है। इलाहाबाद ला जर्नल (भा. २३ पृ. १८०) पर प्रिवी कौन्सिल के जज महोदय ने लिखा है कि " भारतवर्ष मे ऐसे जुलूसो के जिनमे मजहबी रसूम अदा की जाती है, सरे राह निकालने के अधिकारो के सम्बन्ध मे एक "नजीर" कायम करने की जरूरत मालूम होती है, क्योकि भारतवर्ष में आला अदालतो के फैसले इस विषय में एक-दूसरे के खिलाफ हैं। सवाल यह है कि किसी धार्मिक जुलूस को मुनासिब व जरूरी विनय के साथ शाह-राह-आम से निकलने का अधिकार है? मान्य जज महोदय इसका फैसला स्वीकृति में देते हैं अर्थात् लोगो को धार्मिक जुलूस आम-रास्तो से ले जाने का अधिकार है।"

मुकदमा शकरसिंह बनाम सरकार कैसरे हिन्द (Al. Law Journal Report., 1929, pp. 180-182) जेरदफा ३० पुलिस-ऐक्ट न ५ सन् १८६१ में यह तजवीज़ हुआ कि "तरतीब" - व्यवस्था देने का मतलव "मनाई" नही है। मजिस्ट्रेट जिला की राय थी कि गाने-बजाने की मनाई सुपरिन्टेन्डेन्ट पुलिस ने उस अधिकार से की थी जो उसे दफा ३० पुलिस एक्ट की रूप से मिला था कि किसी त्यौहार या रस्म के मौके पर जो गाने-बजाने आम-रास्तो पर किये जावे उनको किसी हद तक सीमित कर दें। मैं (जज हाईकोर्ट) मजिस्ट्रेट जिला की राय से सहमत नही हूँ कि शब्द "व्यवस्था" का भाव हर प्रकार के वाजे की मनाई है। व्यवस्था देने का अधिकार उसी मामले में दिया जाता है जिसका कोई अस्तित्व हो। किसी ऐसे कार्य के लिये जिसका अस्तित्व ही नही है, व्यवस्था देने की सूचना विल्कुल व्यर्थ है। उदाहरणतः आने-जाने की व्यवस्था के सम्बन्ध मे सूचना से आने-जाने के अधिकार का अस्तित्व स्वतः अनुमान किया जायगा। उसका अर्थ यह नही है कि पुलिस - अफसरान किसी व्यक्ति को उसके घर मे बन्द रखने या उसका आना-जाना रोक देने के अधिकारी हैं।

दफा ३१ पुलिस ऐक्ट की रूल से पुलिस का आम रास्तो, सडको, गलियो, घाटो आदि पर आने-जाने के सब ही स्थानो मे शान्ति स्थिर रखने का अधिकार है। बनारस मे इस अधिकार के अनुसार एक हुक्म जारी किया गया था कि खास सम्प्रदाय के लोग यात्रा वालो (पडो) को, जो इस पवित्र नगर की यात्रा के लिये लोगो का पथ-प्रदर्शन करते है, रेलवे स्टेशन पर जाने की मनाई है। इस मुकदमे में हाईकोर्ट इलाहाबाद के योग्य जज महोदय ने तजवीज किया कि किसी स्थान पर शान्ति स्थिर रखने के अधिकारो के बल पर किसी खास सम्प्रदाय के लोगो को किसी खास जगह पर जाने की आम मुमानियत करने का सुपरिन्टेन्डेन्ट पुलिस को अधिकार न था। इस तजवीज़ के कारण वही थे जो बमुकदमा सरकार बनाम किशनलाल मे दिये गये हैं। I L R. Allahabad Vol 39, P. 131) शान्ति स्थिर रखने का भाव आदमियो को घरो में बन्द करने का नही है।[१]

यही विज्ञप्तियाँ दिगम्बर जैन साधुओ से भी सम्बन्ध रखती हैं। वह चाहे अकेले निकले और चाहे जुलूस की शक्ल मे, सरकारी अफसरो का कर्त्तव्य है कि उनके इस हक को न रोके। दिगम्बर जैन साधुगण सारे ब्रिटिश भारत और देशी रियासतो मे स्वतन्त्रता से बराबर घूमते रहे हैं, कही कोई रोक-टोक नही हुई और न इस सम्बन्ध मे किसी को कोई शिकायत हुई। अतएव सरकारी अफसरो का तो यह मुख्य कर्त्तव्य है कि वे दिगम्बर मुनियो को अपना धर्म पालन करने मे सहायता पहुचाये। गतकाल मे जितने भी शासक यहाँ हुये उन्होने यही किया इसलिये अब इसके विरुद्ध ब्रिटिश शासक कोई भी बर्ताव करने के अधिकारी नही हैं। उनको तो जैनो को अपना धर्म निर्बाध पालने देना ही उचित है।

---

१ NJ, pp 19-23

[२७] दिगम्बरत्व और आधुनिक विद्वान्

"मनुष्य मात्र की आदर्श स्थिति दिगम्बर ही है। मुझे स्वयं नग्नावस्था प्रिय है।"

— महात्मा गॉधी

ससार के सर्वश्रेष्ठ पुरुष दिगम्बरत्व को मनुष्य के लिये प्राकृत, सुसंगत और आवश्यक समझते हैं। भारत में दिगम्बरत्व का महत्व प्राचीन काल से माना जाता रहा है। किन्तु अब आधुनिक सभ्यता की लीलास्थली यूरोप में भी उसको महत्व दिया जा रहा है। प्राचीन यूनानवासियो की तरह जर्मनी, फ्रांस और इग्लैण्ड आदि देशो के मनुष्य नगे रहने में स्वास्थ्य और सदाचार की वृद्धि हुई मानते हैं। वस्तुत. बात भी यही है। दिगम्बरत्व आदि स्वास्थ्य और सदाचार का पोषक न हो तो सर्वज्ञ जैसे धर्म प्रवर्तक मोक्ष–मार्ग के साधनरूप उसका उपदेश ही क्यो देते ? मोक्ष को पाने के लिये अन्य आवश्यकताओ के साथ नंगा तन और नगा मन होना भी एक मुख्य आवश्यकता है। श्रेष्ठ शरीर ही धर्म साधन का मूल है और सदाचार धर्म की जान है तथा यह स्पष्ट है कि दिगम्बरत्व श्रेष्ठ स्वस्थ शरीर और उत्कृष्ट सदाचार का उत्पादक है। अव भला कहिये वह परमधर्म की आराधना के लिये क्यो न आवश्यक माना जाय ? आधुनिक सभ्य ससार आज इस सत्य को जान गया है और वह उसका मनसा वाचा कर्मणा कायल है।

यूरोप में आज सैकड़ों सभायें दिगम्बरत्व के प्रचार के लिये खुली हुई हैं; जिनके हजारो सदस्य दिगम्बर वेश में रहने का अभ्यास करते हैं। वेडल्स स्कूल, पीटर्स फील्ड (हैम्पशायर) मे बैरिस्टर, डाक्टर, इजीनियर, शिक्षक आदि उच्च शिक्षा प्राप्त महानुभाव दिगम्बर वेष में रहना अपने लिये हितकर समझते हैं। इस स्कूल के मत्री श्री बर्फोड (Mr. N.F. Barford) कहते हैं कि –

Next year, as I say, we shall be even more advanced, and in time people will get quite used to the idea of wearing no clothes at all in the open and will realise its enormous value to health (Amrita Bazar Patrika, 8-8-31)

भाव यही है कि एक साल के अन्दर नगे रहने की प्रथा विशेष उन्नत हो जायेगी और समयानुसार लोगो को खुलेआम कपड़े पहनने की आवश्यकता नही रहेगी। उन्हें नगे रहने से स्वास्थ्य के लिये जो अमिट लाभ होगा वह तब ज्ञात होगा।

इस प्रकार ससार में जो सभ्यता पुज रही है उसकी यह स्पष्ट घोषणा है कि "मनुष्य जाति को स्वस्थ रखने के लिये वस्त्रो की तिलांजलि देनी पडेगी। नग्नता रोगियो के लिये ही केवल एक महान् औषधि नही है, बल्कि स्वस्थ जीवो के लिए

भी अत्यन्त आवश्यक है। स्विटजरलैण्ड के नगर लेयसन (Leysen) निवासी डॉ. रोलियर (Dr. Rollier) ने केवल नग्न चिकित्सा द्वारा ही अनेक रोगियो को आरोग्यता प्रदान कर जगत मे हलचल मचा दी है। उनकी चिकित्सा प्रणाली का मुख्य अग है स्वच्छ वायु अथवा धूप में नगे रहना, नगे टहलना और नगे दौड़ना। जगतविख्यात् ग्रथ "इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका" मे नग्नता का बड़ा भारी महत्व वर्णित है।" वास्तव मे डॉक्टरो का यह कहना कि जब से मनुष्य जाति वस्त्रो के लपेट मे लिपटी है तव से ही सर्दी, जुकाम, क्षय आदि रोगो का प्रादुर्भाव हुआ है, कुछ सत्य-सा प्रतीत होता है। प्राचीनकाल मे लोग नगे रहने का महत्व जानते थे और दीर्घजीवी होते थे।

किन्तु दिगम्बरत्व स्वास्थ्य के साथ-साथ सदाचार का भी पोपक है। इस बात को भी आधुनिक विद्वानो ने अपने अनुभव से स्पष्ट कर दिया है। इस विपय में श्री ओलिवर हर्स्ट सा. "The New Statesman and Nation" नामक पत्रिका में प्रकट करते हैं कि "अन्ततः अव समाज बाईविल के प्रथम अध्याय के महत्व को (जिसमे आदमी और हव्वा के नगे रहने का जिक्र है) समझने लगी है और नग्नता का भय अथवा झूठी लज्जा मन से दूर होती जा रही है।जर्मनी भर में बीसो ऐसी सोसायटियाँ कायम हो गयी हैं जिनमें मनुष्य पूर्ण नग्नावस्था मे स्वच्छ वायु का उपयोग करते हुये नाना प्रकार के खेल खेलते हैं। वे लोग नग्न रहना प्राकृतिक पवित्र और सरल समझते हैं। शताब्दियो से जिसके लिये उद्यम हो रहा है वह यही पवित्रता का आन्दोलन है।यह पवित्रता कैसी है? इसके स्वय उनके निवास स्थान गेलैन्ड (Gelande) के देखने से जाना जा सकता है जवकि वहाँ सैकड़ो-स्त्री पुरुप बालक-बालिकायें आनन्दमय स्वाधीनता का उपभोग करते दृष्टि पड़े। ऐसे दृश्य देखने से मन पर क्या असर पडता है, वह बताया नही जा सकता। जिस प्रकार कोई मैला-कुचैला आदमी स्नान करके स्वच्छ दिखाई दे ठीक उसी तरह यह दृश्य सर्व प्रकार के सूक्ष्म अतरग विपो से शून्य दिखाई पड़ेगा।ऐसे पवित्र मानवो के सामने जो वस्त्रधारी होगा वह लज्जा को प्राप्त हो जायेगा। ऐसे आनन्दमय वातावरण में ताजी हवा और धूप का जो प्रभाव शरीर पर पड़ता है उसको सर्वसाधारण अच्छी तरह जान सकते है, परन्तु जो मानसिक तथा आत्मिक लाभ होता है वह विचार के वाहर है। यह क्रान्ति दिनो दिन बढ़ रही है और कभी अवनत नही हो सकती। मानवो की उन्नति के लिये यह सर्वोत्कृष्ट भेट जर्मनी ससार को देगा। जैसे उसने आपेक्षिक सिद्धान्त उसे अर्पण किया है। बर्लिन मे जो अभी इन सोसायटियो की सभा हुई थी उसमें भिन्न-भिन्न नगरो के ३००० सदस्य शरीक हुये थे। उसे प्रतिष्ठित व्यक्तियो और राष्ट्रीय कौन्सिल के मेम्बरो ने अपनी-अपनी स्त्रियो के साथ देखा था। उन स्त्रियो के भाव उसे देखकर बिलकुल बदल गये। नग्नता का विरोध करने के लिये कोई हेतु

१. दिमुनि भूमिका, पृ "ख"।

नही है जिस पर वह टिक सके। जो इसका विरोध करता है वह स्वय अपने भावो की गन्दगी प्रकट करता है। किन्तु यदि वह इन लोगो के निवासस्थान को गौर से देखे तो उसे अपना विरोध छोड़ देना होगा। वह देखेगा कि सैकड़ो स्त्री-पुरुषों माता-पिता और बच्चो ने कैसी पवित्रता प्राप्त कर ली है।"[१]

अतएव पाश्चात्य विद्वानों की अनुभवपूर्ण गवेषणा से दिगम्बरत्व का महत्त्व स्पष्ट है। दिगम्बरत्व मनुष्य की आदर्श स्थिति है और वह धर्म-मार्ग से उपादेय है, यह पहले भी लिखा जा चुका है। स्वास्थ्य और सदाचार के पोषक नियम का वैज्ञानिक धर्म मे आदर होना स्वाभाविक है। जैन धर्म एक विज्ञान है और वह दिगम्बरत्व के सिद्धान्त का प्रचारक अनादि काल से रहा है। उसके साधु इस प्राकृत वेष मे शीलधर्म के उत्कट पालक और प्रचारक तथा इन्द्रियजयी योगी रहे हैं, जिनके सम्मुख सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य और सिकन्दर महान जैसे शासक नतमस्तक हुये थे और जिन्होंने सदा ही लोक का कल्याण किया ऐसे ही दिगम्वर मुनियो के ससर्ग में आये हुये अथवा मुनिधर्म से परिचित आधुनिक विद्वान भी आज इन तपोधन दिगम्वर मुनियो के चारित्र से अत्यन्त प्रभावित हुये हैं। वे उन्हें राष्ट्र की बहुमूल्य वस्तु समझते हैं। देखिये साहित्याचार्य श्री कन्नोमल जी एम ए. जज उनके विपय में लिखते हैं कि "मैं जैन नही हूँ पर मुझे जैन साधुओ और गृहस्थो से मिलने का वहुत अवसर मिला है। जैन साधुओ के विपय में मैं, विना किसी सकोच के कह सकता हूँ कि उनमें शायद ही कोई ऐसा साधु हो जो अपने प्राचीन पवित्र आदर्श से गिरा हो। मैंने तो जितने साधु देखे हैं उनसे मिलने पर चित्त मे यही प्रभाव पड़ा कि वे धर्म, त्याग, अहिंसा तथा सदुपदेश की मूर्ति हैं। उनसे मिलकर बड़ी प्रसन्नता होती है।"[२]

बगाली विद्वान श्री बरदाकान्त मुखोपाध्याय एम.ए. इस विपय मे कहते हैं[३] -

"चौदह आभ्यान्तरिक और दस वाह्यय परिग्रह परित्याग करने से निर्ग्रथ होते हैं। जब वे अपनी नग्नावस्था को विस्मृत हो जाते हैं तब ही भवसिन्धु से पार हो सकते हैं। (उनकी) नग्नावस्था और नग्नमूर्तिपूजा उनका प्राचीनत्व सप्रमाण सिद्ध करती है, क्योकि मनुष्य आदि अवस्था में नग्न थे।"

महाराष्ट्रीयन विद्वान श्री वासुदेव गोविन्द आपटे बी.ए. ने एक व्याख्यान में कहा था कि " जैन शास्त्रो मे जो यतिधर्म कहा गया है वह अत्यन्त उत्कृष्ट है, इसमें कुछ भी शका नही है।'[४] प्रो. डा. शेषगिरि राव, एम.ए. पी-एच.डी. बताते हैं कि[५] -

---

१ जैमि, वर्ष ३२, पृष्ठ ७१२।
२ दिमु., पृ २३।
३ जैम , पृ १५१।
४. जै म पृ ५६
५ SSIJ PT II P 30

"(The Jaina) faith helped towards the formation of good and great character helpful to the progress of Culture and Humanity. The leading exponents of that faith continued to live such lives of hardy discipline and spiritual culture etc."

भावार्थ – "जैन धर्म मम्कृति और मानव समाज की उन्नति के लिये उत्कृष्ट और महान चरित्र को निर्माण कराने में सहायक रहा है। इस धर्म के आचार्य सदा की भांति तपश्चरण और आत्मविकास का उन्नत जीवन व्यतीत करते रहे।"

"ईसाई मिशनरी ए. डुबोई सा. ने दिगम्बन मुनियो के सम्बन्ध मे कहा था कि –

"सबसे उच्च पद जो कि मनुष्य धारण कर सकता है वह दिगम्बर मुनि का पद है। इस अवस्था में मनुष्य साधारण मनुष्य न रहकर अपने ध्यान के बल से परमात्मा का मानो अश हो जाता है। जव मुनष्य निर्वाणी (दिगम्वर) साधु हो जाता है तब उसको इस ससार से कुछ प्रयोजन नही रहता। और वह पुण्य–पाप, नेकी–बदी को एक ही दृष्टि से देखता है। उसको ससार की इच्छाये तथा तृष्णाये नही उत्पन्न होती हैं। न वह किसी से राग और न द्वेष करता है। वह बिना दुःख मालुम किये उपसर्गो को सहन करता है।अपने आत्मिक भावो में जो भीजा हो उसको क्यो इस ससार की और उसकी निस्सार क्रियाओ की चिन्ता होगी।"[१]

एक अन्य महिला मिशनरी श्री स्टीवेन्सन ने अपने ग्रथ "हार्ट आफ जैनिज्म" मे लिखा कि –

"Being rid of clothes one is also rid a lot of other worries no water I needed in which to wash them. Our knowledge of good and evil, our knowledge of nakedness keeps us away form salvat on. To obtain it we must forget nakedness. The Jain Niragranthas have forget all knowledge of good and evil. Why should they require clothes to hide their nakedness?" (Heart of Jainism, p. 35)

भावार्थ – "वस्त्रो की झंझट से छूटना, हजारो अन्य झझटो से छूटना है। कपड़े धोने के लिये एक दिगम्बर वेपी को पानी की जरूरत नही पड़ती। वस्तुतः पाप–पुण्य का भान नग्नता का ध्यान ही मनुष्य को मुक्त नही होने देता। मुक्ति पाने के लिये मनुष्य को नग्नता का ध्यान भुला देना चाहिये। जैन निर्ग्रथो ने पाप–पुण्य के भान को भुला दिया है। भला उन्हे अपनी नग्नता छिपाने के लिये वस्त्रो की क्या जरूरत ?

---

१. जैम., पृ १०५।

सन् १९२७ में जब लखनऊ में दिगम्बर मुनि सघ पहुँचा तो श्री अलफ्रेड जेकबशॉ (Alfread Jackob Shaw) नामक ईसाई विद्वान ने उनके दर्शन किये थे। वह लिखते हैं कि प्राचीन पुस्तको मे सम्मेद शिखिर पर दिगम्बर मुनियो के ध्यान करने की बाबत पढ़ा जरूर था लेकिन ऐसे साधुओं को देखने का अवसर अजिताश्रम में ही मिला। वहाँ चार दिगम्बर मुनि ध्यान और तपस्या में लीन थे। आग सी जलती हुई छत पर बिना किसी क्लेश के वह ध्यान कर रहे थे। उनसे पूछा तो उन्होने कहा कि "हम परमात्मस्वरूप आत्मा के ध्यान मे लीन रहते हैं। हमे बाहरी दुनिया की बातों और सुख दुख से क्या मतलब [१]

यद्यपि मैं पक्का ईसाई हूँ पर तो भी मैं कहूगा कि इन साधुओं का सम्मान हर सम्प्रदाय के मनुष्यो को करना चाहिये। उन्होने ससार के सभी सम्बन्धो को त्याग दिया है और एकमात्र मोक्ष की साधना में लीन हैं।"[१]

सचमुच इन विद्वानो का उक्त कथन दिगम्बरत्व और दिगम्बर मुनियो की महिमा का स्वत· द्योतक है। यदि विचारशील पाठक तनिक इस विषय पर गम्भीर विचार करेंगे तो वह भी नग्नता के महत्व और नग्न साधुओ के स्वरूप को मोक्ष प्राप्ति के लिये आवश्यक जान जायेगे। कविवर वृन्दावन के शब्द स्वतः उनके हृदय से निकल पडेगे--

"चतुर नगन मुनि दरसत,
भगत उमग उर सरसत।
नुति थुति करि मन हरसत,
तरल नयन जल बरसत।।"

---

१ JG, XXIII p 139.

उपसंहार

बाह्यो ग्रंथोऽगमक्षाणामांतरो विषयेषिता।

निर्मोहस्तत्र निर्ग्रंथः पांथः शिवपुरेऽर्थतः।। – कवि आशाधर[1]

"यह शरीर बाह्यपरिग्रह है और स्पर्शनादि इन्द्रियों के विषयों में अभिलाषा रखना अन्तरंग परिग्रह है। जो साधु इन दोनों परिग्रहों में ममत्व परिणाम नहीं रखता है, परमार्थ से वही परिग्रह रहित गिना जाता है तथा वही निर्वाण नगर व मोक्ष में पहुंचने के लिये पांथ अर्थात् नित्य गमन करने वाला माना जाता है।" इसका कारण यह है कि मोक्ष मार्ग में निरंतर गमन करने की सामर्थ्य एक मात्र यथाजातरूपधारी निर्ग्रंथ ही के हैं। जो मनुष्य शरीर रक्षा और विषय कषायों की चिंताओं में फंसकर पराधीन बना हुआ है, भला वह साधु पद को कैसे धारण कर सकता है ? और दिगम्बर वेष को धारण करके वह साधु नहीं हो सकता तो फिर उसका निरंतर मोक्षमार्ग पर गमन अथवा मोक्ष-पद को पा लेना कैसे संभव है? इसीलिये दिगम्बरत्व को महत्व देकर मुमुक्षु शरीर से नाता थोड़ लेते हैं, और नंगे तन तथा नंगे मन होकर आत्मस्वातंत्र्य को पा लेते हैं। शाश्वत सुख को दिलाने वाला यही एक राजमार्ग है और इसका उपदेश प्रायः संसार के सब ही मुख्य-मुख्य मत प्रवर्तकों ने किया था।

मनोविज्ञान की दृष्टि से जरा इस प्रश्न पर विचार किजिये और फिर देखिये दिगम्बरत्व की महिमा। जिसका मन शरीर में अटका हुआ है, जो लज्जा के बन्धन में पड़ा हुआ है और जो साधु वेष को धारण करके भी साधुता को नहीं पा पाया है, वह दिगम्बरत्व के महत्व को क्या जाने ? मन की शुद्ध भावों की विशुद्धता ही मुमुक्षु के लिये आत्मोन्नति का कारण है और वस्तुतः वही साक्षात् मोक्ष को दिलाने वाली है। किन्तु मन की यह विशुद्धता क्या बनावट और सजावट में नसीब हो सकती है? वस्त्रादि परिग्रह केमोह में अटका हुआ प्राणी भला कैसे निर्ग्रंथ पद को पा सकता है। इसलिये संसार के तत्ववेत्ताओं ने हमेशा दिगम्बरत्व का प्रतिपादन किया है। भगवान ऋषभदेव के निकट से प्रचार में आकर यह महत सिद्धान्त आज तक बराबर मुमुक्षुओं का आत्मकल्याण करता आ रहा है, और जब तक मुमुक्षुओं का अस्तित्व रहेगा बराबर वह कल्याण करता रहेगा।

दिगम्बरत्व मनुष्य को रंक से राव बना देता है। उसको पाकर मनुष्य देवता हो जाता है। लेकिन दिगम्बरत्व खाली नंगा तन नहीं है। वह नंगे होने से कुछ अधिक है। नंगे तो पशु भी हैं पर उन्हें कोई नहीं पूजता ? इसका कारण यह है कि मानव जगत

1. सागार., पृ. ५१३।

जानता है कि पशुओ को अपने शरीर को ढकने और विवेक से काम लेने की तमीज नही है।

पशुओ ने विषय विकार पर भी विजय नही पाई है। इसके विपरीत दिगम्बर मुनि के सम्बन्ध में उसकी धारणा है और ठीक धारणा है जैसे कि हम निर्दिष्ट कर चुके हैं कि वे साधु तन से ही नगे नही होते बल्कि उनका मन भी विषय विकारो से नगा है। दिगम्बरत्व का रहस्य उसके बाह्यान्तर रूप में गर्भित है। इस रहस्य को समझकर ही मुमुक्षु दिगम्बर वेष को धारण करके विकार विवर्जित होने का सवूत देते हैं। और आत्म कल्याण करते हुए जगत के लोगो का हित साधते हैं। श्री ऋषभदेव दिगम्बर मुनि ही थे जिन्होने ससार को सभ्यता और धर्म का पाठ पढ़ाया। श्री सिंहनन्दि आचार्य दिगम्बर वेश मे ही विचरे थे, जिन्होने गगवश की स्थापना कराई और उन क्षत्रियो को देश तथा धर्म का रक्षक बनाया। कल्याणकीर्ति आदि मुनिगण नगे साधु ही थे जिन्होने सिकन्दर महान जैसे विदेशियो के मन को मोह लिया था, और उन्हें भारत भक्त बनाया था। वे दिगम्बर ऋषि ही थे जिन्होने अपने तत्वज्ञान का सिक्का यूनानियो के दिलो मे जमा लिया था और उन्हें बाद मे निग्रहस्थान को पहुचा दिया था। श्री वादिराज और वासवचन्द्र जैसे दिगम्बर मुनि धीर वीरता के आगार थे। उन्होने रणांगण में जाकर योद्धाओ को धर्म का स्वरूप समझाया था और श्री समन्तभद्राचार्य दिगम्बर साधु ही थे जिन्होने सारे देश मे विहार करके ज्ञान सूर्य को प्रकट किया था। सम्राट चन्द्रगुप्त, सम्राट अमोघवर्ष प्रभृति महिमाशाली नररत्न अपनी अतुल राजलक्ष्मी को लात मारकर दिगम्बर ऋषि हुये थे। ये सब उदाहरण दिगम्बरत्व और दिगम्बर मुनियो के महत्व और गौरव को प्रकट करते हैं। दिगम्बर मुनियो के मूलगुणो की सख्या परिमाण प्रस्तुत परिच्छेदो मे ओत प्रोत दिगम्बर गौरव का बखान है। सचमुच श्री शिवव्रतलाल वर्म्मन् के शब्दो मे[१] – "दिगम्बर मुनि धर्म -कर्म की झलकती हुई प्रकाशमान् मूर्तियाँ हैं। वे विशाल हृदय और अथाह समुद्र हैं जिसमे मानवीय हित कामना की लहरें जोर–शोर से उठती रहती हैं और सिर्फमनुष्य ही क्यो ? उन्होने ससार के प्राणी मात्र की भलाई के लिये सबका त्याग किया / प्राणी हिसा को रोकने के लिए अपनी हस्ती को मिटा दिया। ये दुनिया के जबरदस्त रिर्फामर, जबरदस्त उपकारी और बड़े ऊंचे दर्जे के वक्ता तथा प्रचारक हुये हैं। ये हमारे राष्ट्रीय इतिहास के कीमती रत्न हैं। इनमे त्याग, वैराग्य, और धर्म का कमाल – सब कुछ मिलता है। ये "जिन" हैं, जिन्होने मोह–माया को तथा मन और

१ जैम , पृ ३–५।

काया को जीत लिया। साधुओं की नग्नता देखकर भला क्यो नाक भौ सिकोड़ते हो? उनके भावो को क्यो नही देखते? सिद्धान्त यह है कि आत्मा को शारीरिक बधन से ताल्लुकात की पोशिश से आजाद करके बिलकुल नंगा कर दिया जाये, जिससे उसका निजरूप देखने मे आवे।" यह वजह है इन साधुओ के जाहिरदारी के रस्मो रिवाज से परे रहने की। यह ऐब की बात क्या है? ईश्वर कुटी मे रहने वालो को अपने जैसा आदमी समझा जाये तो यह गलती है या नही। इसलिये आओ सब मिलकर राष्ट्र और लोक कल्याण के लिये स्पष्ट घोषणा करो कविवर वृन्दावन की तान मे तान मिलाकर कहो –

"सत्यपंथ निर्ग्रंथ दिगम्बर"

परिशिष्ट

तुर्किम्तान के मुसलमानों में नग्नत्व आदर की दृष्टि से देखा जाता है, यह बात पहले लिखी जा चुकी है। मिस लूसी गार्नेट की पुस्तक "Mysticism and Magic in Turky" के अध्ययन से प्रकट है कि "पैगम्बर साहब ने एक रोज मुरीदो के राज और मारफत की बातें अली साहब को बाता दी और कह दिया कि वह किसी को वताये नही। इस घटना के ४० दिन तक तो अली साहब उस गुप्त सदेश को छुपाये रहे किन्तु फिर उसके दिल में छुपाये रखना असभव जानकर वह जगल को भाग गये।" (पृ. ११०)। इस उल्लेख से स्पष्ट है कि मुहम्मद साहब ने राजे मारफत अर्थात योग की बाते बताई थी, जिनको बाद में सूफी दरवेशो ने उन्नत बनाया था। इन दरवेशों में अजालुलौब और अब्दाल श्रेणी के फकीर बिलकुल नगे रहते हैं। मि. जे.पी. ब्राउन नामक साहब को एक दरवेश मित्र ने खालिफ अली की जियारतगाह मे मिले हुए अजालुलौब दरवेश का हाल कहा था। उसका नाम जमालुद्दीन कुफीय था। उसका शरीर मझोले कद का था और वह बिलकुल नगा (Perfectly naked) था। उसके बाल और दाढ़ी छोटे थे और शरीर कमजोर था। उसकी उम्र लगभग ४०-५० वर्ष की थी (पृ. ३६)। इन दरवेशो के सयम की ऐसी प्रसिद्धि है कि देश में चाहे कही बेरोक टोक घूमते हैं, कभी अर्द्धनग्न और कभी पूरे नगे हो जाते हैं। जितने ही वह अद्भुत दिखते हैं उतने ही अधिक पवित्र और नेक गिने जाते हैं।

(The result of this reputataion for sanctity enjoyed by Abdals is that they are allowed to wander at large over the country, sometimes half-cald, sometimes completely naked)

वे अपने ज्ञान का प्रयोग खूब करते हैं। घर और साथियों से उन्हें मोह नहीं होता। वे मैदानो और पहाड़ो मे जा रमते हैं। वही वनफलो पर गुज़रान करते हैं। जगल के खू खार जानवरो पर वे अपने अध्यात्म-बल से अधिकार जमा लेते हैं। सारांशत. तुर्किस्तान में यह नगे दरवेश प्रसिद्ध और पूज्य माने जाते हैं।

यूरोप मे नगे रहने का रिवाज दिनो-दिन बढ़ता जा रहा है। जर्मनी में इसकी खूब वृद्धि है। अब लोग इस आन्दोलन को एक विशेष उन्नत जीवन के लिए आवश्यक समझने लगे है। देखिये, २ फरवरी सन् ३२ के "स्टेट्समैन" अखबार में यह ही बात कही गई हैं-

"Germany is at present challenging the traditional view that clothes are requisite for health and virtue. The habit of wearing only the sun and air exercise is growing and the "Nudist" movement at first laughed at and blushed at else where, is now seriously studied as probably the way to a saner morality."

—The Stateman, 2-2-32

भारतवर्ष में नग्न रहने का महत्व बहुत पहले ही समझा जा चुका है। विदेशों में ब वही बात दुहराई जा रही है।

अनुक्रमणिका